

जिनागम का
कारण कार्य रहस्य



डॉ. श्रीमती उज्वला दि. शहा

जिनागम का कारण कार्य रहस्य

लेखिका

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दिनेशचंद्र शहा
एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

संपादक

पं. श्री. दिनेशभाई शहा
एम.ए., एल.एल.बी.

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०० ०२२.

फोन : ०२२-२४०७ ३५८१, e-mail : ujwaladinesh@yahoo.com

Website : www.jainsiddhant.org

हिन्दी	पांचवां संस्करण	१७ मई २०१५	१००० प्रत
	चार संस्करण		८००० प्रत
मराठी	चार संस्करण		७५०० प्रत
गुजराती	चार संस्करण		६००० प्रत
इंग्लिश	तीन संस्करण		३५०० प्रत
			२६००० प्रत

— दातार —

श्रीमती रीटा एवं यशवंत जैन, बेंगलोर	११०००
श्रीमती मधू एवं अशोक जैन, भोपाल	१२६००
श्रीमती मंजू संतोष पाटनी, वाशिम	५०००
श्री अशोक तारण, भोपाल	४०००
श्रीमती नीटू एवं राजीव कौशल, भोपाल	३१००
श्री गौरव सोगानी, मुंबई	३०००
श्री ललित आनंद पाटनी, वाशिम	३०००
श्री अनुज संतोष पाटनी, वाशिम	३०००
श्रीमती विराज पटेल, हैद्राबाद	२५००
श्रीमती कल्पना जैन, भोपाल	२१००
सौ. सागरिका कराडे, भोपाल	११५१
श्रीमती नूतन निलेश जैन, विदिशा	१००१

— हमारे प्रकाशन —

जैनतत्व परिचय	- हिन्दी, गुजराती, मराठी, इंग्लिश	रु. १५/-
कारण कार्य रहस्य	- हिन्दी, गुजराती, मराठी, इंग्लिश	रु. १५/-
करणानुयोग परिचय	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	रु. १५/-
पंचलब्धि	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	रु. १५/-
भक्तामरस्तोत्र प्रवचन	- मराठी	रु. १५/-
स्वानुभव	- मराठी	रु. ६/-
परमात्मा कसे बनाल !	- मराठी	रु. ६/-
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि	- हिन्दी	रु. १५०/-
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि	- हिन्दी	रु. १५०/-
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षणसासार एवं अर्थसंदृष्टि	- हिन्दी	रु. १००/-
जैन भूगोल	- हिंदी, गुजराती	रु. ५०/-

मूल्य : रु. १५/-

लेखिका का मनोगत

सन १९९३ में मैंने अपनी बेटियों को जैन तत्त्वज्ञान सिखाने हेतु पत्रों द्वारा लिखना प्रारंभ किया था। उन्हीं पत्रों को जैन पत्रिका में प्रकाशित किया था और वाचकों के अनुरोध पर उन्हीं को 'जैनतत्त्व परिचय' पुस्तकरूप से मराठी, हिंदी, गुजराती और अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित किया गया। कुछ साल बाद करणानुयोग संबंधी पत्र 'करणानुयोग परिचय' पुस्तकरूप से मराठी, हिंदी और गुजराती में प्रकाशित किये गये।

पुस्तक प्रकाशन में - लिखने में तथा अनेक बार प्रुफ रीडिंग में इतना अधिक समय लगता है इसलिए हम दोनों ने निश्चित किया था कि अब बस, अब तो अपने निजी स्वाध्याय में ही लगे रहेंगे। लिखते समय मैंने यह कल्पना भी नहीं की थी कि इन पुस्तकों द्वारा तत्त्वों का प्रचार प्रसार इतना विराट रूप धारण करेगा। सेंकडो लोगों के पत्र, फोन, इ-मेल आते रहते हैं। देश तथा विदेश के लोगों ने भी इन पुस्तकों को बहुत सराहा, धन्यवाद दिये, अभिनंदन किया तथा और आगे लिखने के लिए लोग बार बार प्रेरित करते रहे।

अनेक अजैनियों ने भी कहा कि, 'आपने जैन तत्त्वज्ञान की रुचि हमारे में जागृत की है अब आगे के सिद्धांत भी आप ही समझाइये, हमें आधे रास्ते में ही मत छोड़िये।' लोग कहते हैं कि, 'आपने तो तत्त्वज्ञान को सरल, सुगम, रोचक और बहुत आसान बनाकर प्रस्तुत किया है।'

जैन तत्त्वज्ञान है ही बड़ा रोचक क्योंकि इसमें प्रत्येक जीव की अपनी अर्थात् आत्मा की बात है और आत्मा को जानने की विधि बतायी है। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है। जिसतरह कोई व्यक्ति टोकरी में से सुगंधित फूल अंजुलि से उठा उठाकर लोगों को देता जाये तो उसके हाथ भी सुगंधित होते हैं परंतु सुगंध तो फूलों की है, हाथों की नहीं। उसी तरह जो तत्त्वज्ञान सर्वज्ञ भगवान से चला आ रहा है, आचार्यों की परम्परा से जो आज हमें उपलब्ध है, अनेक ज्ञानियों ने जिसका मर्म बताया है, और जो बात हमें पूज्य श्री. कानजीस्वामीजी से प्राप्त हुयी है उसमें से मेरी अल्पबुद्धि द्वारा मैं कुछ थोडासा ग्रहण कर पायी हूँ उसीको यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ। इसमें महानता तो वीतरागी सर्वज्ञ की वाणी की है।

सम्यग्दर्शन के लिए तत्त्वनिर्णय आवश्यक है। द्रव्य, गुण, पर्यायों की स्वतंत्रता ख्याल में आये बिना तत्त्वनिर्णय नहीं होगा। चार अभाव, निमित्त, उपादान, निमित्त नैमित्तिक संबंध, पांच समवाय, षट्कारक, क्रमबद्धपर्याय, सर्वज्ञता आदि का स्वरूप समझे बिना द्रव्यों की स्वतंत्र कारण कार्य व्यवस्था समझ में नहीं आती। इसलिए इन सिद्धांतों द्वारा मैंने 'कारण-कार्य रहस्य' को समझाने का प्रयास किया है।

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

प्रकाशकीय

हम जो सोचते हैं वैसा हमेशा होता ही है ऐसा कभी नहीं होता। देखिये ना! हम दोनों ने निश्चित किया था कि अब पुस्तक लिखने और छपवाने के झमेले से हमें दूर रहना है। क्यों न हम अपने आत्मकल्याण में अपना अधिक समय व्यतीत करें?

लेकिन होनी को कौन टाल सकता है? जिनवाणी के अभ्यासकों ने, विचारवंतों ने और हमारे चाहनेवालों ने श्रीमती उज्ज्वला को नयी किताब लिखने में मजबूर किया। हमारी तरफ से जिनवाणी की सेवा होने का महत्भाग्य हमें मिल रहा है और तत्त्वज्ञान के प्रचार प्रसार में हम भी अपना योगदान दे रहे हैं इस उद्देश्य से यह किताब छपवाने का निश्चित किया।

हालाकि हम जानते अवश्य हैं कि यह जो परिणाम हो रहा है उसमें अपना कोई कर्तव्य नहीं है, फिर भी राग तो आ रहा है और उसका ज्ञायक बने रहने में ही अपना हित है।

श्रीमती उज्ज्वला किताब लिख रही है और हम छपवा रहे हैं यह समझते ही अनेक लोग आये और बिनती करने लगे कि हमारे से दान स्वीकार कीजिये। देखते देखते बहुत दानराशि जमा होने से लोगों को रोकना पड़ा। हर बार ऐसा ही होता आया है। बिना माँगे ही - कोई अपील किये बिना ही लोग स्वेच्छा से दिल खोलकर दानराशि देने के लिए तत्पर रहते हैं। नाम जाहिर न करने के उनके आग्रह के बावजूद मैंने जबरन दातारों के नाम छाप दिये हैं। ये सारे दातार साधुवाद के पात्र हैं। हम उन सभी दातारों का अंतःकरण से आभार व्यक्त करते हैं।

पुस्तक के मुद्रण में श्री. उमेशभाई त्रिवेदी ने हमें हर तरह से मदद की। इतने कम समय में इतनी आकर्षक और सुंदर पुस्तक छपवाने में उन्होंने काफी योगदान दिया। इसलिए हम उनके भी आभारी हैं।

‘कारण-कार्य रहस्य’ का विषय इसलिए चुना गया है कि जीव को विश्व की व्यवस्था का, प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता का निर्णय कराने में वह उपयुक्त साबित होगा। मुझे विश्वास है कि इसतरह लेखिका का प्रयत्न अनूठा साबित हो सकता है। इतने सारे विषय एक दूसरे से संबंधित हैं इसका अप्रतिम सुमेल बिठाया है। इसलिए इस पुस्तक का प्रकाशन करने में और वाचकों के लिए प्रस्तुत करने में मुझे बहुत आनंद हो रहा है। वाचकों को इसका फायदा अवश्य होगा ऐसी पवित्र भावना व्यक्त करता हूँ।

पं. दिनेशभाई शहा

अनुक्रमणिका

पत्रांक	विषय	पृष्ठ
१.	सर्वज्ञ का स्मरण	१
२.	सर्वज्ञ की सिद्धि	१७
३.	सर्वज्ञ संबंधी भ्रांतियां	२२
४.	चार अभाव, भाग १	३२
५.	चार अभाव, भाग २	४३
६.	निमित्त	५९
७.	निमित्त नैमित्तिक संबंध	७१
८.	उपादान कारण	८२
९.	षट्कारक	९३
१०.	पांच समवाय	१०८
११.	कारण कार्य संबंधी शक्तियां	१२०
१२.	क्रमबद्धपर्याय - स्वरूप	१२९
१३.	क्रमबद्धपर्याय - एक शाश्वत सत्य	१३९
१४.	क्रमपद्धपर्याय - सिद्धि	१५१
१५.	आत्मानुभूति	१६२

Visual DVDs (each DVD contains 3 to 5 hrs lectures)

जैन सिद्धांत : शिबिर १ और २	16 DVDs
गुणस्थान : शिबिर	10 DVDs
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड : शिबिर १ और २	16 DVDs
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड अर्थसंदृष्टि	18 DVD
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड : शिबिर १ और २	20 DVDs
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड अर्थसंदृष्टि	12 DVDs
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार शिबिर : १ और २	22 DVDs
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि	16 DVDs
पंचपरावर्तन : शिबिर	12 DVDs
क्रमबद्धपर्याय	3 DVDs
आत्मा की ४७ शक्तियाँ	3 DVDs
सम्यग्दर्शन : शिबिर	10 DVDs
ज्ञानमार्गणा - लेश्यामार्गणा : शिबिर	10 DVDs

MP3 सीडीज (128 KBPS)(प्रत्येक सी.डी. में १२ घण्टों के प्रवचन हैं)

— पं. दिनेशभाई शहा —

१) लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	७ सीडीज	१३) समयसार	७५ सीडीज
२) बालबोध पाठमाला	४ "	१४) प्रवचनसार	५० "
३) वीतराग विज्ञान पाठमाला	५ "	१५) नियमसार	३६ "
४) तत्त्वज्ञान पाठमाला	५ "	१६) अष्टपाहुड	२५ "
५) गुणस्थान विवेचन	५ "	१७) पंचास्तिकाय*	६ "
६) कारण कार्य रहस्य	१ "	१८) कार्तिकियानुप्रेक्षा	१९ "
७) छहढाला	४ "	१९) आत्मसिद्धि	१२ "
८) बृहद् द्रव्यसंग्रह	८ "	२०) समयसार नाटक	१८ "
९) रत्नकरंड श्रावकाचार	१३ "	२१) योगसार	५ "
१०) मोक्षमार्ग प्रकाशक	२३ "	२२) पंचाध्यायी*	८ "
११) अनुभवप्रकाश	८ "	२३) तत्त्वार्थसूत्र	१८ "
१२) इष्टोपदेश	५ "	२४) पुरुषार्थसिद्धिउपाय	६ "

२५) परमात्म प्रकाश २५ सीडीज

— डॉ. उज्ज्वला शहा —

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड	२५ सीडीज	पांच भाव (तत्त्वार्थसूत्र)	२ सीडीज
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड	२१ "	कारण कार्य रहस्य	२ "
लब्धिसार-क्षपणासार	११ "	प्रमाद के भेद	१ "
धवला (पु. १ से १६)	१०२ "	षट्स्थानपतित हानि वृद्धि	१ "
जयधवला (पु. १ से १६)	११७ "	संख्यामान	१ "
क्रमबद्धपर्याय	४ "	सात तत्त्व	१ "
करणानुयोग परिचय	३ "	योग	१ "
निमित्त उपादान + पंचपरावर्तन	२ "	महाधवला (पु. १ से ४)	५७ "
पंचलब्धि	२ "	जैन भूगोल VCD	२० "
पांच भाव	१ "	भावदीपिका	७ "

* ये सीडीज ३२ kbps की हैं।

Visual DVDs

- ◆ जैन सिद्धांत : शिबिर १ और २ - 16
- ◆ गुणस्थान - 10
- ◆ जीवकाण्ड : शिबिर १ और २ - 16
- ◆ जीवकाण्ड अर्थसंदृष्टि - 18
- ◆ कर्मकाण्ड : शिबिर १ और २ - 20
- ◆ कर्मकाण्ड अर्थसंदृष्टि - 13
- ◆ लब्धिसार-क्षपणासार शिबिर १ और २ - 22
- ◆ लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि - 16

सर्वज्ञ का स्मरण

पत्रांक १

७ फरवरी २००१

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा.
१५७/९ निर्मला निवास
सायन (पूर्व) मुंबई - ४०००२२
टेलि. ४०७३५८१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

दिन प्रतिदिन तुम दोनों की स्वाध्याय की रुचि बढ़ रही है देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ । "स्वाध्याय के लिए हम अधिक समय नहीं जुटा पाते क्योंकि घरपरिवार संबंधी जिम्मेदारियां, बच्चों की शरारतें और शिकायतें, कौटुम्बिक समस्यायें तथा सांसारिक सुखदुख के प्रसंग इनमें से मुश्किल से कुछ समय बचता है । हम अधिक स्वाध्याय नहीं कर पाते इस बात का हमें दुख भी होता है' ऐसा तुमने बारबार कहा भी है । मैं तुम्हारी परेशानियां समझ सकती हूँ ।

इन हालातों में ही हमें अपने स्वयं के भिन्न अस्तित्व का भान एवं पहचान करनी होगी । सभी संयोग अनुकूल हो जाने के बाद हम स्वाध्याय करेंगे कहनेवालों को ऐसा वक्त कभी मिलता ही नहीं । होनेवाली घटनायें उनकी अपनी योग्यता के अनुसार होती ही रहती हैं । 'मैं स्वयं इन सब बातों को जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं, उनमें फेरफार करनेवाला भी नहीं' इस बात को हमें हमेशा ख्याल में रखना होगा । 'मैं परद्रव्य का कुछ करनेवाला नहीं हूँ' यह बात किसीके कहने से तो हम मान नहीं सकते, ऐसी बातें पसंद नहीं आती । शास्त्र में लिखा तो है, परंतु हमें भासित नहीं होता ।

वस्तुव्यवस्थासंबंधी जिनेन्द्रकथित सिद्धांतों का ज्ञान होने पर, अपने को अकर्ता क्यों कहते हैं इस बात का निर्णय हो जाता है। इसकारण स्वतंत्र वस्तुव्यवस्था सिद्ध करनेवाले कुछ सिद्धांतों का सविस्तार जानना अति आवश्यक है । सर्वज्ञता, क्रमबद्धपर्याय, कारण-कार्य व्यवस्था, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, चार

अभाव, छह कारक आदि सिद्धांतों को निर्णयपूर्वक जानना जरूरी है ।

हमने आज तक पत्ररूप स्वाध्याय द्वारा छह द्रव्य, सात तत्त्व, सामान्य और विशेष गुण इनकी चर्चा की है जो 'जैन तत्त्वपरिचय' नामक पुस्तकरूपसे प्रकाशित हो चुकी है । वह हिंदी, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है । करणानुयोग संबंधी, जीव की बीस प्ररूपणाओं संबंधी हमारे पत्र 'करणानुयोग परिचय' नामक पुस्तकरूप से प्रकाशित हुआ है । वे भी हिंदी, मराठी ओर गुजराती में छप चुके हैं ।

हजारों वाचकों ने इसे पढ़कर खूब सराहा है । परसों एक भाई कहते थे, 'हमें तो ये विज्ञान की पुस्तकें लगती हैं, जैसे फिजिक्स केमिस्ट्री में सिद्धान्त होते हैं, वैसे लगता है । रीना मोना को भी हम धन्यवाद देना चाहते हैं क्योंकि उनके निमित्त से लिखे गये पत्र आज हमें पुस्तकरूप में प्राप्त हैं ।'

बेटियों, हम जो पढ़ रहे हैं - जिसका हम स्वाध्याय करते हैं वह 'वीतराग विज्ञान' ही तो है । सर्वज्ञ वीतरागी भगवान ने बताया हुआ, वीतरागी बनने का यह विज्ञान है । अरहंत, सिद्ध वीतरागी सर्वज्ञ हैं अर्थात् वीतराग-विज्ञानस्वरूप हैं और इसीकारण वे त्रिलोकपूज्य हुए हैं, महान हुए हैं ।

बहुत दिनों के बाद हमारा पत्ररूप स्वाध्याय पुनः शुरू करते हैं । इस बीच ये सारे अनुवाद, उनकी प्रूफ रीडिंग, अंग्रेजी अनुवाद आदि बातें चलती रही । अब कुछ नये सिद्धांत समझेंगे ।

आत्मानुभूति ही जिनशासन है । समस्त शास्त्रों का सार वीतरागता है । वीतरागता कहो या धर्म कहो, उसकी शुरुआत आत्मानुभूति से - सम्यग्दर्शन से होती है । उसके लिए वस्तुव्यवस्थासंबंधी, मोक्षमार्गसंबंधी, देव-गुरु-शास्त्र के स्वरूपसंबंधी यथार्थ निर्णय करना अनिवार्य है । तत्त्वनिर्णयपूर्वक ही आत्मानुभूति होगी, उसके बिना नहीं ।

सर्वप्रथम सर्वज्ञ भगवंतों को नमस्कार करके हम स्वाध्याय प्रारंभ करते हैं । सर्वज्ञ वीतरागी भगवान का स्वरूप जानकर उनके गुणों प्रति यानि प्रकट पर्यायों प्रति आदरभाव जाग्रत होना ही उनकी विनय है । अरहंत व सिद्ध सर्वज्ञ, वीतरागी हैं ।

अरहंत मनुष्यगति के जीव हैं, मनुष्यलोक में अर्थात् अढाई द्वीप में रहते हैं। अभी हमारे यहाँ-भरतक्षेत्र में इस पंचम काल में अरहंत भगवान नहीं है, परंतु अन्यत्र विदेहक्षेत्र में तीर्थकर तथा अन्य अरहंत साक्षात् विराजमान हैं। हम भी जिन चैत्यालयों में जिनप्रतिमा की स्थापना करके अरहंतों के गुणों को स्मरण करते हुये उनकी वन्दना, पूजन करते हैं।

अरहंत भगवान शरीरसहित 'सकल परमात्मा' हैं, सिद्ध भगवान शरीररहित होने से 'निकल परमात्मा' हैं। कल यानि शरीर।

अरहंतों के चार घातिकर्मों का पूर्ण नाश - क्षय हुआ है तो सिद्धों के आठों ही कर्मों का पूर्ण नाश हुआ है।

गुणस्थान और मार्गणास्थान आदि बीस प्ररूपणाओं द्वारा हमने अरहंत, सिद्धों का स्वरूप 'करणानुयोग परिचय' में देखा ही है।

सिद्ध भगवान भावकर्म यानि मोह, राग, द्वेष; द्रव्यकर्म यानि ज्ञानावरणादि आठ कर्म और नोकर्म यानि शरीर, मन, वाणी आदि तीनों कर्ममल से रहित हैं। वे लोक के अग्रभाग में सिद्धालय में - सिद्धशिला के ऊपर अंतिम वातवलय में विराजमान हैं।

अरहंत और सिद्ध सच्चे देव हैं। नग्न दिगंबर भावलिङ्गी मुनि सच्चे गुरु यानि साधु हैं। सर्वज्ञ वीतरागी अरहंतों की वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि और उस वाणी के अनुसार रचित शास्त्र सत्शास्त्र हैं, आगम है।

सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र ही वंदनीय, पूजनीय हैं। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र वंदनीय, पूजनीय नहीं हैं, उनका आदर, विनय करना गृहीत मिथ्यात्व है। गृहीत मिथ्यात्व का त्याग किये बिना अगृहीत मिथ्यात्व छूट नहीं सकता ऐसा वस्तुस्वरूप है।

एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय तक के जीवों की प्राप्त शरीर में अर्थात् प्राप्त पर्याय में - मनुष्य, देव, नारकी, तिर्यच आदि पर्यायों में आत्मबुद्धि, रागादि में ममत्वबुद्धि, प्रयोजनभूत सात तत्त्व संबंधी

विपरीत मान्यता अगृहीत मिथ्यात्व है। कुदेवादिकों की श्रद्धा से तथा उपदेश से जो पुष्ट होता है तथा नया ग्रहण किया जाता है वह गृहीत मिथ्यात्व है।

बेटियों, हम जिस कुल में जन्म लेते हैं वहाँ की रूढ़ियां, भाषा, संस्कार, इतना ही नहीं वहाँ की विपरीत रीतियां और अंधश्रद्धा भी हम अंगिकार करते हैं, बिना सोचे समझे सीखते हैं। हम स्वयं को सुशिक्षित कहलाते हैं परंतु देव, शास्त्र, गुरु आदिसंबंधी अपनी मान्यता एवं क्रियाओं संबंधी क्या हम कभी विचार करते हैं ? तुम ही सोचो कि क्या सभी लोग उनकी योग्यता और अयोग्यता संबंधी निर्णयपूर्वक ये सारी क्रियायें करते होंगे ?

समाज में अन्य धर्मियों तथा कई जैनियों की मिथ्या मान्यतायें एवं विचार प्रचलित हैं। हमसे ऐसी कोई भूल न हो इस बात की सावधानी रखना हमारी अपनी जिम्मेदारी है। अब मुझे तुम्हारे बारे में चिंता नहीं है परंतु रोहित, रिया, रोहन, सोहम् अभी बच्चे हैं। उनपर योग्य संस्कार हो रहे हैं या नहीं, कुदेवादिकों में उन्हें देवबुद्धि तो निर्माण नहीं होती है ना, इसकी सारी जिम्मेदारी तुम्हारी है।

अन्य धर्मियों एवं उनके देवादिकों प्रति द्वेषबुद्धि उत्पन्न किये बिना सच्चे देव, गुरु, धर्म का स्वरूप बारबार उन्हें समझाना होगा, उनमें स्वाध्याय की रुचि पैदा करनी होगी। मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलों का उनसे सेवन न हो इसलिए तुम्हें ही जागरुक रहना होगा। आजकल तो कई चॉकलेट्स, केक में अंडे तथा चरबी का इस्तेमाल होता है। मुझे पता है कि उसके बारे में तुम दोनों बहुत ही सावधान रहती हो।

तुम कहोगी, 'दिखता है माँ को आज उपदेश देने का मूड आया है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता बतानेवाली सही माँ है ना ?'

जरा ध्यान से सुनो। यह उपदेश की भाषा है - चरणानुयोग की भाषा है। सिद्धांत की भाषा - द्रव्यानुयोग की भाषा - सच्चा वस्तुस्वरूप दर्शानेवाली भाषा अलग होती है।

बोलचाल की भाषा में तथा लौकिक व्यवहार के कथन में निमित्तप्रधान, आचरणप्रधान शैली होती है। परंतु यथार्थ वस्तुस्वरूप और उसके सिद्धांतों का कथन द्रव्यानुयोग करता है।

जो कोई व्यक्ति द्रव्यानुयोग के सिद्धांतों को मात्र बौद्धिक स्तर पर स्वीकार करता है परंतु लौकिक आचार विचारों में मन चाहा स्वच्छंदी आचरण पुष्ट करता है, वह व्यक्ति गलत मार्ग पर है। दूसरों पर अन्याय करना, अनीति से धन कमाना, अभक्ष्य भक्षण करना, परिणामों की क्रूरता, तीव्र पाप परिणाम ये सारी बातें सम्यक्त्व प्राप्ति में बाधक हैं।

जिसतरह पत्थर पर बोया हुआ बीज निष्फल है, कुछ काम का नहीं है, उसमें अंकुर नहीं फूट सकता उसीप्रकार तत्त्वश्रवण करने पर भी जो जीव पाप परिणामों को ही पुष्ट करते रहते हैं उन्हें उस अमूल्य तत्त्वश्रवण से कुछ भी फायदा नहीं होता, सारा निष्फल ठहरता है। तत्त्वों का श्रवण करने तथा श्रवण करके दूसरों को सुनाने और उसके द्वारा अपना मान पुष्ट करने के लिए तत्त्वज्ञान का उपयोग करनेवाले जीव भी हैं और वे उतने में ही संतुष्ट रहते हैं। अनंतकाल में महादुर्लभ जिनेन्द्रकथित धर्मोपदेश मिलने पर भी उसका मर्म और महानता न पहचानने से वे जीव अपना ही अकल्याण कर लेते हैं।

साम्प्रत में तो चाहे जिस मार्ग से धन कमाना और उसे भोगों में लगाना इतनी ही इस मनुष्य जीवन की सार्थकता देखने में आ रही है। सारा लाभ नुकसान का हिसाब केवल पैसों में ही गिना जाता है। आत्मिक शांति, आनंद, निराकुलता, अपने अस्तित्व की पहचान तथा ज्ञान ये सारी बातें शास्त्रों में है - मात्र शास्त्रों तक ही सीमित हैं, रोजमर्राकी जिंदगी में - अपने जीवन में उससे कुछ भी संबंध नहीं है इसतरह की भ्रान्त मान्यतायें उन लोगों में पायी जाती हैं।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो तत्त्वज्ञान के अध्ययन से कुछ उपलब्धि होती नहीं दिखाई देती, सम्यग्दर्शन नहीं होता व तत्त्वों का आकलन नहीं होता इसकारण संभ्रम में पड़ते हैं। 'ये सारा पढ़ने से क्या फायदा?' पूछनेवाले मिलते हैं। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि, 'यह पढ़कर कितने जीव सम्यग्दृष्टि हुए

हैं?’ ‘अहो, ज्ञानी जीवों से ही देशना की प्राप्ति कार्यकारी होती है,’ ‘अहो, हमें सम्यग्दृष्टि जीव के दर्शन करना है ।’ अनेक सालों से सम्यग्दृष्टि जीव के सहवास में आने पर भी उन्हें उनकी पहचान नहीं होती ।

समयसार गाथा १८ में कहा है कि यह भगवान आत्मा आबाल गोपाल सभी के नित्य अनुभव में आ रहा है, परंतु यही मैं हूँ इसतरह का ज्ञान उसे उदित नहीं होता । जो स्वयं को पहचान नहीं सकता वे दूसरों के सम्यग्दर्शन को कैसे पहचानेगे ?

कोई ऐसा नहीं कहता कि मुझे मेरे शुद्धात्मा के दर्शन करने है, मुझे स्वयं को ही पहचानना है । सम्यग्दृष्टि जीव के मात्र दर्शन से क्या लाभ होगा ? हाँ, आत्मानुभूति के लिए उनका उपदेश सुनना तथा उन्हें देखकर प्रेरणा पाना ही कार्यकारी है । सम्यग्दृष्टि जीव जो उपदेश देते हैं वह आगम के कथनानुसार ही देते हैं । उनका स्वयं का कोई पंथ वे स्थापित नहीं करते ।

अन्य अन्य धर्मियों के उपदेश में से थोड़ी बहुत अच्छी लगनेवाली बातें इकट्ठी करके अपना ‘विशिष्ट पंथ’ स्थापित करके लोगों को उगनेवाले महाभाग भी पाये जाते हैं । दूसरों का भला करो, पुण्य करने से तुम्हारा कल्याण होगा इसतरह का बहुजन समाज को रुचनेवाला उपदेश देकर शीघ्र लोकप्रियता हासिल करके, प्रसिद्धि के शिखरपर विराजमान होकर, उन्हें माननेवालों के साथ साथ अपना स्वयं का भी अकल्याण करनेवाले ‘गुरु’ भी जगह जगह विद्यमान हैं ।

इसलिए देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता और लोकमूढ़ता का स्वरूप जानकर इन मूढ़ताओं से अपना बचाव करना आवश्यक है । उसीप्रकार छह अनायतनों का त्याग भी आवश्यक है । कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और इन तीनों के सेवक ये धर्म के अनायतन (अस्थान) हैं । इनमें पूज्यत्वबुद्धि, आदर, महानता भासित होना भूल है जिसे टालना जरूरी है ।

बेटियों, आजकल तो बालक जन्मते ही पोलिओ, हिपॅटायटिस, थोड़े ही दिनों में ट्रिपल, मीज़ल्स, एम.एम.आर.

आदि अनेक प्रकार के रोगनिवारक डोस और इंजेक्शन्स हम देते हैं । जितनी बार जरूरी है उतनी बार पुनःपुनः देते हैं ।

उसीप्रकार तीन मूढ़ता और छह अनायतन इन दोषों से बचने के लिए हमें मूढ़तानिवारक स्वाध्याय के डोस और इंजेक्शन्स पुनः पुनः लेना अनिवार्य है । शारीरिक रोगनिवारण के लिए लोग जितना जागरुक एवं कटिबद्ध रहते हैं उतना मान्यता, अभिप्राय के दोषों का निवारण करना तो दूर ही रहो, उससंबंधी विचार भी उनके मन को छूता नहीं है । इसका एकमात्र कारण है शरीर में एकत्वबुद्धि । 'शरीर ही मैं हूँ' ऐसी अनादि की मान्यता इस भव में भी कायम रखकर उसके कारण जन्म मरण का भवचक्र वे कायम घुमाते रहते हैं इस बात का पता भी उन जीवों को नहीं होता ।

इसलिए सर्व प्रथम सच्चे देव, गुरु, शास्त्र के स्वरूप का निर्णय जरूरी है । हमारे आचरण तथा अभिप्रायों में कुदेव, अदेव, कुगुरु आदि की श्रद्धा, भक्ति, विनय तो नहीं है ना देखने के लिए आत्मपरीक्षण करना होगा । 'रत्नकरंड श्रावकाचार' में इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है । तुमने कॅसेटों में सुना ही होगा ।

अपना यह कॅसेटों का सिस्टिम अच्छा चल रहा है । तुम्हारे पिताजी के शाम के प्रवचनों के टेप्स रोज बनते हैं, उनके ४-५ सेट्स तैयार होकर तुम दोनों की तरह अन्य दूर रहनेवाले भी लाभ लेते हैं । १०-१५ दिन में पहलेवाली कॅसेट्स वापिस लौटाकर दुबारा उसपर नवीन प्रवचन उतार देते हैं ।

तुमने कहा था कि, समय के अभाव में हम काम करते करते सुनते हैं । घरके अन्य सदस्य भी कभी कभी उस पर कॉमेंट्स करते हैं इससे पता चलता है कि चाहे-अनचाहे वे भी सुनते तो हैं । चलो, रेडिओ और टी.व्ही. दिनभर चलता रहे उससे तो यह ठीक है । फिर भी समय निकालकर ग्रंथों का स्वाध्याय करने की आदत डालो ।

सच्चे देव वीतरागी, सर्वज्ञ हैं । पूर्ण वीतरागता बारहवें गुणस्थान में प्रकट होती है उसके पश्चात् ही तेरहवें गुणस्थान में सर्वज्ञता प्रकट होती है, जीव अरहंत बनता है । इससे सिद्ध होता

है कि जो वीतरागी नहीं हैं वे सर्वज्ञ भी नहीं हैं, वे भगवान भी नहीं हैं । सर्वज्ञता की पहचान तो देखकर नहीं कर सकते परंतु वीतरागता की पहचान अवश्य होगी ।

मुनि के पूर्ण वीतरागता नहीं है, एकदेश वीतरागता है । उनके भी कोई परिग्रह यानि वस्त्र, अलंकार, पुष्प, माला, शृंगार, चंदनादि का लेप, पात्र, नोकर, स्त्री, शस्त्र, अस्त्र, धन-धान्य, गाड़ी, वाहन, घर, परिवार, कायम का निवासस्थान नहीं होता । अरहंतों को पूर्ण वीतरागता है, तो फिर ये बातें उनमें कैसी हो सकती हैं ? आहार संज्ञा (आहार लेने की इच्छा) छठवें गुणस्थान तक ही होती है सातवें में या ऊपर नहीं होती इसलिए अरहंतों को कवलाहार अर्थात् भोजन होता है मानना महामिथ्यात्व है ।

स्त्री पांचवें गुणस्थान तक ही जा सकती है ऊपर नहीं, इसलिए स्त्री को उसी पर्याय में मुक्ति मानना सर्वथा गलत है ।

अरहंतों को कोई उपसर्ग भी नहीं होता । पूर्व में मुनि अवस्था में उपसर्ग हुआ हो तो वह भी बारहवें के अंत तक ही रहता है, अरहंत अवस्था में नहीं । उनके रोग भी नहीं होता । उनके परम औदारिक शरीर होता है । अरहंत भगवान अठारह दोषों से रहित होते हैं, वे दोष इसप्रकार हैं - क्षुधा, तृषा, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, मद, भय, राग, द्वेष, मोह, चिंता, रति, निद्रा, आश्चर्य, विषाद, पसीना और खेद यानि व्याकुलता ।

तुम जानती ही हो कि अरहंतों के चार घातिया कर्मों का पूर्णतः क्षय हुआ है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अंतराय कर्म नष्ट होकर उनके अनंतज्ञान (केवलज्ञान), अनंतदर्शन (केवलदर्शन), अनंतसुख व अनंतवीर्य प्रकट हुये हैं अर्थात् अरहंत भगवान अनंत चतुष्टय के धारी हैं । भगवान के ये आत्मिक गुण हैं । भगवान के बाह्य स्वरूप के साथ साथ उनके अंतरंग स्वरूप का ज्ञान भी आवश्यक है । भगवान के गुणों का स्मरण ही उनकी सच्ची भक्ति है । यदि तुम उनका अंतर्बाह्य स्वरूप ही नहीं जानोगी तो मात्र मस्तक झुकाने से और मुँह से स्तुति बोलने से उनका आदर नहीं होगा, उलटा अनादर ही होगा ।

अन्य देवदेवताओं को पूजना, उनकी विनय करना, उन्हें अर्घ्य चढ़ाना, लक्ष्मीपूजन करना; नदी-समुद्र को पूजना; वृक्ष को पूजना; नाग, गाय आदि तिर्यचों को पूजना; कुलदेवता, यक्ष, व्यंतर, भवनवासी देव, देवी को पूजना, वास्तुशांति के लिए नवग्रहों की पूजा करना, मन्त मांगना आदि सब बातें गृहीत मिथ्यात्व है । हम तो सभी देवताओं को नमस्कार करते हैं इसलिए हम उदारमतवादी हैं माननेवाले लोग भी हैं । इसे 'विनय मिथ्यात्व' कहते हैं ।

कुदेवादिकों को मानना तो मिथ्यात्व है ही परंतु वीतराग भगवान के स्वरूप का निर्णय किए बिना मात्र कुलाचार के कारण उन्हें पूजना भी गृहीत मिथ्यात्व कहलाता है । मुझे पता है कि आज जरा कड़क बात कर रही हूँ । वीतराग भगवान के सामने मन्त मांगना, मुझे पुत्र होने दे, दावे का फैसला मेरे पक्ष में हो जाने दे, परीक्षा में मैं सफल हो जाऊँ, मेरा धंदा-व्यापार ठीक चलने दे, तो बाद में मैं इस क्षेत्र पर आकर भगवान को छत्र चढाऊंगा या बच्चे के बाल मुंडवाऊंगा आदि सारी बातें मिथ्यात्व ही है ।

कुछ लोग कहते हैं कि, 'हमें तो समाज में रहना है, जान-पहचानवालों के यहाँ जाना पड़ता है, राजनीतिवालों की तरह लोगों के मन को जीतने के लिए अन्य अन्य देवी देवताओं के सामने हमें दिखावे के लिए हाथ जोड़ने पड़ते हैं । परंतु हम तो मन में णमोकार मंत्र ही बोलते हैं' । भय से, लज्जा से, स्नेह से, आशा से, लोभ से कुदेव, कुगुरु, कुधर्म का विनय, सत्कार, वंदन करना गृहीत मिथ्यात्व है ।

रीना, मोना, मुझे बहुत से लोगों ने सुझाव दिया था कि 'करणानुयोग परिचय' के पश्चात् अब 'चरणानुयोग परिचय' लिखना । मैंने बहुत सारे श्रावकाचार ग्रंथ पढ़े इन सबमें प्रथम अधिकार 'सम्यग्दर्शन अधिकार' है । सम्यग्दर्शन प्राप्त करना यही जीव का सर्वप्रथम कर्तव्य है । हमें सम्यग्दर्शनरूपी कार्य करना है तो प्रथम उसके स्वरूप को जानना होगा और फिर वह कार्य प्रकट करने का मार्ग भी जानना होगा । इसलिए मैं इसी

विषयपर विवेचन करूंगी । तुम्हें उस कार्य के कारण भी जुटाने होंगे । कारण के बिना कार्य नहीं होता । जैसे कारण वैसा ही कार्य होगा । तुम्हें गुलाबजामुन बनाना हो तो आटा, मावा, शक्कर आदि उचित मात्रा में चाहिए । शक्कर की चासनी के बदले में नमक का पानी बना दूँ कहोगी तो नहीं चलेगा, इच्छित कार्य होगा ही नहीं ।

उसीप्रकार हमें सुखी होना है, परिपूर्ण सुख वीतरागता में है - मोक्ष अवस्था में है और उसकी शुरूआत सम्यग्दर्शन से होती है । यह कार्य प्रकट करने के लिए हमें जिनागम की 'कारण-कार्य व्यवस्था' को, उसके रहस्य को जानना पडेगा, उचित कारण जुटाने एवं गलत कारण छोड़ने पड़ेंगे । कारण-कार्य रहस्य पढ़ने पर ही तुम्हें पता चलेगा कि जुटाने या छोड़ने की बात भी कथनमात्र है । अब हम सम्यग्दर्शन का स्वरूप देखते हैं ।

सच्चे देव, सच्चे गुरु और सत्शास्त्र का तीन मूढ़ताओं से रहित श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दृष्टि जीव के छह अनायतन और आठ प्रकार के मद नहीं होते, निःशंकितादि आठ अंग होते हैं । इसीको 'तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्' भी कहते हैं । दोनों परिभाषाओं का अर्थ एक ही है, वह किसप्रकार होता है इसकी चर्चा हमने पहले 'जैन तत्त्वपरिचय' में की थी ।

सर्वप्रथम सच्चे देव का स्वरूप निश्चित करते समय उनके सर्वज्ञता और वीतरागता इन लक्षणों की हमें प्रतीति है या नहीं इस बात पर सोचना चाहिए । मात्र उनकी परिभाषायें रटने से, याद कर लेने से काम नहीं चलेगा ।

तुम्हें पता ही है कि गत तीन चार सालों से हमारा करणानुयोग का सामूहिक स्वाध्याय प्रतिदिन सुबह डेढ़ घण्टा चलता है । जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार सिखाया है और अब अर्थ संदृष्टि अधिकार चल रहा है । ये सारे ग्रंथ पढ़ते समय पद पद पर सर्वज्ञ के ज्ञान की महिमा भासित होती है । ग्रंथकार नेमिचंद्र आचार्य तथा टीकाकार पं. टोडरमलजी की बुद्धि की अगाधता ख्याल में आती है । हम जैसे मंदबुद्धियों पर उनके असीम उपकार हैं ।

एक बार क्षपणासार का स्वाध्याय चल रहा था तब ८०-८५ साल के एक गृहस्थ स्वाध्याय के लिए आये थे । वे स्वयं विद्वान, प्रवचनकार और द्रव्यानुयोग के अच्छे जानकार हैं । हमारा क्षपक श्रेणी के अनिवृत्तिकरण अर्थात् ९ वें गुणस्थानसंबंधी प्रकरण चल रहा था । जाते समय उन्होंने तुम्हारे पिताजी से कहा, 'भाई, मैं तो कल से नहीं आऊंगा । मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया । फिर भी आज मुझे बहुत भारी लाभ हुआ है । आज मुझे सर्वज्ञता की अपूर्व महिमा भासित हुयी । बहनजी से कहना कि उनका मुझ पर बड़ा उपकार है क्योंकि आज मेरा मद गल गया । मैं अपने को बड़ा पंडित समझता था परंतु जिनागम की अगाधता का मुझे बोध हो गया ।'

सर्वज्ञ का स्वरूप निश्चित करने से अपने सर्वज्ञ स्वभाव की पहचान होती है । इसलिए सर्वज्ञता का एवं सर्वज्ञ भगवान का स्वरूप जानना परम आवश्यक है । सच्चे देव सर्वज्ञ, वीतरागी ही होते हैं । कई अरहंतों की दिव्यध्वनि खिरती है - वे विश्व का स्वरूप बताकर मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं । जिन अरहंतों के समवशरणादि की रचना होती है, दिव्यध्वनि खिरती है, तीर्थ अर्थात् सच्चे धर्म के उपदेश का प्रवर्तन होता है उन्हें तीर्थकर कहते हैं ।

अरहंत अवस्था के बाद अर्थात् आयु पूर्ण होने पर बाकी रहे चार अघातिकर्मों का क्षय होकर जीव निर्वाण प्राप्त करता है - अशरीरी सिद्धदशा प्राप्त होती है ।

इसतरह हमने देखा कि भगवान अर्थात् ईश्वर यानि सच्चे देव तो विश्व को मात्र जाननेवाले हैं, किसी का कुछ भी करनेवाले नहीं हैं । फिर भी ईश्वर को जगत का कर्ता मानना, अपने कर्मों के फल देनेवाला मानना, ईश्वर को रक्षणकर्ता या नाशकर्ता मानना, ईश्वर की इच्छा से सब कुछ होता है मानना, ईश्वर को इच्छावाला अर्थात् रागसहित मानना, ईश्वर मुझे सुख प्रदान करेंगे मानना, ईश्वर मुझे मरने से बचायेंगे मानना आदि सारी देवमूढ़ता है ।

सच्चे गुरु निर्ग्रथ दिगंबर आत्मानुभवी ही होते हैं । वे २८ मूलगुणों का निरतिचार पालन करते हैं । हमेशा ज्ञान, ध्यान आदि में लीन रहते हैं । पानी पर खींची लकीर के समान अत्यंत मंद

कषायी होते हैं। उनके तो अशुभोपयोग नहीं होता। फिर भी अन्य अन्य भेषधारियों को गुरु मानना; व्यसनी, तीव्र कषायी अर्थात् क्रोधी, लोभी, मानी, मायाचारीयों को गुरु मानना; किसी को गुरु बना दो फिर वह संसार से पार उतार देगा, हमारे दुख दूर करेगा मानना; सांसारिक उपदेश देनेवाले को, यंत्र, मंत्र, तंत्र, औषधि, ज्योतिष बतलाकर लोगों को खुश करनेवालों को तथा होमहवन करानेवालों को, कुदेवादिकों की पूजन करानेवालों को, मिथ्या मार्ग का उपदेश देनेवालों को गुरु मानना या गुरुसमान उनका आदर करना गुरुमूढ़ता है।

नदी में स्नान करने में धर्म मानना, वट, पीपल आदि वृक्षों को पूजना, अग्नि में जलने में पंचाग्नि तप तपने में धर्म मानना, सूर्य-चंद्रग्रहणादि में सूतक मानना, स्नान करना, चांडालादि को दान देना, संक्रांति मानकर दान देना, कुआ पूजना, गाय को पूजना, रुपयों को-लक्ष्मी को पूजना, शस्त्रों को तथा यंत्रों को पूजना, मृत पितरों को पूजना, मृतकों को तृप्त करने के लिए तर्पण करना, श्राद्ध करना, देवताओं के लिए रतजगा करना, गंगाजल को पवित्र मानना, तिर्यचों को देव मानना, मृत्युंजय के जाप से मृत्यु टल जायेगी मानना, ग्रहों को दान देने से अपनी मृत्यु का टल जाना मानना आदि सब लोकमूढ़ता है।

आजकल तो देखा देखी अनेक नयी नयी मूढ़तायें दिखायी देती हैं। वास्तुशास्त्र का अंधानुकरण करके घर की रचना बदलने से मेरी आपत्तियां टल जायेगी मानना भी लोकमूढ़ता नहीं तो और क्या है ?

अन्य जीवों की प्रवृत्ति देखकर सत्य-असत्य, हित-अहित, योग्य-अयोग्य, आराध्य-अनाराध्य का विचार किये बिना उसीको सत्य मानकर प्रवृत्ति करना लोकमूढ़ता है।

जिनागम से सच्चे देव, गुरु, शास्त्र, धर्म आदि का स्वरूप जानकर निर्णय करने से ये सारी मूढ़तायें टल जायेगी।

आगामी पत्र में हम सर्वज्ञता का स्वरूप देखकर इस विश्व में सर्वज्ञ है भी या नहीं इस बात की चर्चा करेंगे।

जय जिनेन्द्र।

तुम्हारी माँ

सर्वज्ञ की सिद्धि

पत्रांक २.

२६ फरवरी २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

आज हम सर्वज्ञ का स्वरूप विस्तार से देखेंगे। सर्वज्ञता सच्चे देव का लक्षण है यही उसको जानने का एकमात्र हेतु नहीं है। परंतु सर्वज्ञ का स्वरूप निश्चित करने से अपने सर्वज्ञ स्वभाव का हमें पता चलता है।

आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी है। चेतना अर्थात् ज्ञान, दर्शन आत्मा का असाधारण लक्षण है जो अन्य पांच द्रव्यों में - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यों में नहीं पाया जाता। ज्ञान का कार्य है जानना। ज्ञान किस किस को जानता है ? स्व और पर सब को जानता है। स्व यानि स्वयं शुद्धात्मा-जीवतत्त्व और पर में विश्व की अन्य समस्त बातें - अन्य सभी द्रव्य, गुण और पर्यायें। तत्त्वार्थसूत्र में बताया है 'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य' अर्थात् केवलज्ञान सर्व द्रव्यों, गुणों और उनकी सर्व पर्यायों को जानता है। ये सब द्रव्य कौनसे व कितने हैं देखते हैं।

जीव द्रव्य अनंत हैं। उनसे अनंतानंत गुणा पुद्गल द्रव्य, उनसे अनंत गुणा तीन काल के समय, उनसे अनंत गुणा आकाश के प्रदेश, उनसे अनंत गुणा एक द्रव्य के गुण, उनसे अनंत गुणा सर्व द्रव्यों के गुण, उनसे अनंत गुणा सभी द्रव्यों की सभी गुणों की तीन काल की पर्यायें और उनसे भी अनंत गुणा उन पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेद ये सारी बातें एक समय में युगपत् स्पष्ट - प्रत्यक्ष जाननेवाली ज्ञानपर्याय का नाम केवलज्ञान है। जिसे पर्याय में केवलज्ञान प्रकट है उसे हम सर्वज्ञ कहते हैं। एक बार केवलज्ञान प्रकट हो जाने पर सर्वज्ञ भगवान हर समय केवलज्ञान से जानते रहते हैं - अनंत काल तक हर समय केवलज्ञान प्रकट होता रहता है।

यहाँ तो केवल अनंतगुणा इतना ही लिखा है। परंतु असल में जीवराशि की संख्या अनंत है उसका वर्ग अर्थात् अनंत गुणा

अनंत; वर्ग का वर्ग उसका भी वर्ग इसतरह अनंत बार वर्ग का वर्ग करते जाओ तो पुद्गलराशि की अनंत संख्या आती है। अनंत के भी अनंत प्रकार हैं। इन सब अनंतों से केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद सर्वोत्कृष्ट अनंत हैं। इस विश्व में ऐसी कोई भी संख्या नहीं है कि जिसके गुणकार के रूप में केवलज्ञान बता सके। केवलज्ञान स्वयं को तथा पूरे लोकालोक को जानता है। ऐसे अनंतानंत लोकालोक जानने की प्रकट शक्ति केवलज्ञान में है। अवधिज्ञान के दृष्टांत से हम इसे समझेंगे।

अवधिज्ञान के देशावधि, परमावधि और सर्वावधि इसतरह भेद हैं। सर्वावधि सर्वोत्कृष्ट अवधिज्ञान है। जितने क्षेत्र के रूपी द्रव्य को अवधिज्ञान जानता है उसे अवधिज्ञान का क्षेत्र कहते हैं। सर्वावधिज्ञान का क्षेत्र है असंख्यात लोक। यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि, 'पुद्गल द्रव्य मात्र लोकाकाश में ही पाया जाता है, लोकाकाश के बाहर नहीं, तो फिर सर्वावधिज्ञान का क्षेत्र असंख्यात लोक किसतरह हो सकता है?' उसका समाधान यह है कि उसकी इतनी शक्ति प्रकट है। लोकाकाश के बाहर पुद्गल नहीं है इसलिए शक्ति लोकाकाश क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है।

ऑलिंपिक खेलों में हम देखते हैं कि खिलाड़ी वेट लिफ्टिंग का विश्व विक्रम - रेकॉर्ड करता है। इसका अर्थ यह तो नहीं है कि वह खिलाड़ी रोज उतना ही वजन उठाकर घूमता हो। मान लो कि वह रोज पांच किलो वजन का सामान ले-जा करता हो, तो इसका मतलब यह तो नहीं है कि उसकी शक्ति यानि कर्पसिटि सिर्फ उतनी ही हो।

अब तो ख्याल में आया होगा कि केवलज्ञान में अनंतानंत लोकालोक जानने की शक्ति प्रकट है। इन सब बातों का ज्ञान उनकी तरफ देखने से नहीं होता, परंतु आत्मा में एकाग्र होने से होता है। ज्ञानपर्याय स्वयं अपनी योग्यता से स्व तथा पर को जाननेरूप परिणमित होती है। स्व तथा पर को जानना ज्ञानपर्याय का स्वयं का सामर्थ्य है, यह ज्ञान की स्वपरप्रकाशक शक्ति है।

सर्वज्ञ स्वभाव का निर्णय करके उस अपने स्वभाव में एकाग्र होने पर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है, उसमें अधिकाधिक

स्थिरता-लीनता करने से चारित्र्य की प्राप्ति होती है और पूर्णरूपसे स्थिर होने पर उसका फल अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होता है - सर्वज्ञता प्रकट होती है ।

हमारा सर्वज्ञ स्वभाव है । वस्तु का जो स्वभाव है वह 'स्वतःसिद्ध' होता है, दूसरे किसी से वह उत्पन्न नहीं होता । स्वभाव अनादि का है और अनंतकाल तक रहता है इसलिए वह 'अनादिअनंत' है । स्वभाव हमेशा 'परिपूर्ण' होता है, 'असीम' अर्थात् अमर्यादित होता है । स्वभाव कायम रहने के लिए उसे अन्य किसी के सहाय की जरूरत नहीं होती इसलिए वह 'असहाय' होता है । परिणमन करना भी द्रव्य का स्वभाव है । जिसतरह कायम टिकने के लिए द्रव्य स्वयं समर्थ है उसीतरह परिणमन करने में भी वह पूर्ण समर्थ है । अपना परिणमन अर्थात् कार्य करने के लिए द्रव्य को अन्य द्रव्य की सहायता-मदद की जरूरत नहीं होती । जीव द्रव्य स्वयं अपने सर्वज्ञ स्वभाव का आश्रय करके सर्वज्ञ पर्याय प्रकट करता है ।

जरा सोचो तो सही कि हमें महिमा किसकी आती है? 'सर्व' पदार्थों की या 'ज्ञ' स्वभाव की ? क्या क्या जानता है इसकी महिमा आती है या जाननेवाले की महिमा आती है? सर्वज्ञस्वभावी आत्मा कहते ही स्वयं के स्वभाव पर दृष्टि जाती है या परपदार्थों के अनंतता की महिमा आती है? केवलज्ञान पर्याय की महिमा आती है या जिसके आश्रय से अनंतानंत काल तक केवलज्ञान की पर्यायें उत्पन्न होती रहती हैं उस सर्वज्ञ स्वभाव की महिमा आती है? हमारा सर्वज्ञ स्वभाव तो अनादि अनंत विद्यमान है । उसका निर्णय तो मतिश्रुतज्ञान में ही होता है । हमारी वर्तमान अल्पज्ञान की पर्याय सर्वज्ञ स्वभाव को जानने लगती है उस समय से 'आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्व शक्ति' का निर्मल परिणमन शुरू होता है ।

सर्वज्ञत्व अर्थात् केवलज्ञान १३ वें गुणस्थान में प्राप्त होता है । अरहंत और सिद्ध सर्वज्ञ हैं । बाकी सारे जीव- १ले से १२ वें गुणस्थान तक के जीव अल्पज्ञ यानि छद्मस्थ हैं । छद्म यानि आवरण, ज्ञानावरण कर्मसहित जीव, अल्पज्ञानी जीव छद्मस्थ कहलाते हैं ।

सर्वज्ञ का स्वरूप जानने के बाद अब हम सर्वज्ञ की सिद्धि करते हैं। सर्वज्ञ का स्वरूप सुनने पर कोई प्रश्न करेगा कि, 'अहो ! सर्वप्रथम सर्वज्ञ की सिद्धि भी तो कीजिए। क्या सचमुच सर्वज्ञ की उपस्थिति है? हम कहते हैं कि सर्वज्ञ होते ही नहीं।' उनसे हम पूछते हैं, 'क्या सर्वज्ञ इस देश में नहीं हैं कि कहीं भी नहीं हैं?' उस पर वे कहेंगे, 'कहीं भी नहीं हैं।'

उनसे फिर पूछते हैं, 'सर्वज्ञ इस काल में नहीं हैं या तीनों काल में नहीं हैं?' उस पर वे कहेंगे, 'सर्वज्ञ कभी भी नहीं होते'। उनसे हम कह सकते हैं, 'भाई! आप ही सर्वज्ञ हो गए क्योंकि आपको तीन काल और तीन लोक का ज्ञान है।'

सभी सम्प्रदाय के लोग कहते हैं कि उनके भगवान सर्वज्ञ हैं। परंतु सभी लोग अपने अपने भगवान का स्वरूप भिन्न बताते हैं। यदि उनमें से कोई एक सच्चा हो तो बाकी सभी झूठ साबित होंगे। सर्वज्ञ का स्वरूप तो सर्वत्र और सदा काल एक ही प्रकार का होना चाहिए, भिन्न भिन्न नहीं और सभी सर्वज्ञों की वाणी भी एक समान होनी चाहिए, भिन्न भिन्न नहीं। सर्वज्ञ की वाणी में कभी भी परस्पर विरोध नहीं पाया जाता। अन्य सम्प्रदायों के देवों की वाणी में अर्थात् उनके शास्त्रों में विरोध पाया जाता है। जैसे, कहीं अहिंसा का उपदेश तो कहीं हिंसा का समर्थन, कहीं ब्रह्मचर्य का उपदेश तो कहीं 'अपुत्रस्यगतिर्नास्ति' का कथन आता है अर्थात् निपुत्रिकों को स्वर्ग नहीं मिलता कहते हैं।

इसकारण जो निर्दोष एवं निरावरण हैं उन्हीं को 'आप्त' यानि सच्चा देव-अरहंत मानना उचित होगा। निर्दोष अर्थात् दोषरहित यानि पूर्ण वीतरागी और निरावरण अर्थात् आवरण रहित - ज्ञानावरण, दर्शनावरण रहित केवलज्ञानी। सर्वज्ञ की सिद्धि के लिए प्रथम यह बात सिद्ध करनी पड़ेगी कि कोई जीव निर्दोष और निरावरण हो सकता है।

हम देखते हैं कि कोई जीव असंयमी (१ ले से ४ थे गुणस्थानवर्ती जीव), कोई जीव संयमासंयमी (५ वें गुणस्थानवर्ती) तो कोई जीव संयमी (६ वें से १२ वें गुणस्थानवर्ती) होते हैं। अर्थात् दोषों का अभाव होते होते उनका सम्पूर्ण अभाव होकर कोई जीव निर्दोष बन सकता है।

एकेंद्रिय जीवों के ज्ञान का आवरण सबसे अधिक है अर्थात् उनके ज्ञान का उघाड सबसे हीन है । सबसे हीन श्रुतज्ञान का नाम है 'पर्यायज्ञान' जो अक्षर के अनंतवें भाग जितना है । 'अक्षर' भी श्रुतज्ञान का एक भेद है । अ, ब, क, अक्षरों की बात नहीं है ।

एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय तक ज्ञान का क्रमिक विकास दिखायी देता है । संज्ञी पंचेंद्रियों में, अपने आसपास के अनेक लोगों में बुद्धि की तरतमता दिखायी देती है, कोई मतिमंद तो कोई तीक्ष्ण बुद्धिवाले दिखाई देते हैं । इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान का पूर्ण विकास होकर ज्ञान पूर्णरूप से निरावरण हो सकता है । इसे हम ज्ञानावरण कर्म का क्षय होकर क्षायिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान प्रकट होना कहते हैं ।

बारहवें गुणस्थान में जीव निर्दोष अर्थात् पूर्ण वीतरागी होता है । उसके कोई भी इच्छा, शुभ, अशुभ भाव, काम, क्रोध, हास्य, शोक, दया आदि कोई भी कषाय नहीं होते । अंतर्बाह्य परिग्रहों का सम्पूर्ण अभाव हो जाता है । मोह, राग, द्वेष अंतरंग परिग्रह हैं और वस्त्र, पात्र, धनधान्यादि बाह्य परिग्रह हैं । उसके एक अंतर्मुहूर्त पश्चात् तेरहवें गुणस्थान के पहले समय में जीव सर्वज्ञ यानि निरावरण हो जाता है । जो निर्दोष हुआ है वही निरावरण सर्वज्ञ हो सकता है । इसलिए यह सिद्ध होता है कि अन्यमतियों की ईश्वरसंबंधी कल्पनायें अत्यंत गलत हैं । ईश्वर भक्तों का भला करता है और दुष्टों का दमन करता है इसतरह की बातें कल्पित हैं ।

इसतरह निर्दोष (वीतराग) और निरावरण (केवलज्ञान) की सिद्धि करने पर हम सर्वज्ञ की सिद्धि कर सकते हैं ।

सर्वज्ञ की सिद्धि करनेवाले वचन तो जिनागम में जगह जगह पर पाये जाते हैं, सर्वत्र पाये जाते हैं । सर्वज्ञसिद्धि तो न्यायशास्त्रों का प्रमुख विषय है । आचार्य समंतभद्र की 'आप्तमीमांसा', आचार्य अकलंकदेव की 'अष्टशती' एवं आचार्य विद्यानंदी की 'अष्टसहस्री' में इसकी विस्तार से चर्चा की है।

चारों ही अनुयोगों द्वारा सर्वज्ञ की सिद्धि होती है । प्रथमानुयोग के अनेक उदाहरणों से हम परिचित हैं । प्रथम

तीर्थकर भगवान आदिनाथ ने बताया था कि भरत चक्रवर्ती का पुत्र मारीचि, जो मुनिदीक्षा धारण करके समवशरण में विद्यमान था, अनेक भवों के बाद चोबीसवां तीर्थकर महावीर होगा, त्रिशला और सिद्धार्थ उसके माता पिता होंगे आदि । भगवान नेमिनाथ ने बारह वर्ष बाद द्वारका जलने की तथा उसके निमित्तों की घोषणा की थी ।

भूत, वर्तमान, भावि तीर्थकरों के नाम तथा उनके पूर्वभवों का वर्णन हमें प्रथमानुयोग द्वारा ज्ञात होता है । ये सारी बातें सर्वज्ञ की वाणी में आयी हुयी हैं । करणानुयोग पढ़ते समय पदपद पर केवलज्ञान की महिमा और सर्वज्ञ की श्रद्धा दृढ़तम होती जाती है । संख्यामान और उपमामान के भेदप्रभेद, असंख्यात के असंख्यात प्रकार और अनंत के अनंत प्रकार, जीवराशि, पुद्गल राशि, प्रत्येक समय में बंधनेवाले कर्म परमाणुओं की संख्या, कर्म की गुणश्रेणीरूप रचना, प्रत्येक समय में कर्म में होनेवाले परिवर्तन, गणित की चौदह धारायें, गणित के अनेक सूत्र पढ़ते समय ख्याल में आता है कि ये सारी बातें केवलज्ञानियों ने प्रत्यक्ष जानी हुयी हैं - कल्पना से रचित नहीं हैं । तीन लोक का सविस्तार वर्णन पढ़ते समय यह निश्चय हो जाता है कि इन सब बातों को जाननेवाला कोई सर्वज्ञ ही होना चाहिए ।

इसपर कोई शंका करेगा कि ये सारी बातें सर्वज्ञकथित हैं यह हमें मान्य है परंतु सर्वज्ञ तो पहले हो चुके अब वर्तमान में कोई भी सर्वज्ञ नहीं है, कहीं भी उनकी उपस्थिति नहीं है । उसका समाधान यह है कि वर्तमान में इस भरतक्षेत्र में सर्वज्ञ-अरहंत नहीं हैं परंतु विदेहक्षेत्र में तो सर्वज्ञ की उपस्थिति सदाकाल होती ही है, भरतक्षेत्र में मात्र चौथे काल में होती है ।

शास्त्र में निरंतर मार्गणा बताया है । निरंतर मार्गणा का अर्थ ही यह है कि उन विवक्षित गुणस्थानों में (या विवक्षित मार्गणा में) कोई न कोई जीव हमेशा होगा ही । ऐसा एक समय मात्र भो नहीं होता कि उस गुणस्थान में कोई जीव ही न हो । पहला, चौथा, पांचवा, छठवा, सातवा और तेरहवा गुणस्थान निरंतर गुणस्थान हैं । इन गुणस्थानों में नाना जीवों की अपेक्षा से एक समय मात्र का भी अंतर नहीं पड़ता । इससे सिद्ध होता है कि

तीर्थकरोँ का और उनके उपदेश का, मोक्षमार्ग का तथा संसार का भी कभी अभाव नहीं होता ।

अब अन्य प्रकार से भी सर्वज्ञ की सिद्धि करते हैं ।

जहाँ निमित्तरूप से अनंतानंत ज्ञेय पदार्थ विद्यमान हैं वहाँ उन सबको एकसाथ जाननेवाला कोई सर्वज्ञ भी होना ही चाहिए । प्रत्येक द्रव्य में प्रमेयत्व नाम का सामान्य गुण है, जो बताता है कि द्रव्य किसी ना किसी ज्ञान का विषय होता ही है अर्थात् केवलज्ञान का विषय तो होता ही है ।

द्रव्यों में, उनके अनंत गुणों में, उनकी तीन काल की सभी पर्यायों में तथा उनके अविभाग प्रतिच्छेदों में ऐसी शक्ति है कि वे ज्ञान में प्रमेय हो - ज्ञान में झलके । तो फिर उन सभी बातों को जाननेवाला ज्ञान भी अवश्य विद्यमान होना चाहिए । प्रमेयत्व शक्ति का प्रमेयरूप होने का कार्य निरंतर चालू रहता है एतदर्थ इन सबको जाननेवाला केवलज्ञानी भी सदाकाल विद्यमान होना ही चाहिए । इस न्याय से भी सर्वज्ञ की सिद्धि होती है । बेटियों, आज तक हमने सिद्धांत प्रवेशिका में से जो सिद्धांत, न्याय पढ़े हैं, उन्हीं के आधार से हम सर्वज्ञ की सिद्धि कर रहे हैं ।

यह एक नियम है कि जो जिसका स्वभाव है वह अमर्यादित होता है, असीम होता है, उसमें मर्यादा यानि सीमा नहीं होती । जैसे, अवगाहनहेतुत्व आकाश द्रव्य का विशेष गुण है । अन्य द्रव्यों को अवगाहन देना उसका स्वभाव है । अनंतानंत द्रव्यों को अवगाहन देने पर भी बाकी सभी द्रव्य लोकाकाश जितने क्षेत्र में समा जाते हैं-रहते हैं उससे अनंतानंत गुणा अलोकाकाश खाली ही रहता है-उसमें आकाश द्रव्य बिना अन्य कोई भी द्रव्य नहीं पाया जाता ।

उसीप्रकार ज्ञान की एक पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि विश्व के अनंतानंत द्रव्य, उनके गुण, उनकी तीनों काल की पर्यायें, उनके अविभाग प्रतिच्छेद, उनके निमित्त तथा परस्पर संबंध आदि सारी बातों को युगपत् प्रत्यक्ष स्पष्ट जानकर भी उस ज्ञान का अनंत गुणा भाव अर्थात् शक्ति खाली रहती है । कहते हैं कि अनंतानंत लोकाकाश होते तो भी केवलज्ञान के एक अंश में जाने जाते ।

अल्पज्ञ क्षयोपशम ज्ञानवाले हैं वे भी सर्वज्ञता का - निरावरण ज्ञान का निर्णय कर सकते हैं ।

सर्वज्ञ की वाणी द्वारा - जिनेन्द्र भगवान कथित आगम द्वारा हम सर्वज्ञ की सिद्धि कर सकते हैं । सर्वज्ञ के वाणी की पूर्वापर अविरोधता, सत्यता, सम्पूर्ण विश्व का स्वरूप कथन करने की समर्थता अर्थात् वाचकता आदि गुणों द्वारा, आगम प्रमाण द्वारा, न्यायशास्त्रों के अनेक न्यायों द्वारा, द्रव्यानुयोग के सिद्धांतों द्वारा, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग आदि के आधार से अनेक प्रकार से हम सर्वज्ञ की सिद्धि कर सकते हैं ।

श्री कुंदकुंदाचार्य मुनि सदेह विदेह क्षेत्र में सीमंधर भगवान के समवशरण में गये थे, वहाँ आठ दिन तक रहकर सर्वज्ञ तीर्थकर के साक्षात् दर्शन किये थे, उनकी दिव्यध्वनि सुनी थी । सत्य महाव्रतधारी मुनियों का यह कथन शिलालेखों द्वारा और ग्रंथों द्वारा आज भी हमें उपलब्ध है ।

जातिस्मरण ज्ञान द्वारा पूर्वभव का स्मरण होता है । श्रीमद् राजचंद्र तथा बहनश्री चम्पाबेन के जातिस्मरण ज्ञान में उन्होंने पूर्वभव में तीर्थकरों को प्रत्यक्ष देखने की बात जानी थी ।

इसप्रकार कारण-कार्य व्यवस्था का रहस्य जानने के पहले हम सर्वज्ञता को सिद्ध करते हैं । सर्वज्ञ तो धर्म का, धर्मतीर्थ यानि मोक्षमार्ग के उपदेश का मूल है । सर्वज्ञ के स्वरूप की पहचान बिना उनके वाणी की सत्यता एवं महिमा भासित नहीं होगी । सर्वज्ञ के सही निर्णय बिना सम्यग्दर्शनरूपी कार्य प्रकट नहीं होगा । मोक्ष एवं मोक्षमार्ग के स्वरूप के निर्णय बिना मोक्षमार्ग का प्रारंभ नहीं हो सकता ।

इसलिए सर्वज्ञता संबंधी मिथ्या कल्पनायें और उनका निराकरण इस विषय पर हम आगामी पत्र में चर्चा करेंगे ।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

सर्वज्ञ संबंधी भ्रांतियां

पत्रांक ३

८ मार्च २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

बेटियों, प्रत्येक जीव को स्वयं विचार करना चाहिए कि 'इस मनुष्यभव में आकर मैंने कौनसी विशेष बात प्राप्त की? अनंतकाल में दुर्लभ से दुर्लभ मनुष्यभव आज मुझे प्राप्त हुआ है । उससे भी अत्यंत दुर्लभ ऐसा सच्चा जिनेन्द्रकथित उपदेश मुझे प्राप्त हुआ है । फिर भी लौकिक संयोगों की प्राप्ति के पीछे लगकर मैं अपनी निर्घृण हिंसा तो नहीं कर रहा हूँ ना ?'

स्वयं के अस्तित्व की पहचान न करना, उसका अस्वीकार करना, उसे भूल जाना तो स्व की हिंसा ही तो है । दूसरे को दुःखी देखकर हमें दया आती है परंतु क्या आज तक कभी स्वदया का भाव उत्पन्न हुआ है ? हम कहते हैं 'दया धरम का मूल है' । इस दया की शुरूआत तो स्वदया से होती है ।

तुम कहोगी, 'यहाँ फुरसत किसे है ? हमें तो मरने की भी फुरसत नहीं है । हमारा तो हेक्टक लाईफ है-अत्यंत व्यस्त जिंदगी है ।'

जैसे मरनेवाले सारे फुरसत से ही मरते होंगे? जहाँ स्वयं की पहचान नहीं है, वह जीना क्या जीना है? वहाँ तो क्षण क्षण भयंकर भावमरण चल रहा है । दिनभर की थकान से १५-२० मिनट स्नान के लिए निकालती हो तो फिर ५ मिनट स्वआत्मासंबंधी विचार के लिए नहीं निकाल सकती? प्रवास करते हुए, काम करते करते, नींद लगने से पहले ये विचार क्यों नहीं आते? क्योंकि हमें जिसकी महानता भासित होती है, उसी के विचार रातदिन हमारे मस्तिष्क में घूमते रहते हैं । परद्रव्यों की पर्यायें हम ना बना सकते हैं, ना बिगाड सकते हैं, ना उसमें हेरफेर ही कर सकते हैं फिर भी हम उनके बारे में संकल्प विकल्प करते रहते हैं और बिना वजह दुःखी होते रहते हैं, परंतु शाश्वत सुख का मार्ग सुलभ और सहज होने पर भी हमें उस का विश्वास ही नहीं होता ।

सच्चे सुख का यह मार्ग हमें सर्वज्ञ वीतरागी अरहंतों ने-तीर्थकरों ने बताया है । सर्वज्ञ का सही निर्णय करनेवालों को ही उनकी वाणी का विश्वास होगा । सर्वज्ञ के स्वरूप का निर्णय करते समय हमें अपने सर्वज्ञ स्वभाव की पहचान होती है, अपना स्वरूप ख्याल में आता है, मिथ्यात्व मंद होकर उसका नाश होता है ।

सर्वज्ञ हैं और सदाकाल रहते हैं इस बात की हमने चर्चा की थी । परंतु सर्वज्ञ के बारे में अनेक मिथ्या कल्पनायें समाज में प्रचलित हैं । इनमें से कोई भ्रांतियां अपने में तो नहीं है ना, इसका तुम अवश्य विचार करो । हमने देखा था कि सर्वज्ञ भगवान सभी द्रव्यों की तीनों काल की पर्यायों को युगपत् जानते हैं । पर्यायें निश्चित होगी तभी तो वे उन्हें जानेंगे अर्थात् इन पर्यायों का क्रम, उनका निश्चित समय, उनके निमित्त सारा कुछ नक्की है, निश्चित है । इसे क्रमनियमित परिणाम या क्रमबद्धपर्याय कहते हैं । जिन्हें कर्मबद्धपर्याय संबंधी अज्ञान है या जो इस सिद्धांत का विरोध करना चाहते हैं वे निम्नप्रकार से सर्वज्ञ का स्वरूप ही विपरीत मान लेते हैं, दूसरों को भी वैसा ही उपदेश देकर भ्रांतियां फैलाते हैं ।

(१) 'जो पर्यायें भूतकाल में हो चुकी हैं और जो वर्तमान में विद्यमान हैं वे तो क्रमबद्ध हैं, निश्चित क्रम से और होने योग्य थी वे ही हुयी हैं उसमें कोई परिवर्तन - कोई हेरफेर नहीं होता और सर्वज्ञ उन्हें एक समय में जानते हैं, परंतु भविष्यकालीन पर्यायें कैसे निश्चित हो सकती हैं? वे क्रमबद्ध नहीं हो सकती । इसलिए सर्वज्ञ भविष्य की पर्यायों को जानते हैं कहना गलत है ।'

उनकी मान्यता में सर्वज्ञ भगवान भूत और वर्तमान को तो जानते हैं परंतु भविष्य को नहीं जान सकते । जिन्हें कर्तृत्व का अहंकार है और स्व तथा पर की पर्यायें अपनी इच्छानुसार पलटाने का मिथ्या भ्रम विद्यमान है, वे लोग सर्वज्ञ के स्वरूप संबंधी संशय निर्माण करके वस्तुस्वरूप के विरुद्ध कथन करते हैं ।

वस्तु यानि छहों द्रव्य त्रिकाल विद्यमान रहते हैं । द्रव्य प्रतिसमय किसी ना किसी अवस्थारूप से विद्यमान रहता है । पर्याय एक समय मात्र रहती है, पश्चात् दूसरी नयी पर्याय उत्पन्न होती है । इसतरह अनादिअनंत सुनिश्चित पर्यायों का क्रम से

होना उस वस्तु के स्वरूप में ही विद्यमान होता है, पर्यायों का वह प्रवाहक्रम उस वस्तु का स्वकाल है और विवक्षित पर्याय का जो स्थान है, जो समय है, वह उस पर्याय का स्वकाल है जो एक समय का है और वह निश्चित है ।

तुम्हें पता ही है कि प्रत्येक द्रव्य अपने स्वचतुष्टय से युक्त होता है । प्रत्येक का अपना स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव भिन्न भिन्न होता है और वह त्रिकाल कायम रहता है । द्रव्य की अपेक्षा से प्रत्येक का स्वद्रव्य वही रहता है, उसका स्वक्षेत्र वही रहता है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य के प्रदेश वे ही और उतने ही रहते हैं, उसका स्वभाव यानि द्रव्य के अनंत गुण भी वे ही रहते हैं । उसीप्रकार द्रव्य का स्वकाल यानि पर्यायों का अनादिअनंत प्रवाहक्रम वही रहता है, कभी बदलता नहीं है । उस प्रवाहक्रम में पर्यायों को आगे पीछे नहीं कर सकते । प्रत्येक समय की पर्याय भी वही रहती है तथा पर्यायों का निश्चित क्रम भी वही रहता है ।

सर्वज्ञ ने तो इस वस्तुस्थिति को अपने दिव्य केवलज्ञान द्वारा जाना है, उसी बात को दिव्यध्वनि में बताया है परंतु इस वस्तुव्यवस्था को बनाया नहीं है । सभी द्रव्यों की भविष्य में होनेवाली पर्यायों को भी जान लेना तो ज्ञान की महानता है, केवलज्ञान की विशेषता है । पर्याय होने के बाद ही जाने ऐसी पराधीनता केवलज्ञान में नहीं है ।

भविष्य की बातें - आगाही तो हम जैसे अल्पज्ञानी भी कर सकते हैं । सूर्य-चंद्र के ग्रहण, चंद्र के भ्रमण अनुसार होनेवाली तिथियां, पक्ष, मास तथा सूर्यभ्रमण के अनुसार दिन, रात, वार, मास, अयन तथा उनमें होनेवाले परिवर्तन इनकी जानकारी हमें पहले से ही उपलब्ध होती है । हवामान खाते के अंदाज भी पहले ही जाहिर किये जाते हैं । हम जान सके और केवली भविष्य को न जाने?

जो जीव अपने अल्पज्ञान के घमंड में मिथ्या भ्रमणा के कारण सर्वज्ञ के स्वरूप को विपरीत प्रस्तुत करता है उसके लिए शास्त्र में अंधे का दृष्टांत दिया है । दो आदमी थे एक अंधा और दूसरा आँखवाला । आँखवाले ने कहा अभी आकाश में चार पंछी उड़ रहे हैं तब अंधा उससे बहस करता है कि चार नहीं

एक ही पंछी है ।

सर्वज्ञ भगवान जो बातें प्रत्यक्ष स्पष्ट जानकर बताते हैं, उनपर यह जीव अविश्वास दिखाता है, प्रश्नचिन्ह लगाता है, इसे सर्वज्ञ का 'अवर्णवाद' कहते हैं । क्या करे! उन्होंने आज तक सर्वज्ञ को तो माना था अतः उनका निषेध तो नहीं कर सकते थे इसलिए उनके स्वरूप को विकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं । समाज के भोले जीव, जिन्हें तत्त्व का अभ्यास नहीं है, इनकी बातों में आ जाते हैं । इसतरह ये लोग स्व तथा पर का अकल्याण करते हैं ।

(२) कोई कहते हैं कि, 'सर्वज्ञ भगवान भविष्य को तो जानते हैं परंतु सशर्त जानते हैं । जैसे, जो पुण्य करेगा वह सुखी होगा, जो अभ्यास करेगा वह पास होगा ।'

बेटियों, इसतरह का ज्ञान तो तुम्हें और मुझे भी है तो फिर सर्वज्ञता की दिव्यता कहाँ रही? सर्वज्ञ के ज्ञान में ऐसी संशयात्मक बात नहीं होती । वे तो निश्चितरूप से जानते हैं कि विवक्षित व्यक्ति अभ्यास करेगी और विशिष्ट क्रमांक से पास होगी या बिमारी के कारण परीक्षा में नहीं बैठेगी या विवक्षित व्यक्ति अभ्यास नहीं करेगी परंतु झूठे मार्ग से पास होगी आदि ।

सर्वज्ञ तो त्रिकालज्ञ हैं । इसलिए जो निश्चित है उसे ही वे जानेंगे, यदि निश्चित नहीं होता तो भविष्य को कैसे जानते?

(३) कोई कहते हैं कि, 'उनकी प्रशंसा करने के लिए उन्हें सर्वज्ञ कहा जाता है, अतिशयोक्ति में सर्वज्ञ कहते हैं परंतु वे असल में सर्वज्ञ नहीं हैं ।'

जो लोग सर्वज्ञ को सर्वज्ञ मानने को तैयार नहीं हैं, उन्हें उनके उपदेश पर कैसे विश्वास हो सकता है? जिंदगीभर णमोकार मंत्र बोलते आये हैं, जिनेन्द्र भगवंतों की पूजन करते आये हैं और फिर भी सर्वज्ञ के स्वरूप संबंधी इसतरह का अज्ञान होना उनका अपमान करने जैसा है । कोई अपने माता पिता के पैर छूकर रोज उनकी आरति उतारे और दिनभर कभी भी उनकी आज्ञा का पालन न करे । वैसे ही यह दशा है ।

(४) अन्य कोई लोग कहते हैं कि, 'निमित्तज्ञानियों के समान अर्थात् पृथ्वी, आकाश, मेघ, हवा, स्वप्न, हस्तरेखा, चेहरा

आदि देखकर भविष्यसंबंधी कुछ बातों का ज्ञान होनेवाले जीवों के समान सर्वज्ञ भगवान भविष्य को विशेष रूप से जानते हैं । उनका ज्ञान अत्यंत विशाल होने के कारण उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं ।

इन लोगों की मान्यता में सर्वज्ञ भगवान क्षयोपशम ज्ञानियों में अधिक ज्ञानवाले हैं । उन्हें शायद इस बात का पता नहीं है कि सर्वज्ञ का क्षायिक ज्ञान है - केवलज्ञान है और वे त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों को युगपत् प्रत्यक्ष स्पष्ट जानते हैं, क्रम क्रम से नहीं ।

भविष्य निश्चित मानने में अज्ञानी को परतंत्रता भासित होती है । 'फिर हमारा पुरुषार्थ क्या रहा ?' इसतरह विचार करने से वह पुरुषार्थ की हानि होना मानता है अथवा बिना पुरुषार्थ के ही जो होना है वही होगा इसतरह की मिथ्या भ्रांति कर लेता है । क्षयोपशम ज्ञानी भी भविष्य की आगाही कर सकता है, ग्रह, तारों, नक्षत्रों संबंधी, ग्रहण संबंधी, धूमकेतु संबंधी आगाही कर सकता है; अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी भी भविष्य की बातें जान लेते हैं तो फिर सर्वज्ञ भगवान भविष्य को नहीं जानते कहना महान अज्ञान का द्योतक है ।

(५) कुछ लोग नियमसार गाथा १५९ का आधार देकर कहते हैं कि 'केवली भगवान पर को व्यवहार से जानते हैं निश्चय से पर को जानते ही नहीं । समयसार में व्यवहार को अभूतार्थ कहा है, इसलिए केवली भगवान पर को जानते ही नहीं है, मात्र स्व को ही जानते हैं । इसकारण वे सर्वज्ञ नहीं हैं, कथनमात्र सर्वज्ञ हैं ।

इसे जरा स्पष्ट करके लिखना चाहती हूँ । तुमने ना नियमसार पढ़ा है और ना ही समयसार । इसलिए ग्रंथों के कथन को ठीक तरह से, नयविवक्षा से समझना होगा । सर्वप्रथम नियमसार की गाथा एवं उसका अर्थ समझेंगे । नियमसार गाथा १५९ में कहा है —

‘जाणदि पस्सदि सव्वं ववहार णयेण केवली भगवं ।

केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं ॥’

अर्थात् व्यवहार नय से केवली भगवान सबको जानते हैं, देखते हैं और निश्चयनय से केवली भगवान अपनी आत्मा को जानते हैं, देखते हैं । निश्चय और व्यवहार श्रुतज्ञान के भेद हैं, कथन पद्धति के भेद हैं । केवलज्ञान में निश्चय, व्यवहार भेद

नहीं होता, केवलज्ञान संबंधी हमारे कथन में होता है। निश्चय और व्यवहार, दो प्रकार से एक ही बात का कथन होता है। निश्चय वस्तु और व्यवहार वस्तु ऐसी दो वस्तुयें नहीं होती, अपितु एक ही वस्तु संबंधी निरूपण या कथन दो प्रकारसे होता है।

जैसे, मोक्षमार्ग दो नहीं हैं परंतु मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से होता है उसीतरह स्व को जानना और पर को जानना ये दो बातें नहीं हैं। ज्ञान तो सब जानता है, असल में ज्ञान अपनी ज्ञान पर्याय को जानता है जो स्वयं स्वपरप्रकाशक है। ज्ञान की स्वपरप्रकाशक शक्ति है। प्रकाशन करना का अर्थ है जानना। ज्ञान स्वयं ज्ञानरूप रहकर पर संबंधी ज्ञान होता है वह ज्ञान की अवस्था ज्ञानपर्याय की स्वयं की योग्यता से होती है।

केवली भगवान सभी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों को अर्थात् सर्व, सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा सब जानते हैं। ज्ञान किस विधिसे यानि प्रक्रिया से जानता है इसका विचार करेंगे तो ख्याल में आता है कि ज्ञान की पर्याय में पर्याय की अपनी योग्यता से कुछ ज्ञात होता है अर्थात् ज्ञान ज्ञानाकार होता है। आकार का अर्थ केवल आकार यानि Shape नहीं लेना, विवक्षित पदार्थ संबंधी ज्ञान होना, उसकी विशेषतायें प्रतिभासित होना, समझ में आना उसे 'आकार' कहते हैं। इसीलिए ज्ञान को साकार भी कहते हैं। प्रत्येक समय की ज्ञानपर्याय अपने उन ज्ञानाकारों को ही जानती है।

जैसे, अभी मैं अपने ज्ञानाकारों को जान रही हूँ। तो तुम पूछोगी कि वे ज्ञानाकार कौनसी वस्तु संबंधी ज्ञान कर रहे थे? तब मुझे ज्ञेय की ओर से कथन करना पड़ेगा कि सामने कागज़ है, उससंबंधी ज्ञानाकारों को मैं जान रही हूँ। समझाने के लिए ज्ञेय का नाम लेना पड़ता है तब इन्हीं ज्ञानाकारों को ज्ञेयाकार भी कहते हैं। अब मुझे बताओ, मैं जिसे जान रही हूँ वह आकार यानि ज्ञान ज्ञान से बना हुआ है, ज्ञानरूप है, ज्ञानमय है कि कागज़रूप है? कागज़मय है? ज्ञानमय ही है ना?

इसी को कहते हैं कि ज्ञान ज्ञानमय ही रहकर पर को जान लेता है, पर को जानते समय वह तन्मय (तत् मय) यानि परमय नहीं होता। इसी को नयों की भाषा में प्रस्तुत करना हो तो हम कहते हैं कि ज्ञान निश्चय से स्व को जानता है और व्यवहार से पर को जानता है। इसीतरह केवली भगवान स्व को जानते हैं

कहना निश्चयनय का कथन है, वे पर को जानते हैं कहना व्यवहार नय का कथन है । परंतु केवली भगवान पर को जानते ही नहीं कहना, उसे सर्वथा झूठ मानना यह तो अज्ञान का द्योतक है, नयविवक्षा का उसे कुछ ज्ञान नहीं ऐसा कहना पड़ेगा ।

समयसार परिशिष्ट पर श्री कानजीस्वामी के प्रवचन में उन्होंने इस विषय पर विस्तार से विवेचन किया है । वे कहते हैं-

‘ज्ञान का स्वभाव है ज्ञेयों को जानना । अपने ज्ञान का स्वभाव है कि अपने द्रव्य को जाने तथा परद्रव्य को जाने; अपने क्षेत्र को जाने तथा परक्षेत्र को जाने ; अपने काल को जाने तथा परकाल को जाने; अपने स्वभाव को जाने तथा परभाव को जाने । ‘स्वपरप्रकाशक शक्ति हमारी’ - स्व और पर का प्रकाशक यानि ज्ञान मेरा अपना स्वभाव है । मैं अपने में रहकर अपने से जानता हूँ ऐसा ज्ञानी जानता है परंतु अज्ञानी पर को जानना व्यवहार है यह कथन सुनकर पर को जानने का निषेध करता है, अनेक ज्ञेयों को जानने से अपने को खंडखंडरूप मानता है, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव को जानने का ही निषेध करता है - ऐसा करते हुए अपने ज्ञान का यानि अपने आत्मा का नाश करता है । स्व को जानूँ या पर को जानूँ यह मेरी चीज है । ज्ञान घट को जानता है परंतु उसे घट की अपेक्षा नहीं है । ज्ञान अपना है, घट का नहीं है । उसे अपना कहना निश्चय है, घट का कहना व्यवहार है । परंतु घट को जानता ही नहीं कहना आत्मा का नाश करना है ।’

इसतरह केवलीभगवान स्व को जानते हैं कहना निश्चयनय है, सर्व पर पदार्थों को जानते हैं कहना व्यवहारनय है; परंतु पर को जानते ही नहीं कहना मिथ्यात्व है, अज्ञान है । उसमें मात्र केवली का ही अवर्णवाद नहीं है अपितु अपने स्वभाव का इन्कार करना है - अपने आत्मा का नाश करना है ।

मुझे पता है कि आज का विषय सूक्ष्म है । परंतु मैं क्या करूँ? सूक्ष्म मिथ्यात्व भी तो टालने योग्य है अन्यथा सम्यग्दर्शनरूपी कार्य प्रकट नहीं होगा । जैसे तुम्हें केशभूषा, वेषभूषा के नये नये फॅशनों का पता चलता है और उसके अनुसार तुम भी चलती हो; वैसे कुछ लोग नयी नयी भ्रांतियां खड़ी करते हैं और फैलाते रहते हैं । तुम उनकी चपेट में न आ

जाए इसलिए मैं तुम्हें इन बातों को समझाना चाहती हूँ। उसे अब दुबारा दृष्टांत द्वारा समझते हैं।

जैसे, कार ड्रायव्हर सामने देखकर मोटरकार चलाता है। उसके सामने लगे हुए दर्पण में उसे पीछे से आनेवाली गाडियां और अन्य ट्राफिक दिखायी देता है। वह मुड़कर पीछे नहीं देखता, फिर भी उसे पीछे का दिखायी देता है। जब पीछे बैठा हुआ मालिक उसे कहता है, 'अरे यहाँ अपने को दायी ओर रुकना है, परंतु देखना पीछे से कोई आ तो नहीं रहा?' ड्रायव्हर सामने देखता जाता है और कहता है, 'हाँ साहब! पीछे कोई नहीं है, मैं अब रुक जाता हूँ।'

तुम मुझे बताओ क्या ड्रायव्हर ने पीछे देखा या नहीं देखा? रीना तुम कहोगी, 'हाँ, उसने पीछे का रास्ता देख लिया था इसीलिए तो उसने कहा कि पीछे कोई नहीं है।' परंतु मोना तुम कहोगी, 'माँ, उसने तो गर्दन हिलायी ही नहीं, उसने मुड़कर पीछे देखा ही नहीं। वह तो सामने ही देख रहा था।'

अब बचपन जैसे लड़ना झगड़ना मत। ड्रायव्हर ने पीछे मुड़कर नहीं देखा यह मोना तुम्हारी बात भी सच है और ड्रायव्हर ने पीछे का रास्ता देख लिया था यह रीना तुम्हारी बात भी सच है। असल में तो वह सामनेवाले दर्पण में देख देख कर पीछे के रास्ते संबंधी ज्ञान कर रहा था, निर्णय कर रहा था। इसलिए हम कहेंगे कि उसने सामने दर्पण में देखा निश्चय कथन है, उसने पीछे का ट्राफिक देखा व्यवहार कथन है परंतु यदि तुम मानोगी कि ड्रायव्हर पीछे देखता ही नहीं, पीछे का निर्णय किए बिना ही गाड़ी चला रहा है तो उनके नाश का प्रसंग आये बिना नहीं रहेगा।

उसीतरह ज्ञान पर्याय भी अपने को ही जानती है। वह पर्याय स्व को तथा पर को जानती हुयी प्रकट होती है। ज्ञान अपने में ही रहकर सबको जानता है। उसके लिए ज्ञान को पदार्थ में नहीं जाना पड़ता, पदार्थ में तन्मय नहीं होना पड़ता, पदार्थ की ओर झांकना नहीं पड़ता। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वचतुष्टय में ही रहता है, परचतुष्टय में उसका प्रवेश ही नहीं होता, पर पदार्थ को वह छू भी नहीं सकता। इसलिए ज्ञान भी अन्य पदार्थ को छू नहीं सकता, उसमें प्रवेश नहीं कर सकता, उस पदार्थरूप हो नहीं सकता।

अपने में रहकर स्व को तथा सम्पूर्ण लोकालोक को जानने का सामर्थ्य ज्ञान में है । इसी बात को शास्त्र की भाषा में कहना हो तो हम कहेंगे कि ज्ञान निश्चय से स्व को जानता है और व्यवहार से यानि उपचार से पर को जानता है । परंतु पर को जानता ही नहीं कहेंगे तो ज्ञान के स्वरूप के नाश का प्रसंग आयेगा ।

हम दर्पण में अपना मुख देखते हैं । वास्तव में देखा जाए यानि निश्चय नय से कथन किया जाए तो हम दर्पण की अवस्था को देखते हैं जो अपने मुख समान है, मुख का प्रतिबिंब है । परंतु हम कह देते हैं कि मैंने अपना मुख दर्पण में देखा - यह तो व्यवहार कथन है । हम इसे जानते भी है कि यह कहने की बात है दर्पण में मेरा मुख नहीं है । क्योंकि वहाँ देखकर हम मुख पर लगे दाग का ज्ञान कर सकते हैं परंतु दाग पोंछने के लिए दर्पण साफ नहीं करते, अपना मुख साफ करते हैं । वहाँ भी हमें पता है कि निश्चय मुख तो मेरा है, व्यवहार मुख तो दर्पण में है । अपने मुख को अपना मुख कहना निश्चय कथन है और दर्पण में मुख का प्रतिबिंब है उसे अपना मुख कहना व्यवहार कथन है ।

देखो तो सही, लौकिक में हम कितने होशियार हैं । बोलते कुछ और हैं फिर भी उसका सही अर्थ निकालते हैं, वहाँ कोई बहस नहीं करते । परंतु शास्त्र के वचन सुनकर सही अर्थ निकालने के बजाय हम बहस करने पर उतर आते हैं । शास्त्रज्ञान से अपने ज्ञान का-अपने आत्मा का निर्णय करना था उसे छोड़कर वादविवाद में उलझे रहते हैं, अपने अतिदुर्लभ मनुष्यभव का समय व्यर्थ बरबाद करते हैं और अतिदुर्लभतर सच्चे शास्त्रज्ञान के वचनों को वादविवादों का मुद्दा बनाकर अपने मानकषाय, अभिमान का पोषण करने से उन शास्त्र वचनों को भी बरबाद करते हैं ।

हमारा भी इस चर्चा का एकमात्र प्रयोजन यह है कि हम अपनी मान्यताओं को परखें, अपने में कोई दोष हो तो उसे पहचानकर दूर कर दें । सर्वज्ञ के स्वरूप संबंधी विपरीत मान्यता हो तो तत्त्वज्ञान को पा ही नहीं सकते । छह द्रव्य, सात तत्त्व, कर्म और उनकी नाना अवस्थायें, जीव और कर्म का अनादि का

बंध और उससे होनेवाली जीव की अवस्थायें, संसार के दुःख, उनसे छूटकर मोक्षप्राप्ति का उपाय, मोक्ष की सिद्धि इन सारी बातों को हम सर्वज्ञ की वाणी के आधार से ही जान सकते हैं, बिना सर्वज्ञ के ना जान सकते हैं, ना मान ही सकते हैं ।

सर्वज्ञ भगवान सभी अनंत द्रव्यों को, उनके गुणों को, उनकी सभी पर्यायों को प्रत्यक्ष जानते हैं । सभी द्रव्य अपने तीनों काल की पर्यायों सहित मानो ज्ञायक में खचित किए हुए हैं, निमग्न हुए हैं । आचार्य अमृतचंद्र का 'लघुतत्त्वस्फोट' नामक ग्रंथ है । यह सर्वज्ञ की तथा २४ तीर्थकरों की स्तुतिरूप रचना है जो अप्रतिम है, बेज़ोड है । उसमें वे कहते हैं, 'द्रव्य में तो मात्र वर्तमान पर्याय ही विद्यमान होती है, भूत और भविष्य की पर्यायें तो मात्र योग्यतारूपसे ही होती है । परंतु हे भगवान! आपके ज्ञान में ये तीनों काल की सभी पर्यायें एकसाथ विद्यमान हैं, क्रम से नहीं ।' सर्वज्ञ भगवान अक्रम से सारा जानते हैं फिर भी पर्यायों के निश्चित क्रम को भी उसी समय में जान लेते हैं ।

जब जब हम सर्वज्ञ का स्वरूप देखते हैं तब तब पर्यायों की क्रमबद्धता की बात भी सहज ही सामने आती है, उसकी चर्चा हम करते हैं । सर्वज्ञ की सिद्धि करते समय क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत सिद्ध होता है और क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत समझते समय सर्वज्ञ का स्वरूप अच्छी तरह से ख्याल में आता है ।

क्रमबद्धपर्याय नाम में ही विलक्षण जादू है । उसके बारे में अनेक प्रश्न हमारे मस्तिष्क में खड़े हो जाते हैं और उसका स्वरूप समझने संबंधी तीव्र जिज्ञासा जागृत होती है । हम भी उसके बारे में भविष्य में चर्चा करेंगे । परंतु उसे अच्छी तरह से समझने के लिए जिनागम के कुछ मूलभूत सिद्धांतों का, कारण-कार्य व्यवस्था का ज्ञान आवश्यक है ।

इसलिए आगामी पत्रों द्वारा कारण-कार्य रहस्य समझने के लिए हम चार अभाव, निमित्त, उपादान, निमित्त-नैमित्तिक संबंध, पांच समवाय आदि विषयों पर चर्चा करेंगे ।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

चार अभाव-भाग १

पत्रांक ४

८ अप्रैल २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

सर्वज्ञ के स्वरूप संबंधी चर्चा हम कर आये हैं । अपने सर्वज्ञ स्वभाव का निर्णय करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है । आज से कारण-कार्य रहस्य समझने के लिए कुछ अन्य सिद्धांतों को भी समझेगे ।

एक बार पुणे में फलटण के श्री. सुभाष गांधी और श्रीमती गांधी दोनों की मुलाकात हुयी थी । श्रीमती गांधी कहती थी कि, 'आपके रीना मोना के पत्र हम जरूर पढ़ते हैं । हमने सुशीलमति माताजी से पूछा था कि इन पत्रों में जो तत्त्व की बात लिखी है और जो आपने हमें सिखाया है वह एक ही है । इस बात का हमें आश्चर्य लगता है ।'

बेटियों, जो व्यक्ति जिनागम का यानि शास्त्रों का कथन करता है वह कथन शास्त्र के अनुसार ही होगा, भले वह शास्त्र किसीसे भी पढ़ा हो और कहीं से भी छपाया हो । हां, इतना आवश्यक है कि हमारे मूल ग्रंथों के अनुसार ही वे छपे हो, सिखाये हो । जैसे, तुम्हारे स्कूल में तुमने गणित सीखा था तब पांच अधिक पांच का जोड़ दस ही आया था । कोई मुंबई के स्कूल में पढ़ा हो या पुणे के स्कूल में या किसी छोटे से गांव में पढ़ा हो, सब एक ही बात कहेंगे कि पांच अधिक पांच दस होते हैं ।

वर्धा शहर में भी किसीने यही प्रश्न उठाया था । सन २००० में वहाँ पर्यूषण पर्व के अवसर पर मैंने लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका सिखायी थी । वहाँ का समाज सुशिक्षित है । उन्होंने कहा था, 'बहनजी, आज तक हमने शास्त्ररूपी वृक्ष के फल और फूल ही देखे थे, वे सुहावने भी लगते थे परंतु आप ने तो उस वृक्ष की जड़े हमें दिखायी, इन मजबूत जड़ों को जानकर हमें बहुत आनंद आ गया ।' तभी एक बुजुर्ग व्यक्ति ने सभा में पूछा

था कि, 'बहनजी, किसी विशिष्ट साहित्य के पढ़ने पर पाबंदी क्यों लगायी जाती है ? उसका निषेध क्यों ?' सारी बातें विस्तार से समझाने पर उनका तो समाधान हो गया था ।

आखिर दूसरों के भावों के बारे में हम क्या कर सकते हैं ? कहीं ऐसा तो लिखने में नहीं आता कि श्रावकों को अश्लील साहित्य पढ़ना मना है, टी.व्ही. की विकथायें देखना मना है, अन्य कुदेवादिकों संबंधी टी.व्ही. सिरियल देखना मना है, जिनागम के अलावा अन्य बेकार की बातें और घर गृहस्थी की बातें मंदिर में करना मना है । अब कोई जीव सर्वज्ञ कथित सत्साहित्य का निषेध करके अपना ही नुकसान कर लेता हो, ज्ञानावरणादि कर्मों का तीव्र बंध कर लेता हो, तो दूसरा कोई क्या कर सकता है ? उनके भाव देखकर अपने भाव मत बिगाड़ना ।

इन भावों की तथा इन भावों के फल की चर्चा छोड़कर आज हम अभावों की चर्चा करेंगे । यह विषय 'चार अभाव' नाम से जाना जाता है ।

क्यों ? अभाव की चर्चा कहने पर आश्चर्य क्यों लगता है ? तुम सोचती होगी कि, 'जिनका अभाव ही हैं उनके बारे में कैसे पढ़ेंगे ? उनकी चर्चा कैसे करेंगे ?' देखो बेटी, हमने अभाव है कहकर अभाव की सिद्धि की है, उसकी सत्ता सिद्ध कर दी है । अभाव का अभाव नहीं है अपितु उसका सद्भाव है और आज हम उसी के बारे में समझने जा रहे हैं । किसका किसमें अभाव है यही तो हमें सीखना है ।

'अभाव' का अर्थ है 'नहीं होना' अर्थात् 'नास्ति' । एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में नहीं होना इसी को अभाव कहते हैं । शास्त्रों में चार अभावों की चर्चा की गयी है । उनके नाम निम्नप्रकार हैं ।

- (१) प्रागभाव - प्राक् + अभाव ।
- (२) प्रध्वंसाभाव - प्रध्वंस + अभाव ।
- (३) अन्योन्याभाव - अन्योन्य + अभाव ।
- (४) अत्यन्ताभाव - अत्यन्त + अभाव ।

इन नामों को संधि तोड़कर पढ़ेंगे तो ख्याल में आता है कि ये सारे भावों के नाम नहीं परंतु अभावों के नाम हैं। इन्हें दुबारा पढ़ लो तो याद हो जायेंगे।

‘कारण-कार्य रहस्य में यह अभावों की चर्चा क्यों कर रही हो?’ इसतरह तुम्हें प्रश्न उठना स्वाभाविक है। उसका समाधान तो इन अभावों का स्वरूप जानकर ही होगा। कार्य यानि पर्याय। प्रत्येक द्रव्य में प्रतिसमय पर्याय यानि कार्य हो रहा है। वह कार्य कहाँ हो रहा है? उसकी अस्ति कहाँ है? उस कार्य की नास्ति अर्थात् अभाव कहाँ है? वह कार्य कबसे हो रहा है और कब तक वह एक समय का कार्य चलता रहेगा? क्या एक समय का कार्य अनंतकाल तक रहेगा या बाद में उसकी नास्ति यानि अभाव है इन सारी बातों की चर्चा हम अब ‘चार अभाव’ विषय के द्वारा समझेंगे।

प्रागभाव - प्राक् अर्थात् पूर्व, किसी भी द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उसी द्रव्य की पूर्व पर्याय में अभाव, भूतकालीन पर्याय में अभाव, प्रागभाव कहलाता है। जैसे, आज मंगलवार है तो उसके पूर्व यानि कल सोमवार था। मंगलवार का सोमवार में नहीं होना, सोमवार में उसका अभाव, उसकी नास्ति प्रागभाव है। यह तो स्थूल दृष्टांत है। अन्य उदाहरण भी देखते हैं।

तुम अब यौवनावस्था में हो, बाल्यावस्था तुम्हारी भूतकाल की अवस्था थी। तुम्हारी वर्तमान यौवनावस्था का तुम्हारी ही अपनी बाल्यावस्था में अभाव है, इसे प्रागभाव कहते हैं। जरा फिर से ध्यानपूर्वक सुनो। तुम्हारा बाल्यावस्था में अभाव है ऐसा मैंने नहीं कहा। तुम्हारी यौवनावस्था नाम की वर्तमान पर्याय का तुम्हारी ही बाल्यावस्था नामक पूर्व पर्याय में अभाव है ऐसा मैं बता रही हूँ। तुम्हारा तो बचपन में भी सद्भाव था, अब भी है और भविष्य में भी रहेगा।

यहाँ द्रव्य के अभाव की बात नहीं हो रही परंतु द्रव्य की वर्तमान पर्याय की उसी द्रव्य की भूतकालीन पर्याय में नहीं होने की - अभाव की बात चल रही है।

दही वर्तमान पर्याय है - यह गोरस की वर्तमान पर्याय है, उसकी भूतकालीन पर्याय दूध थी। इसलिए ‘दही’ इस वर्तमान

पर्याय का उसी गोरस के भूतकालीन 'दूध' पर्याय में अभाव प्रागभाव है ।

वर्तमान में कोई जीव सिद्ध दशा में है उसके पूर्व वह संसार दशा में था । किसी एक जीव की सिद्ध दशा का उसी जीव की पूर्व संसार दशा में अभाव प्रागभाव है । कोई जीव वर्तमान में मनुष्यपर्याय में है, इससे पूर्व वह तिर्यचपर्याय में था । उस जीव की मनुष्यपर्याय का उसी जीव की पूर्व तिर्यचपर्याय में अभाव प्रागभाव है ।

यहाँ समझाने के लिए स्थूल पर्यायों की बात की है । तुम तो जानती ही हो कि पर्याय एक समय मात्र रहती है । वर्तमान पर्याय भी एक समय की है, उसका पूर्व पर्याय में अभाव रहता है जो प्रागभाव कहलाता है ।

करणलब्धि के अंत समय तक मिथ्यात्व था और अनंतर समय में सम्यक्त्व की पर्याय प्रकट हुई । इस वर्तमान सम्यक्त्व पर्याय का पूर्व की मिथ्यात्व पर्याय में अभाव प्रागभाव है ।

तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, बारहवें के अंत समय में जीव छद्मस्थ रहता है - अल्पज्ञानी - क्षयोपशमज्ञानी रहता है । वर्तमान केवलज्ञान पर्याय का पूर्व की अल्पज्ञान पर्याय में अभाव प्रागभाव है ।

अब प्रध्वंसाभाव की परिभाषा और स्वरूप देखते हैं ।

प्रध्वंसाभाव - पर्याय एक समय मात्र रहती है - वर्तमान में विद्यमान रहती है । अनंतर समय में वह नहीं रहती इसी को उस पर्याय का व्यय या नाश कहते हैं । उस समय अन्य पर्याय विद्यमान रहती है ।

किसी भी द्रव्य के वर्तमान पर्याय का उसी द्रव्य के भविष्यकालीन पर्याय में अभाव प्रध्वंसाभाव कहलाता है । इसे भी दृष्टांत द्वारा समझेंगे ।

आज मंगलवार है आनेवाला कल बुधवार होगा तब मंगलवार नहीं रहेगा । वर्तमान मंगलवार का भविष्यकालीन बुधवार में अभाव है, इसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं ।

गोरस की वर्तमान पर्याय दही है । उसकी हम छाछ बनायेंगे तब दही नहीं रहेगा । गोरस की वर्तमान दही पर्याय का उसी की भविष्यकालीन छाछ पर्याय में अभाव प्रध्वंसाभाव है ।

वर्तमान में तुम जवान हो, भविष्य में यह यौवनावस्था नहीं रहेगी, वृद्धावस्था प्राप्त होगी । तुम्हारी वर्तमान यौवनावस्था का तुम्हारी ही वृद्धावस्था में अभाव है, इसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं । जरा ध्यान से सुनो, 'अभाव होगा' नहीं कह रही हूँ परंतु 'अभाव है' कह रही हूँ ।

हम अभी संसार अवस्था में हैं, भविष्य में हमारी सिद्ध अवस्था होगी । हमारी वर्तमान संसार अवस्था का भविष्यकालीन सिद्ध अवस्था में अभाव है ।

कोई जीव वर्तमान में मनुष्यपर्याय में है, भविष्य में वह देव पर्याय में जानेवाला है । इस जीव की मनुष्यपर्याय का इसी की भविष्यकालीन देवपर्याय में अभाव है, नास्ति है उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं ।

किसीके वर्तमान में मिथ्यात्व पर्याय है और वह सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला है । उसकी वर्तमान मिथ्यात्व पर्याय का उसीकी भविष्यकालीन सम्यक्त्व पर्याय में अभाव प्रध्वंसाभाव है ।

कोई जीव अभी छद्मस्थ है, अल्पज्ञ है । भविष्य में सर्वज्ञ होनेवाला है । उस जीव की वर्तमान अल्पज्ञ अवस्था का - पर्याय का उसी जीव की भविष्यकालीन सर्वज्ञ अवस्था में अभाव प्रध्वंसाभाव है ।

देखो, प्रागभाव में हमने वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव है बतलाया और प्रध्वंसाभाव में वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय में अभाव है बतलाया । यहाँ पर अभाव था या अभाव होगा नहीं कहा जा रहा है अपितु अभाव है, नास्ति है कहकर अभाव का अस्तित्व बताया जा रहा है ।

इससे एक महत्व की बात का पता चलता है कि वर्तमान पर्याय का सद्भाव यानि अस्ति मात्र वर्तमान समय में ही है, वर्तमान पर्याय में ही है किंतु यह पर्याय छोड़कर भूतकालीन और भविष्यकालीन सभी पर्यायों में इसका अभाव ही है ।

तुम कहोगी कि, 'आपने तो एक समय पूर्व की पर्याय में अभाव वह प्रागभाव और अनंतर समय में अभाव प्रध्वंसाभाव बताया था । अब आप भूतकाल की सभी पर्यायों में तथा भविष्यकालीन सभी पर्यायों में अभाव बता रही हैं । इसे जरा स्पष्ट करना।'

सुनो, जिस वर्तमान पर्याय का पूर्व की एक पर्याय में अभाव है उसका उससे पूर्व की, उससे भी पूर्व की इसतरह पूर्व की सभी पर्यायों में अभाव है । उसीतरह वर्तमान पर्याय का अनंतर समय की पर्याय में भी अभाव है तो उसके पश्चात् की सभी पर्यायों में अभाव ही है । पर्याय एक समय मात्र रहती है । वह अपने रूप से, अपने समय में है यह अस्ति का कथन हुआ और वह अन्य किसी पर्यायरूप से नहीं है, अन्य किसी समय में नहीं है यह उसकी नास्ति हुयी ।

मान लो, किसी द्रव्य की १०१ क्रमांक की वर्तमान पर्याय है । उसका पहले के सभी १०० पर्यायों में अभाव है जिसे प्रागभाव कहते हैं और इस वर्तमान १०१ क्रमांक की पर्याय का १०२ क्रमांक की पर्याय से लेकर भविष्यकालीन सभी पर्यायों में अभाव प्रध्वंसाभाव है । यहाँ तो दृष्टान्त के लिए पहले की सौ पर्यायें लिखी हैं । परंतु तुम तो जानती ही हो कि सभी द्रव्य अनादि से हैं और अनंत काल तक रहेंगे । इसलिए प्रागभाव में पूर्वकालीन अर्थात् अनादि से लेकर एक समय पूर्व तक की सभी पर्यायों में अभाव समझना और प्रध्वंसाभाव में अनंतर समय से लेकर भविष्यकालीन अनंतकाल तक की सभी पर्यायों में अभाव समझना ।

ये दोनों अभाव केवल जीव और पुद्गल द्रव्यों की पर्याय तक ही सीमित नहीं हैं परंतु छहों द्रव्य की पर्यायों में हैं ।

प्रत्येक द्रव्य की वर्तमान समय की पर्याय 'सत्' है, विद्यमान है, उसकी सत्ता है, अस्ति है, सद्भाव है । वर्तमान एक समय छोड़कर अनादि की सभी पर्यायों तथा अनंतकालीन सभी पर्यायों में इसका अभाव है, नास्ति है । इस पर्याय जैसी दूसरी पर्याय हो सकती है, परंतु वही पर्याय नहीं होगी । क्योंकि जो इस

वर्तमान समय में ही उत्पन्न हुई हो उसका भूतकाल में अस्तित्व कैसे होगा ? और जो वर्तमान समय पश्चात् रहेगी ही नहीं, जिसका व्यय होगा वही पर्याय भविष्य में कैसे रहेगी ?

यहाँ अस्ति और नास्ति, सद्भाव और अभाव एक वर्तमान पर्याय पर ही घटित कर रहे हैं। वर्तमान पर्याय का वर्तमान पर्याय में सद्भाव है, अस्ति है और इसका भूत तथा भविष्य कालीन सभी पर्यायों में अभाव है, नास्ति है। ध्यान देना, वर्तमान पर्याय इस वर्तमान समय में है, उसकी अस्ति है और इसी समय उसकी भूत तथा भविष्य की पर्याय में नास्ति है। यहाँ अस्ति और नास्ति एक ही पर्याय पर, एक ही समय में घटित कर रहे हैं। वर्तमान पर्याय में अस्ति और नास्ति धर्म एकसाथ हैं, युगपत् हैं।

इसलिए प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव की परिभाषायें दुबारा देख लीजिए। यहाँ 'का' प्रत्यय वर्तमान पर्याय के साथ है और 'में' प्रत्यय भूत तथा भविष्य की पर्याय के साथ लगाया है। वर्तमान पर्याय का भूत में और भविष्य में अभाव बताया जा रहा है। इसलिए परिभाषायें इसी तरह याद करना।

तुम कहोगी, 'भूतकालीन पर्यायों का भी वर्तमान पर्याय में अभाव है और भविष्यकालीन पर्यायों का भी वर्तमान पर्याय में अभाव है तो हम 'का' और 'में' प्रत्यय कहीं भी जोड़े, क्या फर्क पड़नेवाला है ?'

देखो, वर्तमान पर्याय में उनका अभाव है इसकी कौन ना कह रहा है ? परंतु हमारा प्रयोजन तो वर्तमान पर्याय की अस्ति नास्ति, उसका सद्भाव-अभाव सिद्ध करना है।

कार्य वर्तमान समय में होता है इसलिए हमें तो वर्तमान की तरफ देखना होगा। हम सदाकाल मन में कुछ ना कुछ सोचते रहते हैं, हम या तो भूतकाल संबंधी या भविष्यकाल संबंधी संकल्प विकल्प करते रहते हैं। भूतकाल के सुखद प्रसंगों का स्मरण करके हर्ष मानते हैं, या दुःखद प्रसंगों का स्मरण करके दुःखित होते हैं, या भविष्य संबंधी कल्पनाओं में - 'शेखचिल्ली' में दंग रह जाते हैं। इसतरह वर्तमान पर्याय इसी में बरबाद हो जाती है।

भूतकाल में जो बातें बन चुकी उसमें तो हम कुछ बदलाव ला नहीं सकते, भविष्य अभी आया नहीं तो उसमें हमें क्या करना है ? इसलिए भूतकाल और भविष्यकाल की पर्यायों पर से दृष्टि हटाकर इस वर्तमान पर्याय का लक्ष त्रिकाल एकरूप रहनेवाले अपने ध्रुव स्वभाव पर एकाग्र करने से, उसी को जानते रहने से, उसमें अभेद एकाकार हो जाने से आत्मानुभूति प्रकट होगी, अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होगी ।

अभी तो हमने दो ही अभावों की चर्चा की है । इनको जानने से पर्यायों की स्वतंत्रता ख्याल में आती है । प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र है । एक ही द्रव्य की प्रत्येक पर्याय का उसी द्रव्य की अन्य सभी पर्यायों में अभाव है । यह बात ख्याल में आने पर वस्तुस्वातंत्र्य - वस्तु की स्वतंत्रता सिद्ध होती है । वर्तमान पर्याय का अन्य पर्यायों में अभाव है तो वह उसमें हेरफेर करे, उसे मिटा दे या जल्द ला दे कैसे संभव है ? भूत और भविष्य की चिंता छोड़कर हम वर्तमान में अपना कार्य करेंगे तो आकुलता कम होगी ही ।

किसी व्यक्ति ने भूतकाल में बहुत पाप किए हो और अब वह धर्म प्राप्त करना चाहता है, तो वह यदि अपने को हीन दीन पापी समझता रहेगा, पश्चात्ताप करके आंसू बहाता रहेगा तो उसका धर्म प्राप्त करनेरूप कार्य कब होगा ? उस व्यक्ति को घबराने की कोई जरूरत नहीं । अभावों का स्वरूप जानकर, प्रागभाव का स्वरूप समझकर वर्तमान पर्याय में धर्म प्राप्त कर सकता है - सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर सकता है ।

वर्तमान में मिथ्यात्व है इसलिए भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि इस वर्तमान मिथ्यात्व पर्याय का भविष्य की पर्याय में अभाव है - प्रध्वंसाभाव है । यह मिथ्यात्व भी एक समय का है, एक एक समय करके अनादि से चला आ रहा है इसलिए जरूरी नहीं कि अनंत काल तक रहेगा ।

कारण - कार्य व्यवस्था में कार्य कब होगा इस बात का इससे पता चलता है । अभी इसी समय कार्य करना है । भविष्य के वादे मत करना । जो जीव भविष्य में कार्य करूंगा कहता है उसका भविष्य हमेशा भविष्य में ही रहता है, कभी वर्तमान में

नहीं आता । यह कार्य मैं आज नहीं, कल करूंगा कहनेवाले का कल कभी ऊगता ही नहीं ।

अभी तो मुझे बच्चों को बड़ा करना है, अभी तो व्यापार धंदा करना है, अभी तो संसार के मजे लूट लूँ - बुढ़ापे में यह करना ही है, अभी तो समाज का कार्य कर लूँ, अभी मैं अन्य लोगों को जिनवाणी पढ़ा लूँ । इसतरह अन्य अन्य कार्य करना चाहता है । मैं अभी इसी समय निराकुल सुख प्राप्त करूंगा, धर्म यानि मोक्षमार्ग, सम्यग्दर्शन प्रकट करूंगा ऐसा कोई नहीं कहता ।

कुछ लोग कहते हैं, 'अभी तो हम जिनागम का अभ्यास कर रहे हैं, अभी सम्यग्दर्शन नहीं होगा तो भी ये संस्कार तो आगे रहेंगे ना ? ये संस्कार तो काम आयेगे ना ?' अरे भाई ! संस्कार में ही क्यों संतुष्ट होते हो ? कार्य अर्थात् धर्म प्रकट करने की ज़िद क्यों नहीं रखते हो ? प्रध्वंसाभाव तो भविष्यकालीन पर्याय में अभाव बताता है । वर्तमान पर्याय न रहे परंतु संस्कार रहे यह कैसी विचित्रता ? भविष्य में मुझे मोक्षपर्याय प्रकट करनी है, करनी है करके पर्याय का लक्ष करने से भी कार्य प्रकट नहीं होगा । अभी मैं मोक्ष की इच्छा तो कर लूँ, फिर भविष्य में मोक्ष प्रकट करूंगा, अभी सम्यग्दर्शन की इच्छा तो कर लूँ, फिर भविष्य में सम्यग्दर्शन प्रकट होगा यह मान्यता गलत है ।

वर्तमान में तो इच्छारूपी चारित्र गुण की विभाव पर्याय करना चाहता है, करता है और उसके कारण भविष्य में स्वभावरूप शुद्ध पर्याय प्रकट होगी मानता है ।

बातें तो हम सम्यग्दर्शन की और मोक्ष की करते हैं परंतु वर्तमान में कार्य क्या कर रहे हैं इसकी ओर कोई देखता ही नहीं । शुभाशुभ भावरूप कार्य करके शुद्धभाव रूप कार्य चाहते हैं । पर्याय में से तो पर्याय आती नहीं है । पर्याय विशेष है वह सामान्य में से आती है । सामान्य और विशेष का अविनाभाव है । विशेष बदलते रहते हैं और सामान्य सदाकाल एकसा रहता है । सामान्य तो त्रिकाल, एकरूप, अभेद, नित्य द्रव्यस्वभाव है जो शुद्ध है । पर्याय जब इस द्रव्यस्वभाव का लक्ष करती है, उसीमें अपनत्व करती है, उसीमें अभेद एकाकार अनुभव करती है तब उसरूप शुद्ध हो जाती है, पर्याय में अनंत गुणों का वेदन

अर्थात् अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होती है । स्वभावपर्याय प्रकट होती है । हम इस कार्य के कारणों की चर्चा तो विस्तार से देखनेवाले ही हैं । अभी तो हमारा 'चार अभाव' का विषय चल रहा है ।

तुम पूछोगी कि 'यदि हम प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव को नहीं मानेंगे तो क्या बिगाड़ होगा ? कौनसा दोष आएगा ?'

१. प्रागभाव नहीं मानेंगे तो कार्य अनादि का ठहरेगा । हमने देखा ही था कि पर्याय यानि कार्य प्रत्येक समय में नया नया उत्पन्न होता है और पूर्व पर्याय का व्यय हो जाता है । इस समय का कार्य भूतकाल में नहीं है । वर्तमान पर्याय का भूतकाल की पर्याय में अभाव है । यदि इस अभाव को हम नहीं मानेंगे और वर्तमान पर्याय का उसके पहलेवाली एक पर्याय में भी सद्भाव मानेंगे तो उसके पहलेवाली पर्याय में भी सद्भाव मानना पड़ेगा । फिर उससे भी पीछे की पर्याय में.....ऐसे होते होते अनादिकाल पहलेवाली पर्याय में भी सद्भाव मानना पड़ेगा और कार्य अनादि का ठहरेगा यह दोष आएगा ।

फिर से ध्यान देना, यहाँ कार्य को - पर्याय को क्षणिक यानि एक समय का कह रहे हैं, द्रव्य को नहीं । द्रव्य को ही क्षणिक मानोगी तो सर्वथा क्षणिकवाद की मिथ्या मान्यता हो जाएगी ।

२. यदि प्रध्वंसाभाव को नहीं मानेंगे तो कार्य अनंतकाल रहने का प्रसंग उपस्थित होगा । वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय में अभाव नहीं मानेंगे तो यह पर्याय आगामी काल में भी चलती रहेगी अर्थात् वर्तमान का ही कार्य अनंतकाल तक चलता रहेगा ।

कोई रोगी हो तो उसकी रोगी अवस्था भविष्य में भी बनी रहेगी । जो मिथ्यात्वी है उसकी मिथ्यात्व की पर्याय भविष्य में बनी रहेगी । जो दुःखी है वह दुःखी ही रहेगा । बच्चे कभी बड़े नहीं होंगे, बूढ़े कभी मरेंगे नहीं, गरीब सदा गरीब ही रहेगा, धनवान नहीं बनेगा ।

धन की बात आयी तो प्रध्वंसाभाव सच लगने लगा, है ना? क्योंकि गरीब हो या धनवान, सभी लोग और ज्यादा धन कमाना चाहते हैं ।

तुम पूछोगी, 'फिर इतना सारा पढ़ने से क्या फायदा ? यदि यह ज्ञान की पर्याय भविष्य में नहीं रहेगी, इस ज्ञान का भी लोप हो जाएगा तो हम पढ़ेंगे ही नहीं ।'

वा खूब ! प्रध्वंसाभाव का यही सूत्र अन्य अब जगह क्यों नहीं लगाती ? केवल शास्त्रज्ञान पर ही क्यों लगाती हो ?

पर्यायों की क्षणिकता का सच्चा भान हो गया हो, तो वर्तमान पर्याय को त्रिकाली ध्रुव अपने सामान्य पर न्योछावर कर दो, यह पर्याय मिटेगी तब आगामी पर्याय वर्तमानरूप हो जाएगी उसको भी इस कार्य में जुटा दो । देखो, फिर अपूर्व अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होगी ।

तुम पूछोगी, 'हमने आज तक जो जो पढ़ा वह सारा मुझे आज भी याद है । भूतकालीन पर्याय न रही परंतु ज्ञान तो रह गया ना ?'

देखो, प्रति समय की ज्ञान की पर्याय उतना जाननेरूप कार्य नया नया कर रही है । सर्वज्ञ के भी प्रति समय नया नया केवलज्ञान उत्पन्न होता रहता है, पहले जाना हुआ याद आया, ऐसा नहीं है । केवलज्ञान भी प्रत्येक समय का व्यय होकर नया केवलज्ञान उत्पन्न होता है । परंतु वह कभी अल्पज्ञानरूप नहीं होता, अनंतकाल तक वैसा का वैसा होता रहता है इसलिए उसको ध्रुव भी कहेंगे, सिद्धदशा को भी ध्रुव कहेंगे । जहाँ जो अपेक्षा है उसे समझना होगा ।

आचार्यों को जीवों की अपार करुणा है । जो जीव भयभीत हो जाते हैं, उनसे कहते हैं कि डरो मत । अब तू सारा जान ले, तो ये संस्कार भविष्य में भी बने रहेंगे । जो जीव संस्कार की बातें सुनकर उतने मात्र में ही संतुष्ट हो जाता है उसे कहते हैं कि तेरे मिथ्यात्व के संस्कार भी अनादि के हैं । तुझे वे संस्कार मिटाने के लिए और सम्यग्दर्शनरूपी कार्य करने के लिए अपूर्व पुरुषार्थ करना होगा ।

चार अभावों में से प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव की चर्चा हम कर चुके । अब अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव की चर्चा हम आगामी पत्र द्वारा करेंगे ।

जय जिनेन्द्र

तुम्हारी माँ

चार अभाव-भाग २

पत्रांक ५

२० अप्रैल २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

बेटियों, तुमने कहा है, 'बचपन का अभाव होने से हमें दुःख होता है, माँ और पिताजी आप दोनों का यहाँ ससुराल में अभाव होने से आँखों में आंसू आते हैं।' तुमने पूछा भी है कि, 'क्या हम दोनों का अभाव आप दोनों को खटकता नहीं है? हमारे बिना आप को घर सूना सूना नहीं लगता?'

इन लौकिक बातों के अभाव का विचार करने पर राग का ही पोषण होता है, आकुलता और दुःख ही उत्पन्न होता है। इसके विपरीत, शास्त्र के अनुसार इन चार अभावों का यथार्थ ज्ञान होने पर वीतरागता का पोषण होता है, आकुलता समाप्त होती है, निराकुलता की प्राप्ति होती है, शांति और समाधान प्राप्त होता है। जैन सिद्धांतों की तो यही विशेषता है कि उन सिद्धांतों का ज्ञान होने से आत्मसन्मुखता तो होती ही है, साथ साथ अपने लौकिक जीवन में भी संतोष, समाधान और शांति बढ़ती जाती है।

लौकिक जीवन में तो हमें अभाव खटकते ही रहते हैं, अशांति उत्पन्न करते रहते हैं। पैसों का अभाव, पदवी का अभाव, मान सम्मान का अभाव, रूप सौंदर्य का अभाव, निरोगता का अभाव, अपत्य प्राप्ति का अभाव, पत्नी का अभाव, पति का अभाव, नोकरों का अभाव, नोकरी धंदे का अभाव, घर-बंगले का अभाव, गाड़ी का अभाव....न जाने और कितने सारे अभाव। उन्हीं पर हमारा लक्ष बारबार जाता है और हम संतोष, समाधान खो बैठते हैं।

ये सारे तो पर हैं, संयोग हैं। आज तक इन संयोगों को ही हमने अपना ऐश्वर्य माना था। परद्रव्य का क्षणभंगुर संयोग हमारा ऐश्वर्य नहीं हो सकता। प्रत्येक द्रव्य अपने अनंत गुणों के ऐश्वर्य से युक्त है और यह ऐश्वर्य अनादिअनंत कायम रहता

है। बाह्य संयोग मिले तो भी क्या होगा? हमारा तो इन सभी परद्रव्यों में अभाव ही है और इन परद्रव्यों का हमारे में अभाव है तो इनके कारण हम महान कैसे कहला सकते हैं? इन सब का आपस में कौनसा अभाव है इसकी ही आज चर्चा करेंगे।

अन्योन्याभाव - एक पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय का अन्य पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय में अभाव अन्योन्याभाव है। अन्योन्याभाव अर्थात् एकदूसरे में अभाव। यहाँ भी वर्तमान पर्यायों की बात चल रही है परंतु मात्र पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्यायों की ही बात है, अन्य किसी द्रव्य की बात नहीं है।

कारण-कार्य व्यवस्था की चर्चा में हम देखते हैं कि कार्य यानि पर्याय तो द्रव्य की अवस्था है। यह पर्याय अपने से है यह अस्ति हुयी और वही पर्याय परपर्यायरूप से नहीं है यह उसी पर्याय की नास्ति हुयी। प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव में प्रत्येक द्रव्य की वर्तमान पर्याय का भूत और भविष्य की पर्यायों में अभाव यानि नास्ति की चर्चा तो हमने की थी।

अब यहाँ दो पुद्गल द्रव्यों की वर्तमान पर्यायों का जो आपस में एकदूसरे में अभाव है उस अन्योन्याभाव की बात हो रही है। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय का कर्ता है। द्रव्य कर्ता है और पर्याय कार्य या कर्म है। कर्ता कर्म संबंध द्रव्य का अपनी पर्याय के साथ होता है। द्रव्य भी अपने स्वचतुष्टय में रहता है तो उसकी पर्याय भी उसी द्रव्य में उसी और उतने ही क्षेत्र में एक समय मात्र के लिए होती है। प्रत्येक पर्याय की अपने में अस्ति है और परपर्याय में नास्ति है, अभाव है।

छह द्रव्यों में जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल तो अरूपी द्रव्य हैं, पुद्गल द्रव्य ही एकमात्र रूपी द्रव्य है जो इंद्रियों द्वारा जाना जा सकता है। परंतु इंद्रियां भी परमाणु को जान नहीं सकती, अनंत परमाणुओं के बंध से होनेवाले स्कंधों को जानती हैं। स्कंधों को भी हम पुद्गल ही कह देते हैं। वास्तव में स्कंध तो पुद्गल द्रव्य की पर्याय है जिसे समानजातीय द्रव्यपर्याय कहते हैं।

ये स्कंध बनते बिगडते रहते हैं, वे अपनी स्वयं की योग्यता से बनते बिगडते हैं, उनमें से प्रत्येक परमाणु की पर्याय स्वयं

अपने से होती है फिर भी कारण-कार्य व्यवस्था से अनभिज्ञ जीवों, निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं जाननेवाले जीवों को ऐसा प्रतीत होता है कि एक पुद्गल स्कंध के कारण अर्थात् पुद्गल की पर्याय के कारण दूसरे पुद्गल की पर्याय हो रही है या होती है। शास्त्र में भी निमित्त का ज्ञान कराने के लिए, निमित्त-नैमित्तिक संबंध बतानेवाले अनेक कथन आते हैं। जैसे, नामकर्म के कारण शरीर की रचना होती है, साता-असाता वेदनीय कर्म के कारण सुख-दुःख रूप संयोग प्राप्त होते हैं आदि।

इन वचनों का हमें सही अर्थ ज्ञात हो इसलिए अभी हम अन्योन्याभाव की चर्चा करेंगे और भविष्य में निमित्त क्या है, निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्या और कैसे होता है आदि विषयों पर विस्तार से विवेचन करेंगे।

अन्योन्याभाव से हमें पता चलता है कि एक स्कंध का दूसरे स्कंध में अभाव है क्योंकि स्कंध तो पुद्गल की पर्याय है। इसके उदाहरण देखते हैं।

हाथ एक पुद्गल स्कंध है, पैर दूसरा पुद्गल स्कंध है, स्याही और ही स्कंध है और कागज़ तो उससे भी भिन्न अन्य पुद्गल स्कंध है। इन सारे ही स्कंधों का परस्पर में अन्योन्याभाव है, उनकी एकदूसरे में नास्ति है, अपने अपने में अस्ति है। जिनकी जहाँ उपस्थिति ही नहीं है वहाँ का कार्य वे कैसे कर सकते हैं ?

शास्त्र में तो वर्णन आता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श भी नहीं करता। चलते समय पैर जमीन को छूते तक नहीं सुनकर तुम कहोगी, 'माँ क्या तुम हमें मूर्ख समझती हो ? तुम कुछ भी कहोगी परंतु हम बिना वजह तो मानेंगे नहीं।' बेटियों, हम यहाँ लौकिक भाषा नहीं बोल रहे, आगम की और अध्यात्म की बातें कर रहे हैं। हमने बहुत बार देखा था कि प्रत्येक द्रव्य का अपना अपना स्वचतुष्टय होता है - अपना स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव होता है। कोई भी द्रव्य अपना स्वचतुष्टय छोड़कर परचतुष्टय में यानि परद्रव्य के उसके अपने चतुष्टय में प्रवेश नहीं कर सकता। इसी को शास्त्र की भाषा में कहते हैं कि द्रव्य एक दूसरे को स्पर्श तक नहीं करते।

हम देखते हैं कि दीवार के आधार से छत है, जमीन के आधार से मेज है, मेज के आधार से कागज रखे हैं, अड़नी के आधार से रोटी बेली जा रही है। परंतु आचार्य इस बात का इन्कार करते हैं। वे कहते हैं ये तो सारे स्कंध हैं, पुद्गल की पर्यायें हैं इनका एकदूसरे में अभाव है।

रोटी बनी यह कार्य उसमें अपने में हो रहा है तब नीचे की अड़नी स्थिर रहनेरूप कार्य अपने में कर रही है, बेलन का आगे पीछे चलनेरूप कार्य बेलन में हो रहा है, हाथों की विवक्षित क्रिया हाथों में हो रही है। इन सब कार्यों का यानि पुद्गल की वर्तमान पर्यायों का एकदूसरे में अभाव है, अन्योन्याभाव है।

हमें भासित होता है कि हम जीभ, होंठ, स्वरयंत्र आदि का हालडोल करके आवाज निकालते हैं, सुरीला गाना गाते हैं। परंतु तुम ही विचार करो, शरीर आहारवर्गणा है और शब्द भाषावर्गणा है दोनों का एकदूसरे में अन्योन्याभाव है तो एक के कारण दूसरा कार्य होना कैसे संभव है? वे भी एकदूसरे में अभावरूप हैं, एक दूसरे का कार्य नहीं करते और हम जीव द्रव्य उनका कार्य कर दे यह बात तीन काल में नहीं हो सकती।

हमें लगता है दवाईयां खाने से रोग ठीक हो गया। रोग तो शरीर की अवस्था है, शरीर एक पुद्गल स्कंध है और दवाईयां अन्य पुद्गल स्कंध। उनका परस्पर में अन्योन्याभाव है। दवाईयों से एक बात याद आ गयी। पुणे में हम दोनों ने आठ बार शिबिर लगाये थे, तुम्हें पता ही है। वहाँ के छोटे छोटे बच्चे भी तत्त्वज्ञान सीख गए हैं, तत्त्वज्ञान की भाषा में बोलते हैं, रोज की जिदगी में भी तत्त्वज्ञान की दृष्टि से विचार करते हैं। शुरू शुरू में बहुत सी माताओं ने शिकायत की थी कि 'हमारे बच्चे (पीयूष शहा, आशित दोशी आदि) दवाईयां खाने से इन्कार करते हैं, निमित्त से कुछ नहीं होता कहते हैं, मेहमानों को भी सिखाते रहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। आपने तत्त्वज्ञान पढ़ाकर तो हमारे लिए नयी परेशानियां खड़ी कर दी हैं। अब आप ही इसे सुलझाइए।'

उस वक्त बच्चों को यथायोग्य समझाया था चूँकि माताओं को समझाना भी उतना ही जरूरी था। तुम दोनों अब दो दो

बच्चों की माता बन चुकी हो, तुम ही कहो तुम्हारे बच्चे जब चलना सीख रहे थे तब बार बार गिरते भी थे और दुबारा चलने की कोशिश भी जारी रखते थे । क्या तुमने कभी उन्हें चलने से रोका था? नहीं ना! क्योंकि तुम जानती हो कि कोशिश करनेवाला थोड़े ही दिनों में चलना सीख जाएगा । उसीतरह तत्त्वज्ञान का अभ्यास करनेवालों की शुरु में कुछ उलझन, कुछ घोटाला होता है इसलिए उन्हें तत्त्वज्ञान से वंचित रखना उचित नहीं है ।

पुद्गल द्रव्य की पर्यायों में अन्योन्याभाव होने पर भी उनमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है । जब जब कोई भी कार्य होता है तब तब निमित्त की उपस्थिति भी होती ही है परंतु निमित्त कार्य में कुछ करता नहीं है । निमित्त का निषेध नहीं करना, निमित्त से कार्य होता है इस मान्यता का निषेध करना है । कार्य में उचित निमित्त होते हैं, उन्हें स्वीकार ही नहीं करेंगे तो ज्ञान झूठा हो जाएगा और निमित्त से कार्य होता है मानेंगे तो श्रद्धा खोटी होगी । इस विषय पर चर्चा तो बाद में करूंगी ।

जब शास्त्र में पढ़ते हैं कि पुण्यकर्म के फल में संपत्ति, अच्छे संयोग आदि प्राप्त होते हैं तब शास्त्र के अनुसार यह भी जानना जरूरी है कि यह निमित्त का कथन है । पुण्यकर्म कार्माण वर्गणा है और बाह्य संयोग आहारवर्गणा है, दोनों में अन्योन्याभाव है ।

हमने तो यहाँ स्थूल स्कंधों के दृष्टान्त देखे हैं । वास्तव में तो एक ही स्कंध के प्रत्येक पुद्गल परमाणु की पर्याय का अन्य पुद्गल परमाणु की पर्याय में अन्योन्याभाव है । परमाणुओं के बंध की बात हमने बहुत पहले देखी थी । पुद्गल के स्पर्श गुण की पर्यायों में से रुक्ष और स्निग्ध गुण के कारण यानि उनके अंशों के कारण बंध होता है । रुक्ष परमाणु का दो गुण अधिक रुक्ष परमाणु के साथ या दो गुण अधिक स्निग्ध परमाणु के साथ बंध होता है । उसीतरह स्निग्ध का दो गुण अधिक स्निग्ध या रुक्ष के साथ बंध होता है । बंध होने पर कम रुक्षता या स्निग्धता वाले परमाणु अधिक रुक्षता या स्निग्धता वाले परमाणु के समान रुक्षता या स्निग्धता धारण करते हैं ।

यहाँ कोई कह सकता है, देखो अधिक रुक्षतावाले के साथ बंधने से कम रुक्ष या स्निग्ध परमाणु भी अधिक रुक्षतावाले बन गए। परंतु अन्योन्याभाव का स्वरूप समझने पर ख्याल में आता है कि प्रत्येक परमाणु की पर्याय की अन्य सर्व परमाणुओं की पर्यायों में नास्ति है, तो उनके कारण इसके स्पर्श गुण में रुक्षता या स्निग्धता बढ़ गई यह बात हो नहीं सकती।

अत्यन्ताभाव - एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में त्रिकाल अभाव है इसे अत्यन्ताभाव कहते हैं। यह अभाव छहों द्रव्यों के बारे में पाया जाता है।

प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, प्रत्येक द्रव्य अपने स्वचतुष्टय में है, प्रत्येक द्रव्य की अपने में अस्ति है, सत्ता है परंतु प्रत्येक द्रव्य की अन्य सभी द्रव्यों में नास्ति है, अभाव है।

अब यहाँ बात पर्यायों की नहीं अपितु द्रव्यों की हो रही है। एक जीव द्रव्य का अन्य जीव द्रव्य में तथा अन्य पांचों द्रव्यों में अभाव है - अत्यन्ताभाव है। एक पुद्गल परमाणु का अन्य पुद्गल परमाणुओं में तथा अन्य पांचों द्रव्यों में अभाव है। एक काल द्रव्य का अन्य काल द्रव्यों में तथा अन्य पांचों द्रव्यों में अभाव है। धर्म द्रव्य का अन्य पांचों द्रव्यों में, अधर्म द्रव्य का अन्य पांचों द्रव्यों में और आकाश द्रव्य का अन्य पांचों द्रव्यों में अभाव है।

तुम कहोगी, 'अन्य सभी पांचों द्रव्य तो आकाश द्रव्य में रहते हैं, आकाश द्रव्य उन्हें अवगाहन देता है, तो भी उनमें अभाव है ? आकाश द्रव्य तो सर्वत्र है ?'

हाँ, यही तो बता रही हूँ। दो या अधिक द्रव्य एक ही क्षेत्र में रहते हैं, इसे एकक्षेत्रावगाह संबंध कहते हैं। ऐसा होने पर भी प्रत्येक का अपना स्वचतुष्टय भिन्न भिन्न ही रहता है, प्रत्येक का अपना अस्तित्व भिन्न ही रहता है। कांच में से प्रकाश आरपार जाता है, तो भी कांच का अस्तित्व भिन्न है और प्रकाश का अस्तित्व भिन्न है। पानी में कपड़ा भिगोया तो भी पानी का अस्तित्व भिन्न है और कपड़े का अस्तित्व भिन्न है।

आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी है । उसके अनंतवें भाग में - लोकाकाश में अन्य पांच द्रव्य रहते हैं फिर भी आकाश द्रव्य का उन अन्य द्रव्यों में अत्यन्ताभाव है । एकक्षेत्रावगाह रूप रहनेवाले छहों द्रव्यों का आपस में अत्यन्ताभाव है ।

प्रत्येक द्रव्य का अन्य सभी द्रव्यों में अभाव ही है तो कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्य में कुछ हेरफेर, मदद, असर, सहाय या उसका कार्य कैसे कर सकता है ?

हम देखते हैं किसी व्यक्ति पर खून करने के आरोप में मुकदमा चल रहा हो और वह यदि साबित करे कि जब खून हुआ तब वह वहाँ हाजिर ही नहीं था, उस समय वह अन्य शहर में किसी मीटिंग में व्यस्त था और उसके अनेक गवाह भी प्रस्तुत करेगा तो खून के जुर्म में उसे सजा नहीं हो सकती । क्योंकि उसका वहाँ अभाव ही था ।

उसीप्रकार एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अत्यन्ताभाव होने से वह किसी अन्य द्रव्य का कार्य करे, उसकी पर्याय करे यह बात तीन काल में कभी नहीं हो सकती ।

हम कार्य तो कुछ ना कुछ करना चाहते हैं । सच कहूँ तो अनादि से हम पर का कार्य करने की बुद्धि - पर की कर्तृत्वबुद्धि करते आये हैं । पर का कार्य तो एक समय भी कोई कर नहीं सकता परंतु यह जीव मिथ्यात्व के कारण ऐसा ही मानता आया है । प्रत्येक द्रव्य का प्रत्येक समय का कार्य उसमें अपने में अपने से होता है, परंतु अज्ञानी मानता है कि मैं ही इन कार्यों को करनेवाला हूँ ।

चार अभावों का स्वरूप अब तुम्हारे ख्याल में आया ही होगा । उसी को दोहराते हैं । अत्यन्ताभाव छहों द्रव्यों का आपस में पाया जाता है । प्रत्येक द्रव्य का अन्य द्रव्यों में अभाव बतानेवाला है ।

प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव छहों द्रव्यों की वर्तमान पर्यायों का उन्हीं की भूत और भविष्य पर्यायों में अभाव बताता है ।

अन्योन्याभाव मात्र पुद्गल द्रव्यों की वर्तमान पर्यायों का एक दूसरे में अभाव बताता है ।

तो मुझे बताओ कि चारों अभाव किस द्रव्य पर घटित होंगे? सोच में क्यों पड़ गयी? पुद्गल द्रव्य में ही चारों अभाव लगते हैं।

अब इन चार अभावों को नहीं मानने से कौनसा दोष आयेगा, देखते हैं।

(१) प्रागभाव नहीं मानने से कार्य अनादि का ठहरेगा।

(२) प्रध्वंसाभाव नहीं मानने से कार्य के अनंत काल तक चलते रहने का प्रसंग आयेगा।

(३) अन्योन्याभाव नहीं मानेंगे तो एक पुद्गल की पर्याय यानि कार्य का अस्तित्व अन्य पुद्गल की पर्याय में पाया जाने से सारी वस्तुव्यवस्था बिगड़ जाएगी।

(४) अत्यन्ताभाव नहीं मानेंगे तो प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता - भिन्नता नहीं रहेगी। दो या अधिक द्रव्य एकरूप होते होते, छह द्रव्यों का भिन्न अस्तित्व ही समाप्त होगा - विश्व के नाश का प्रसंग आएगा।

तुम कहोगी, 'इन अभावों को नहीं मानने से क्या हानि होगी, क्या नुकसान होगा यह बात तो आपने बतायी। परंतु इन्हें जानने से, मानने से कुछ फायदा भी तो है या नहीं?'

इन अभावों को जानने से धर्म संबंधी क्या लाभ होता है उसे हम देखते हैं। क्योंकि हमारा प्रयोजन तो धर्म प्रकट करना है, सम्यक्त्व अर्थात् वीतरागता प्रकट करनी है, मोक्षमार्ग का आरंभ करना है।

(१) प्रागभाव समझने से यह बात ख्याल में आती है कि जीव अनादिकाल से अज्ञान, मिथ्यात्व, रागद्वेष हर समय नया नया करता आया है, उसने धर्म (वीतरागता) कभी किया नहीं था। फिर भी वर्तमान पर्याय में नया पुरुषार्थ करके धर्म प्रकट कर सकता है क्योंकि उसके वर्तमान पर्याय का उसके पूर्व पर्याय में अभाव है।

(२) प्रध्वंसाभाव समझने से यह बात ख्याल में आती है कि वर्तमान पर्याय में धर्म किया नहीं या हुआ नहीं तो भी जीव भविष्य की पर्याय में अधर्म दशा के व्ययपूर्वक नये पुरुषार्थ से

धर्म प्रकट कर सकता है । क्योंकि उसकी वर्तमान पर्याय का उसकी भविष्य की पर्याय में अभाव है ।

(३) अन्योन्याभाव समझने से यह बात ख्याल में आती है कि एक पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय दूसरे पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय में असर, मदद, प्रभाव, सहाय, प्रेरणा, हेरफेर आदि कुछ भी नहीं कर सकती । जो सजातीय द्रव्य की पर्याय में कुछ नहीं कर सकती वह पुद्गल की पर्याय जीव में कुछ कर दे, जीव को सुखी दुःखी बनाये यह बात कैसे संभव है ?

(४) अत्यन्ताभाव - यह अभाव समझने से विश्व व्यवस्था का ज्ञान होता है । विश्व के अनंत द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य अपने से अस्तिरूप है और पर से नास्तिरूप है । प्रत्येक द्रव्य की स्वयं में ही सत्ता है और वह सत्ता परिपूर्ण भी है । उसके कार्य के लिए, पर्याय के लिए उसे अन्य द्रव्य की मदद, असर, प्रेरणा, सहाय की जरूरत नहीं पड़ती ।

शास्त्र में जो अन्य द्रव्य का करने कराने का कथन आता है वह निमित्त का कथन है । अत्यन्ताभाव का स्वरूप ख्याल में आने पर अपनी दृष्टि परपदार्थों से हटकर अपने त्रिकाली द्रव्य पर आ जाती है और पर्याय में धर्म अर्थात् वीतरागता का प्रारंभ होता है, सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है ।

इसतरह चार अभावों का स्वरूप विस्तार से जानने पर अब तुमने कितना ग्रहण किया है जानने के लिए मैं कुछ प्रश्न और उसके उत्तर प्रस्तुत करने जा रही हूँ । उसे ऐसे ही मत पढ़ लेना । प्रत्येक प्रश्न पढ़कर पहले स्वयं उसका उत्तर मन में सोचे और बाद में उत्तर पढ़कर उससे मिलान करे । इससे स्वयं सोचने की, उत्तर ढूँढने की आदत हो जाएगी ।

प्रश्न - तीन कटोरियों में एक में दूध, एक में दही और एक में छाछ रखा हुआ है । उनमें कौनसे और कितने अभाव हैं ?

उत्तर - वर्तमान में ही ये तीन अलग अलग पदार्थ हैं - पुद्गल की पर्यायें हैं इसलिए इनका आपस में अन्योन्याभाव है ।

उनके एक एक परमाणु का अन्य सभी परमाणुओं में अत्यन्ताभाव है । इन पर्यायों का प्रत्येक का अपनी अपनी पूर्व

पर्यायों में प्रागभाव है और अपनी भविष्य पर्यायों में प्रध्वंसाभाव है ।

प्रश्न - भगवान महावीर की वर्तमान में केवलज्ञान पर्याय है । उसमें प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव बताओ ।

उत्तर - भगवान महावीर को तेरहवें गुणस्थान के पहले समय में अरहंत अवस्था प्राप्त हुयी, केवलज्ञान प्रकट हुआ । उससे पूर्व बारहवें गुणस्थान तक उनके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान था (छठवें से बारहवें गुणस्थान तक) उसके पश्चात् इस समय तक लगातार केवलज्ञान की पर्यायें होती रही । इसलिए वर्तमान केवलज्ञान पर्याय का पूर्व की सभी ज्ञान पर्यायों में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और अरहंत अवस्था से लेकर इस वर्तमान समय के पूर्ववर्ती समय तक की केवलज्ञान पर्यायों में जो अभाव है वह प्रागभाव है ।

इस वर्तमान केवलज्ञान पर्याय का भविष्यकालीन सभी अनंतानंत केवलज्ञान पर्यायों में अभाव है, वह प्रध्वंसाभाव है ।

प्रश्न - छत को दीवारों का आधार है और दीवारों को जमीन का आधार है क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर - नहीं । क्योंकि छत, दीवारें और जमीन इनका परस्पर में अन्योन्याभाव है । प्रत्येक की सत्ता भिन्न भिन्न होने से प्रत्येक चीज स्वक्षेत्र के आधार से है ।

प्रश्न - तेजस शरीर और कार्माण शरीर में कौनसा अभाव है?

उत्तर - तेजस शरीर और कार्माण शरीर का परस्पर में अन्योन्याभाव है; क्योंकि दोनों ही पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्यायें हैं ।

प्रश्न - निम्नलिखित बातों में कौन कौनसा अभाव है ? क्यों?

१. इच्छा और भाषा । २. चश्मा और आँखें और ज्ञान ।
३. शरीर और वस्त्र । ४. शरीर और जीव ।

उत्तर - १. इच्छा और भाषा में अत्यन्ताभाव है । क्योंकि इच्छा जीव के चारित्र गुण की विकारी पर्याय है और भाषा पुद्गल की पर्याय है । दोनों के द्रव्य भिन्न भिन्न हैं ।

२. चश्मा और आँख का परस्पर में अन्योन्याभाव है क्योंकि दोनों पुद्गल की वर्तमान पर्यायें हैं। इन दोनों का ज्ञान में अत्यन्ताभाव है क्योंकि ज्ञान तो जीव द्रव्य के ज्ञान गुण की पर्याय है।

देखो तो, चश्मे और आँखों से ही मुझे ज्ञान होता है ऐसी अज्ञानी की मान्यता है।

३. शरीर और वस्त्र में अन्योन्याभाव है क्योंकि शरीर एक पुद्गल स्कंध है और वस्त्र दूसरा पुद्गल स्कंध है।

४. शरीर और जीव में अत्यन्ताभाव है। क्योंकि जीव और पुद्गल दो भिन्न स्वतंत्र द्रव्य हैं। वास्तव में देखा जाये तो शरीर का एक एक परमाणु स्वतंत्र द्रव्य है उनका आपस में तथा जीव में अत्यन्ताभाव है।

इस बात से अनभिज्ञ जीव शरीर को ही मैं हूँ मानकर एकत्व करता है और वस्त्रों से मैं सुखी, ऊँचे वस्त्र - आभरण आदि से मैं महान हूँ मानता है, ममत्वबुद्धि करता है। मैं शरीर का कार्य करनेवाला और परपदार्थों को भोगनेवाला हूँ मानकर वह जीव अपना मिथ्यात्व और अज्ञान कायम रखता है।

प्रश्न - कुम्हार ने चक्र, लकड़ी आदि के द्वारा घड़ा बनाया इस बात को निश्चय से मानेंगे तो कौनसे अभाव नहीं माने?

उत्तर - कुम्हार का शरीर, चक्र, लकड़ी और घड़ा इन सबका परस्पर में अन्योन्याभाव है। कुम्हार का जीव और इन सबमें अत्यन्ताभाव है। कुम्हार ने इन साधनों द्वारा घड़ा बनाया निमित्त का कथन है, उपचार कथन है। उसे निश्चय का कथन मानेंगे तो अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव को नहीं माना।

प्रश्न - चार घातिकर्मों के नाश से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ मानेंगे तो क्या आपत्ति है?

उत्तर - कर्म पुद्गल की पर्याय है और ज्ञान जीव की पर्याय है। पर्याय अपने अपने द्रव्य में होती है। इसलिए पुद्गल और जीव में अत्यन्ताभाव है। जीव स्वयं अपने स्वभाव का अनुभव करता हुआ शुद्धोपयोग में रहता है तब केवलज्ञान प्राप्त होता है

उस समय घातिकर्म अपने स्वयं के कारण पूर्णतः क्षय को प्राप्त होते हैं ।

कर्मों की अवस्था का, निमित्त का ज्ञान कराने के लिए शास्त्र में ही कथन आता है कि अरहंत भगवान ने चार घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय की प्राप्ति की । शास्त्रों के वचनों का सही अर्थ और मर्म जानना हमारी अपनी जिम्मेदारी है; नहीं तो उन्हीं वचनों को गलत अर्थ में समझने से उन गलत वचनोरूपी शास्त्रों द्वारा हम अपना ही घात करेंगे ।

प्रश्न - जीव भाषा क्यों नहीं बोल सकता? कम से कम मुख से तो शब्द निकलते हैं ना?

उत्तर - जीव और भाषा (पुद्गल) में अत्यन्ताभाव है इसलिए पुद्गल का यह कार्य जीव नहीं कर सकता । मुख और भाषा में तो अन्योन्याभाव है क्योंकि दोनों भिन्न भिन्न स्कंध हैं - पुद्गल की वर्तमान पर्यायें हैं ।

प्रश्न - पंचम काल में केवलज्ञान नहीं होता क्योंकि जीवों के वज्रवृषभनाराच संहनन नहीं होता - कौनसा अभाव नहीं माना ?

उत्तर - यह करणानुयोग का नियम है परंतु हम यदि उसका सही अर्थ अर्थात् निमित्त का कथन न जानकर इसे निश्चय कथन समझेंगे तो हमने अत्यन्ताभाव को समझा ही नहीं कहना पड़ेगा ।

पंचमकाल व्यवहारकाल यानि काल द्रव्य की पर्याय है जो कालद्रव्य में है और केवलज्ञान जीव के ज्ञान गुण की पर्याय जीव में है तथा वज्रवृषभनाराच संहनन यह शरीर की रचना - हड्डियों की मजबूती शरीर में है, पुद्गल द्रव्य की है । इन तीनों द्रव्यों का आपस में अत्यन्ताभाव है । तुम पूछोगी, 'वज्रवृषभनाराच संहनन नाम के नामकर्म के उदय से यह संहनन प्राप्त होता है ऐसा हमने करणानुयोग में सुना था ?' तुमने सही सुना था परंतु वह तो निमित्त का कथन है । नामकर्म और शरीर इन दोनों का परस्पर में अन्योन्याभाव है ।

प्रश्न - हवा के कारण ध्वजा लहराती है ना?

उत्तर - हवा और ध्वजा का परस्पर में अन्योन्याभाव है। ध्वजा अपनी क्रियावती शक्ति के कारण से लहराती है।

प्रश्न - घातिकर्म और अघातिकर्म एक साथ रहते हैं, उनका तो आपस में कोई अभाव नहीं होगा? वे जीव को संसार में रखड़ाते हैं ना?

उत्तर - घातिकर्म और अघातिकर्म दोनों पुद्गल की वर्तमान पर्यायें हैं। उन दोनों का परस्पर में अन्योन्याभाव है। इन दोनों के भेद हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय जो घातिकर्म हैं ओर वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र जो अघातिकर्म हैं उन सबका भी आपस में अन्योन्याभाव है। उनके और अनेक उपभेद करने पर असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते हैं उन सारों का भी आपस में अन्योन्याभाव है।

जीव का और इन सब कर्मों का एकदूसरे में अत्यन्ताभाव है, तो कर्म जीव को संसार में रखड़ाते हैं यह बात कहाँ तक सच है? तुम ही विचार करो।

प्रश्न - रोटी को आत्मा ने नहीं पकड़ा परंतु हाथ ने तो पकड़ा ना ?

उत्तर - हाथ और रोटी में अन्योन्याभाव है। हाथ ने रोटी को पकड़ा मानेगे तो अन्योन्याभाव को नहीं माना।

प्रश्न - मैंने रोटी खायी कौनसा अभाव नहीं माना?

उत्तर - मैं जीव द्रव्य हूँ और रोटी पुद्गल स्कंध है दोनों का परस्पर में अत्यन्ताभाव है। इसलिए जीव रोटी खाता है यह मान्यता गलत है।

प्रश्न - मेरे शरीर ने तो रोटी खायी ना ?

उत्तर - मेरा शरीर मानने से मैं जीव द्रव्य और शरीर पुद्गल द्रव्य इन दोनों का परस्पर में अत्यन्ताभाव है उसे नहीं माना तथा शरीर और रोटी में अन्योन्याभाव है उसे भी नहीं माना।

प्रश्न - मैंने भी रोटी नहीं खायी, शरीर ने भी रोटी नहीं खायी तो रोटी गयी कहाँ? आज तक हमने इतनी रोटियां खायी माना था उसका क्या होगा?

उत्तर - ना जीव रोटी खाता है, ना शरीर रोटी खाता है । रोटी के परमाणु स्वयं अपनी क्रियावती शक्ति की योग्यता से क्षेत्र क्षेत्रांतर करते हैं, जीव तो मात्र जानता है, उस समय शरीर की क्रियायें - चबाना, निगलना आदि शरीर में अपने कारण होती हैं, रोटी का पीसा जाना उसके अपने कारण होता है ।

इन सारे अभावों की सही जानकारी होते ही पहले जो माना था उनका क्या होना है? वे मिथ्या मान्यतायें अब नहीं रहेगी, सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए तत्त्वनिर्णय होता जाएगा । तुम्हें उन रोटियों की चिंता है जो तुमने माना था कि तुमने खायी थी या तुम्हें उन मान्यताओं की चिंता है जिन्हें तुमने सच माना था या तुम्हें अपनी चिंता है ? पहले नक्की तो करो!

प्रश्न - हम सिद्धक्षेत्रों की वंदना करते हैं । सिद्धक्षेत्र से जीव मोक्ष पधारे थे ना?

उत्तर - सिद्धक्षेत्र आकाश का क्षेत्र यानि स्थान दर्शाता है और मोक्ष जीव की पर्याय है जो जीव में होती है । किसी क्षेत्र का नाम मोक्ष नहीं है । जीव द्रव्य और आकाश द्रव्य का परस्पर में अत्यन्ताभाव है । वास्तव में जीव द्रव्य के स्वक्षेत्र में ही मोक्षपर्याय प्रकट होती है परंतु संयोग की अपेक्षा से जिस आकाश क्षेत्र से - जिस स्थान से जीव ने मोक्षपर्याय प्रकट की है उस स्थान को उपचार से - व्यवहार से सिद्धक्षेत्र कहते हैं ।

सिद्धक्षेत्र की वंदना करते हुए हम यदि इस रहस्य को समझेंगे कि उस जीव ने मोक्षपर्याय-मोक्षरूपी कार्य किसतरह प्रकट किया तो ही हमारी तीर्थवंदना कार्यकारी कहलायेगी ।

प्रश्न - मन, वचन, काय से भगवान की वंदना करने से ही लाभ होगा ना?

उत्तर - मन तो मनोवर्गणा का कार्य है, वचन भाषावर्गणा का कार्य है और काया आहारवर्गणा का कार्य है इन सबका आपस में अन्योन्याभाव है और इन सबका जीव में अत्यन्ताभाव है । परद्रव्य की क्रिया करने से मैंने भगवान की वंदना, स्तुति की मानना ठीक नहीं है । भगवान को द्रव्य, गुण, पर्यायों सहित जानकर अपने भगवानस्वरूप स्वभाव में ज्ञान को लीन करना-झुकाना ही भगवान की सच्ची स्तुति और वंदना है ।

प्रश्न - मेरा यौवन कायम रहने के लिए मैं दवाईयां खाती हूँ - कौनसा अभाव नहीं माना ?

उत्तर - मैं तो जीव द्रव्य हूँ और जवानी शरीर की पर्याय है तथा दवाईयां पुद्गल की पर्याय है । मैं और जवानी तथा मैं और दवाईयां इन का परस्पर में अत्यन्ताभाव है । जवानी शरीर की पर्याय है और दवाईयां अन्य स्कंध हैं दोनों का एकदूसरे में अन्योन्याभाव है - उनको नहीं माना ।

प्रश्न - अग्नि के कारण पानी गरम हुआ, पेट्रोल के कारण गाड़ी चलती है ऐसा मानेगे तो कौनसा अभाव नहीं माना ?

उत्तर - अन्योन्याभाव को नहीं माना क्योंकि अग्नि और पानी तथा पेट्रोल और गाड़ी का परस्पर में अन्योन्याभाव है । निमित्त की अपेक्षा यह कथन ठीक है परंतु निश्चय से वैसा ही है मानेगे तो गलत होगा ।

प्रश्न - पैसों से सुख मिलता है, हमने मेहनत करके पैसा कमाया - क्या यह सच है ?

उत्तर - पैसों में सुख नाम का गुण ही नहीं है वह तो जीव में है । पैसा और जीव का परस्पर में अत्यन्ताभाव है । निष्परिग्रही मुनि तो प्रचुर सुख का उपभोग लेते हैं और अरहंत सिद्ध तो अनंत सुखी हैं । इसलिए किसी भी परवस्तु में से सुख आता है यह मान्यता ही गलत है । निमित्त की अपेक्षा से भी यह कथन गलत है । मेहनत शरीर की क्रिया है उसका और पैसों का परस्पर में अन्योन्याभाव है तथा जीव और शरीर का तथा जीव और पैसों का परस्पर में अत्यन्ताभाव है ।

प्रश्न - हमारे सातावेदनीय कर्म के उदय से तो हमें पैसा मिल रहा है ना? अच्छे संयोग मिल रहे हैं ना?

उत्तर - कर्म तुम्हारा है ही नहीं । तुम्हारा कर्म में अत्यन्ताभाव है तथा कर्म और पैसों का, संयोगों का परस्पर में अन्योन्याभाव है । संयोगों की रुचि में कर्म के उदय को भला मानकर विशिष्ट पुण्यकर्म का बंध भी तुम अच्छा मान रही हो । जिसे बंध की और उसके फल की रुचि है उसे धर्म की, मोक्षमार्ग

की, मोक्ष की रुचि हो नहीं सकती, अपनी स्व की रुचि हो नहीं सकती । यह उसकी बंध तत्त्व तथा सातों तत्त्व संबंधी भूल है ।

आज मुझे क्या हो गया? प्रश्न पूछते पूछते पत्र बहुत बड़ा हो गया इसका ख्याल नहीं रहा । फिर भी एक आखिर का प्रश्न पूछ ही लेती हूँ । बताओ, चैतन्य और जीव इनमें कौनसा अभाव है?

शाबाश! इनमें कोई भी अभाव नहीं है । चैतन्य अर्थात् ज्ञानदर्शन तो जीव का 'भाव' है - गुण है - स्वभाव है । जीव का और उसका तो नित्यतादात्म्य संबंध है । उनमें अभाव की कोई गुंजाईश ही नहीं है ।

देखो तो, अभाव का विषय है ही बहुत दिलचस्प ! जीवों की मिथ्या मान्यतायें दूर होने में इन अभावों का ज्ञान बहुत ही उपयोगी है । हम तो भाषा द्वारा ही समझा सकते हैं और भाषा स्वयं उपचार है । कथन में तो निमित्तपरक कथन की ही मुख्यता है । फिर भी ज्ञान में और मान्यता में जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा ही जानना और मानना चाहिए ।

अभावों को जानने से होनेवाले लाभों की तो हम चर्चा कर आये हैं । अभावों को जानने से वस्तु व्यवस्था ख्याल में आती है, कार्य किसमें होगा किसमें नहीं होगा इस बात का पता चलता है । अभावों का ज्ञान होने पर दृष्टि और ज्ञान का उपयोग त्रिकाल भावस्वरूप अपने स्वभाव पर जाता है, उसीमें मैं पना स्थापित होता है, जीव अपने आप को चैतन्यरूप अनुभव करने लगता है, ज्ञाता दृष्टा बन जाता है ।

शेष बातें आगामी पत्र में ।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

निमित्त

पत्रांक ६

१ मई २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

कारण - कार्य व्यवस्था का रहस्य जानने के लिए तुम बड़ी उत्सुक हो इस बात का मुझे पता है ।

कार्य अर्थात् पर्याय । गुणों के विशेष कार्य को अर्थात् परिणामन को पर्याय कहते हैं यह बात हम पहले पढ़ चुके हैं । जीवादि छह द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण हैं और उनमें प्रत्येक में प्रति समय स्वयं का कार्य स्वयं में, स्वयं की शक्ति से, स्वयं की उस समय की योग्यता से होता है । हमने वस्तुत्व गुण का स्वरूप पढ़ते समय देखा था कि अपना अपना कार्य करने की शक्ति प्रत्येक द्रव्य में विद्यमान है ।

द्रव्य स्वयं कार्यरूप परिणमता है, यह उसकी निजशक्ति है यह कारण द्रव्य में ही विद्यमान है इसे 'उपादान कारण' कहते हैं ।

परंतु जो स्वयं कार्यरूप तो न परिणमे परंतु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिसपर आ सके उसे 'निमित्त कारण' कहते हैं ।

निमित्त की यह परिभाषा तुम कंठस्थ कर लेना । निमित्त से कार्य होता है माननेवालों की यह भ्रांति इसीलिए पायी जाती है कि उन्हें शास्त्रों में बताया हुआ निमित्त का स्वरूप ही पता नहीं है ।

जब जब हम कोई कार्य होते देखते हैं तब तब उसके कारणों की चर्चा करते हैं । जैसे, घड़ा बना यह कार्य हुआ । वह घड़ा किसने बनाया? उसका कारण कौन है इस बात का उत्तर सहसा मिलता है कि कुम्हार ने घड़ा बनाया । बचपन में शिशुवर्ग में तुमने याद किया था कि घड़ा बनाए वह कुम्हार है, जूते सिलानेवाला चमार है, कपडे सिलानेवाला दर्जी है, गहने बनानेवाला सुनार है ।

आचार्य कहते हैं कि ये सारे तो निमित्त हैं । क्या कुम्हार स्वयं घड़ारूप परिणमित्त हुआ है? नहीं, तो फिर वह घड़े का

उपादान कारण नहीं हो सकता, सच्चा कारण नहीं हो सकता । हां, जब घड़ा बना तब उसमें अनुकूल होने का आरोप कुम्हार पर आ सकता है इसलिए कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है । कुम्हार ही अकेला नहीं तो उसका चाक, दण्ड आदि भी निमित्त कारण ही हैं ।

घड़ारूप स्वयं कौन परिणमित हुआ है? 'मिट्टी' । इसलिए मिट्टी घड़े का उपादान कारण है । मिट्टी कर्ता है और घड़ा उसका कार्य अर्थात् कर्म है । शास्त्र की भाषा में कहना हो तो मिट्टी और घड़े में कर्ता कर्म संबंध है परंतु कुम्हार और घड़े में कर्ता कर्म संबंध नहीं है, उनमें 'निमित्त नैमित्तिक संबंध' है ।

तुम पूछोगी, 'केवल उपादान से ही कार्य होता है तो निमित्त की बात ही क्यों करते हैं?'

जब जब कार्य होता है तब तब अनेक कारण एकत्रित हो जाते हैं । बिना कारणों के कार्य नहीं होता । इन कारणों के मुख्य दो भेद करने पर उनमें से एक है 'उपादान कारण' और दूसरा है 'निमित्त कारण' । कार्य तो एक ही हुआ परंतु कारण तो दो हैं । इसलिए इन कारणों की अपेक्षा से कथन करने पर उसी एक कार्य के दो नाम बताये हैं ।

उपादान कारण की अपेक्षा से कार्य को 'उपादेय' कहते हैं । सात तत्त्वों की चर्चा के समय तत्त्वों की हेय, ज्ञेय, उपादेय श्रद्धान में जो उपादेय शब्द आया था उसका अर्थ यहाँ नहीं समझना । वहाँ तो उपादेय का अर्थ प्रकट करने योग्य या आश्रय करने योग्य किया था । अब यहाँ पर हम कार्य को उपादेय कह रहे हैं ।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने कहा है, 'ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समझवुं तेह' अर्थात् जहाँ जहाँ जो जो अर्थ योग्य है, वहाँ वहाँ वही अर्थ जानना चाहिए ।

हां, तो मैं क्या कह रही थी? उपादान की अपेक्षा से कार्य को उपादेय कहते हैं और निमित्त की अपेक्षा से उसी कार्य को 'नैमित्तिक' कहते हैं । जो उपोदय है वही नैमित्तिक है, वे दो भिन्न बातें नहीं हैं, एक ही कार्य के दो नाम हैं ।

इसे हम घड़े के दृष्टांत पर घटित करते हैं। घड़ा बना यह कार्य हुआ। मिट्टी उसका उपादान कारण है और घड़ा उसका उपोदय है - कार्य है। कुम्हार उसका निमित्त कारण है और घड़ा उसका नैमित्तिक है। मिट्टी और घड़ा इनका उपादान-उपादेय संबंध है तथा कुम्हार और घड़ा इनमें निमित्त नैमित्तिक संबंध है। तत्त्वज्ञान की भाषा में बोलते हुए लगता है कि हम कुछ विशेष जानकार हो गये हैं।

घड़ा ही उपोदय है और घड़ा ही नैमित्तिक है। उपादेय और नैमित्तिक एक ही कार्य के दो नाम हैं। उपादान और निमित्त एक कार्य के दो भिन्न कारण हैं। उपादान कारण तो निजशक्ति है और निमित्त 'पर' है। कार्य निजशक्ति से ही होता है, उस समय निमित्त की मात्र उपस्थिति रहती है। परंतु निमित्त कार्य में हेराफेरी, मदद, असर, प्रेरणा आदि कुछ भी नहीं करता।

निमित्त की उपस्थिति में द्रव्य स्वयं ही वह कार्य करता है। कार्य का कर्ता सौ टका उपादान ही है, निमित्त कार्य का कर्ता नहीं है। परंतु जब जब कार्य होता है तब तब अन्य अनुकूल चीजों की सहज उपस्थिति पायी जाती है उन्हें निमित्त कहते हैं।

तुम कहोगी, 'यदि प्रत्येक कार्य मात्र उपादान से ही होता है, तो फिर निमित्त का नाम लेने की भी क्या आवश्यकता है? निमित्त का कथन भी क्यों करते हैं?' बेटियों, निमित्त नाम का कोई विवक्षित द्रव्य तो है नहीं। इस विश्व के अनंतानंत द्रव्य स्वयं की उपादान शक्ति से प्रतिसमय, निरंतर परिणमन करते हैं अर्थात् इस विश्व में से प्रत्येक द्रव्य स्वयं के पर्यायों का उपादान कारण है। जिन द्रव्यों की पर्याय अन्य द्रव्यों की पर्यायों में अनुकूल भासित होती है उन द्रव्यों को निमित्त कहा जाता है।

वास्तव में द्रव्य निमित्त नहीं होता, उसकी विवक्षित पर्याय निमित्त होती है, परंतु कथन करते समय हम उस द्रव्य को निमित्त कह देते हैं। कोई भी द्रव्य जानबूझकर अन्य द्रव्य में निमित्त नहीं हो सकता।

हमने बहुत पहले छह द्रव्य और उनके विशेष गुणों की विस्तार से चर्चा की थी। जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन छह द्रव्यों में से

धर्मादि चार द्रव्यों का वर्णन करते समय वे जीव और पुद्गलों को किसतरह निमित्त होते हैं यह बतलाया था । धर्मद्रव्य का 'गतिहेतुत्व' और अधर्मद्रव्य का 'स्थितिहेतुत्व' गुण यही दर्शाते हैं कि ये दो द्रव्य जीव और पुद्गलों को अनुक्रम से गति और स्थिति करने में निमित्त हैं ।

इन दो द्रव्यों की परिभाषा को जरा याद करो । 'स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को गमन करने में निमित्त होता है, उसे धर्मद्रव्य कहते हैं' और 'स्वयं गमनपूर्वक स्थिर होनेवाले जीव और पुद्गलों को स्थिर होने में निमित्त होता है उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं' इसतरह हमने कंठस्थ किया था । उस समय उन शब्दों का महत्त्व ख्याल में नहीं आता था परंतु अब तुम्हारी समझ में आएगा कि जीव और पुद्गल जब स्वयं अपनी उपादान शक्ति से गमन करते हैं या स्थिर होते हैं तब धर्म या अधर्म द्रव्य निमित्तरूप से उपस्थित रहते हैं ।

निमित्त को उपकारी भी कहते हैं, निमित्तरूप से रहने का ही अर्थ उपकार है । तत्त्वार्थसूत्र में कहा है 'गतिस्थितिउपग्रहौ धर्माधर्मयोः उपकारः।' सभी द्रव्यों को स्थान देने में आकाश द्रव्य निमित्त है, इसे ही आकाश द्रव्य का उपकार कहते हैं ।

शरीर, मन, वचन, श्वासोच्छ्वास, इंद्रियजन्य सुख, दुःख, जीवन, मरण इन सारों में पुद्गल जीव का उपकार करता है अर्थात् पुद्गल निमित्त है । लौकिक भाषा में हम जिसे उपकार करना कहते हैं वह अर्थ यहाँ नहीं है । प्रत्येक कार्य उपादान से स्वसमय में होता है तब निमित्त की उपस्थिति भी सहज होती है । उन्हें जुटाने के यत्न से जुटाये नहीं जाते और हटाने के यत्न से वे दूर भी नहीं होते । 'परस्परपग्रहो जीवानाम्' सूत्र सर्वविदित है । एक जीव दूसरे जीव के सुख में, दुःख में, उपदेशादि में, जन्म देने में, मरण में उपकारी है, निमित्त है ।

तुम कहोगी, 'मरण में निमित्त तो अपकार हो गया, इसे आप उपकार क्यों कह रही है?'

मैं थोड़े ही कह रही हूँ? यह तो आचार्यों का वचन है । अभी एक मिनट पहले ही हमने देखा था कि उपकार शब्द का अर्थ निमित्त है । जीवों को एकदूसरे की मदद करना चाहिए ऐसा

इस सूत्र का अर्थ नहीं है। जिसतरह अन्य द्रव्य जीवों के कार्य में निमित्त हैं उसी तरह एक जीव अन्य जीव को निमित्त हो सकता है।

परंतु इसका अर्थ ऐसा कदापि नहीं है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य करता हो, कार्य में मदद करता हो, प्रेरणा देता हो। उपकार अर्थात् निमित्त कहना तो उस द्रव्य की सहज उपस्थिति दर्शाना है, अन्य कुछ नहीं।

कालद्रव्य अन्य सभी द्रव्यों के परिणमन में निमित्त है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपनी उपादान शक्ति के कारण परिणमित होता है तब कालद्रव्य उसमें निमित्त है, कालद्रव्य उन्हें परिणमाता नहीं।

ये सारे सिद्धांत हमें अपने आप पर यानि आत्मा पर घटित करने हैं। क्योंकि हमारा प्रयोजन तो आत्मा के स्वरूप को जानना है। हमारे ज्ञान, दर्शन, चरित्र आदि अनंत गुणों का कार्य हो रहा है तो उसमें कारण कौन है? कौन हमें मदद करेगा? कोई हमारे कार्य में विघ्न तो नहीं डालेगा? इस बात का हमें विचार करना चाहिए।

हमारे ज्ञान गुण का जानना, जानना कार्य तो निरंतर चल रहा है। हम जान रहे हैं यह बात हमारे प्रत्येक के ख्याल में आती है, अनुभव में आती है। परंतु आज तक अज्ञानी जीव की ऐसी ही मान्यता हो रही है कि सामने वस्तु है इसीलिए मुझे ज्ञान हो रहा है, ज्ञेय के कारण ज्ञान हो रहा है।

ज्ञान की प्रत्येक पर्याय ज्ञान गुण का कार्य है और उसका कर्ता ज्ञानगुण है। वह उपादान कारण है। ज्ञान गुण के अलावा अन्य कोई भी इस ज्ञान पर्याय का उपादान कारण नहीं है। परंतु तुम ही सोचो कि क्या सचमुच तुम ऐसा ही मान रही हो?

‘सामने पुस्तक है इसलिए ज्ञान हुआ’, ‘गुरु से ज्ञान हुआ’, ‘प्रकाश है इसलिए ज्ञान हुआ, अंधेरे में कैसे हो सकता था?’ ‘मुँह में गुलाबजाम रखा इसलिए उसकी मिठास का ज्ञान हुआ’, ‘चश्मा लगाने से ज्ञान हुआ’- ऐसी ही प्रायः अनेक लोगों की मान्यता दिखायी देती है।

तुम कहोगी, 'ये सभी बातें तो प्रत्यक्ष में इसी तरह पायी जाती हैं, अनुभव में आती हैं, तो फिर हम उन्हें जरूर मानेंगे ही। तुम उनका निषेध क्यों करती हो? क्या तुम्हें गुलाबजाम खाये बिना ही उसकी मीठास का पता चलता है? तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति में पूज्य श्री कानजीस्वामी के अनंत उपकार हैं - उन्हीं के उपदेश से यह मार्ग प्राप्त हुआ है यह बात तुम ही बारंबार बताती हो।'

बेटी, यहाँ कथन का कौन निषेध कर रहा है? हम तो गलत मान्यता का निषेध कर रहे हैं। कथन निमित्त की अपेक्षा किया जाता है परंतु कार्य तो उपादान से होता है। यह बात जानते हुए निमित्त का कथन करेंगे तो वह योग्य होगा परंतु यदि उपादान को मानेंगे ही नहीं और निमित्त को ही कार्य का कर्ता मानेंगे तो वह मिथ्यात्व है।

हमें तो ऐसे गुरु (विद्यागुरु) मिले कि उन्होंने बारंबार कहा था कि, 'अरे जीवों, तुम्हें जो यह ज्ञान हो रहा है वह तुम्हारे उपादान से हो रहा है। यह जो उपदेश - यह वाणी है वह तो भाषावर्गणा का कार्य है - मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। जिस गुरु ने ४५-४५ वर्ष उपदेश दिया था कि 'हे शिष्य, गुरु से ज्ञान नहीं होता। तेरी निमित्ताधीन दृष्टि छोड़। तू स्वयं स्वतःसिद्ध परमात्मा है इस बात को नक्की कर, ऐसा निर्णय कर।' ऐसे गुरु के अनंत उपकार को स्मरण न करे वह शिष्य कैसा?

तुम भी तो कहती हो कि, 'माँ, तुम्हारे कितने उपकार हैं। हमें छोटे से बड़ा करते समय कभी कोई दुःख भी नहीं महसूस होने दिया और अब सच्चा धर्मोपदेश देकर हमें संसार सागर पार करने की कला सिखा रही हो।' बेटियों, वचन द्वारा उपकार स्मरण करना यह तो कृतज्ञता व्यक्त करनी है। उस समय मान्यता में कोई आंच नहीं आती। ज्ञानी और अज्ञानी दोनों के कथन समान् भासित होने पर भी उन दोनों के अभिप्राय में, मान्यता में जमीन आसमान का अंतर होता है। ज्ञानी निमित्त को निमित्तरूप से स्वीकार करता है परंतु अज्ञानी निमित्त को कर्ता मानता है।

यदि कोई कहेगा कि उसने पानी, खत, धूप देकर वृक्ष बढ़ाया है तो क्या उसने बीज के बिना ही वृक्ष पैदा किया? आम्रवृक्ष आम की गुठली बोने से ऊगेगा या नीमू के बीज बोने से? उस उस बीज में विवक्षित वृक्ष बनने की निजशक्ति है। दूसरा दृष्टांत देखो। शिक्षक से ज्ञान हुआ मानेंगे तो सब विद्यार्थियों को समान ज्ञान होना चाहिए था। परंतु कुछ विद्यार्थी फर्स्ट क्लास में उत्तीर्ण होते हैं तो कोई नापास होते हैं।

निमित्त भी तभी कहा जाता है जब कार्य होता है। बिना कार्य के निमित्त किसका? वृक्ष अंकुरित ही नहीं हुआ तो पानी, खत, धूप निमित्त किसके? विद्यार्थी विद्या ग्रहण करेगा तो ही शिक्षक पर आरोप आएगा कि इस शिक्षक से मुझे ज्ञान हुआ। आरोप अर्थात् उपचार। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य करता है कहना औपचारिक - उपचार का कथन है, वह वास्तविक यानि यथार्थ कथन नहीं है। इसप्रकार का कथन पढ़कर उसका यथार्थ अर्थ करना हमारी जिम्मेदारी है।

सारा कर्मसिद्धांत निमित्त की भाषा में है। जीव ने कर्म बांधे, अरहंतों ने चार घातिकर्मों का नाश करके अनंत चतुष्टय की प्राप्ति की, आठ कर्मों का नाश करके जीव सिद्धगति प्राप्त करता है आदि कथन हम जिनागम में पढ़ते हैं। परंतु उन कथनों का मर्म न पहचानने से और सर्वथा वैसा ही मानने से निमित्त से कार्य होता है इस भ्रम की पुष्टी होती है।

उक्त कथनों का सही अर्थ इसतरह है - जब जीव स्वयं मोह, राग, द्वेषरूप परिणमन करता है तब कार्माण वर्गणा स्वयं कर्मरूप परिणमित होकर पूर्वबद्ध कर्मों में आ मिलते हैं, बंध होता है। जीव निजशुद्धात्मा में लीनता द्वारा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्य प्रकट करके अरहंत परमात्मा बनता है तब चार घातिकर्म स्वयं की योग्यता से खिरकर नष्ट हो जाते हैं। जीव जब पूर्ण शुद्धतारूप मोक्षदशा प्रकट करता है तब सभी कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाता है।

‘एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य कर नहीं सकता, बिगाड या सुधार कुछ भी कर नहीं सकता’ यह जिनागम का सिद्धांतरूपी

मंत्र सदाकाल ध्यान में रखोगी तो जिनागम का योग्य अर्थ और रहस्य समझ में आएगा ।

जिनागम में अधिकतर कथन ऐसा औपचारिक कथन है । क्योंकि वहाँ निमित्त का ज्ञान कराया जाता है, निमित्त की उपस्थिति बतायी जाती है । उस कथन का मर्म यानि रहस्य नहीं जानने के कारण शास्त्र पढ़कर भी निमित्ताधीन दृष्टि का ही पोषण किया जाता है । इसे दृष्टांत द्वारा देखते हैं -

भगवान महावीर को केवलज्ञान हुआ । समवशरण की रचना हुई । भव्य जीव उपदेश सुनने के लिए रोज आते थे परंतु ६६ दिन तक दिव्यध्वनि खिरी नहीं । इंद्र ने अवधिज्ञान से जानकर वैदिक साधु इंद्रभूति से प्रश्न पूछकर अपने गुरु से चर्चा करने के लिए बुलाया । इंद्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति अपने ५००-५०० शिष्यों सहित समवशरण में आ गये । मानस्तंभ देखते ही उनका मान गल गया और भगवान के सामने जाकर उन्होंने दिगंबर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली । दिव्यध्वनि खिरने लगी ।

निमित्त से कार्य होता है माननेवाले लोग शास्त्र का यह कथन दिखाकर कहते हैं कि देखो, निमित्त नहीं था इसलिए वाणी नहीं खिरी, निमित्त हाजिर होते ही निमित्त के कारण वाणी खिरी ।

भाषावर्गणा तो अचेतन है, गणधर के आने पर शब्दरूप होना है इसतरह का ज्ञान तो उस जड़ वाणी में नहीं है । इसलिए गणधर आने के कारण वाणी खिरी कहना कहाँ तक योग्य है? यहाँ भाषावर्गणा शब्दरूप परिणमित्त हुयी यह कार्य हुआ । उसका उपादान कारण भाषावर्गणा है । निमित्त तो अनेक होते हैं । स्तुति में कहा भी है, 'भवि भागन वच जोगे वशाय, तुम धुनि व्हे सुनि विभ्रम नशाय' अर्थात् 'भव्य जीवों के भाग्य से - पुण्योदय से और तुम्हारे वचनयोग के वश से यानि निमित्त से तुम्हारी दिव्यध्वनि खिरती है जिसे सुनकर विभ्रम का अर्थात् भ्रांति का, मिथ्यात्व का नाश होता है ।'

मात्र गणधर की उपस्थिति यह एक मात्र निमित्त नहीं था । दिव्यध्वनि के खिरने में तीर्थकर केवली का वचनयोग निमित्त है जो उनके नामकर्म के उदय से होता है ।

कर्म संबंधी और एक उदाहरण याद आया। किसी के क्रोध आया, क्यों? तो बच्चों ने शोर मचाया इसलिए। यह तो निमित्त हुआ। उपादान तो उस जीव का चारित्र गुण है क्योंकि क्रोध चारित्र गुण की विभाव पर्याय है। करणानुयोग के अभ्यास के कारण तुम पूछोगी कि, 'क्रोध कर्म के उदय के कारण क्रोध हुआ ना?' कर्म का उदय भी निमित्त है, कर्ता नहीं है। कर्म और जीव दो भिन्न द्रव्य हैं, उनका एक दूसरे में अत्यन्ताभाव है। तो फिर वे दूसरे द्रव्य का कार्य किसतरह कर सकते हैं? जब जीव स्वयं क्रोध करता है तब क्रोध कर्म का उदय पाया जाता है।

'तो फिर अब बच्चों पर गुस्सा करना कि कर्म पर?' बेटियों, आज तक जीव यही भूल करता आया है। निमित्त से कार्य होता है, पर के कारण मुझे क्रोध आता है मानकर, पर से द्वेषभाव करके जीव रागद्वेष की परंपरा चालू ही रखता है। बच्चों का शोर, पड़ोसियों द्वारा तकलीफ, अन्य परेशानियां आदि सारे बाह्य कारण हैं वे भिन्न भिन्न हो सकते हैं उन्हें बहिरंग निमित्त कहा जाता है। परंतु तब हर बार क्रोध कर्म का उदय रहता ही है, वह नियमरूप निमित्त है इसलिए कर्म के उदय को अंतरंग निमित्त कहते हैं।

अब सम्यग्दर्शनरूपी कार्य पर उपादान-निमित्त घटाते हैं। तुम्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की रुचि है इसलिए उसी का उदाहरण देखते हैं। सम्यग्दर्शन कार्य है और उस कार्य का उपादान कारण जीव का श्रद्धा गुण है क्योंकि श्रद्धा गुण स्वयं सम्यग्दर्शन पर्यायरूप से परिणमित होता है। उस समय दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम और अनंतानुबंधी का भी अनुदय रहता है। यह नियमरूप निमित्त होने से इसे अंतरंग निमित्त कहते हैं।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति देशनालब्धिपूर्वक होती है। उसमें देव, गुरु, शास्त्र से प्राप्त देशना या अन्य आत्मज्ञानी से प्राप्त उपदेश निमित्त होता है, यह बहिरंग कारण है। देशनालब्धि वाला जीव भी जिनबिम्ब दर्शन, महान ऐश्वर्य की प्राप्ति या नरक की तीव्र वेदना देखकर अंतर्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तब इन कारणों को बहिरंग निमित्त कहते हैं।

यहाँ तुम्हें प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो तीर्थकर या केवली के पादमूल में होती है ऐसा नियम शास्त्र में बताया है। देखो, तीर्थकर थे इसलिए कार्य हुआ ना? अभी पंचम काल में केवली भगवान नहीं है इसलिए क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता ना? देखो, निमित्त से ही कार्य होते हुए दिख रहा है।'

सुनो, क्षायिक सम्यग्दर्शन कार्य श्रद्धागुण में होता है। जीव के परिणामों में विशुद्धि अत्यंत बढ़ती है, करणपरिणाम होते हैं, आत्मस्थिरता-शुद्धोपयोग होता है उसके द्वारा जीव क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। श्रद्धागुण ही उसका उपादान कारण है। उसमें अंतरंग निमित्त कारण है सात प्रकृतियों का क्षय-दर्शनमोहनीय की तीन और अनंतानुबंधी क्रोधादि चार और बहिरंग निमित्त कारण है तीर्थकरों का सान्निध्य। तीर्थकर यदि जीवों को क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति करानेवाले होते तो सब जीवों के होना चाहिए था। वीतरागी भगवान एक भक्त पर प्रसन्न हो और अन्य पर नहीं यह बात तो तीन काल में हो नहीं सकती।

तीर्थकर की ओर देखते हुए उनकी भक्ति करते हुए उनका उपदेश सुनते हुए जीव क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं करता, परंतु बाह्य सब चीजों से लक्ष छूटकर निजशुद्धात्मा में स्थिरता होने से वह प्राप्त होता है।

निमित्तों के अंतरंग और बहिरंग भेद करने पर भी निमित्त तो निमित्त ही है। उसमें से एक अधिक बलवान हो और अन्य कम बलवान हो ऐसा है नहीं। निमित्तों का दूसरे प्रकार से भी विभाजन किया जाता है - (१) प्रेरक निमित्त और (२) उदासीन निमित्त।

'इच्छावान' और 'क्रियावान' द्रव्यों को प्रेरक निमित्त कहते हैं। इच्छाशक्ति से रहित या निष्क्रिय द्रव्य उदासीन निमित्त कहलाते हैं।

प्रदेशों के हलनचलन तथा क्षेत्र क्षेत्रांतर करने को 'क्रिया' कहते हैं। यह मात्र जीव और पुद्गल द्रव्यों में ही पायी जाती है क्योंकि उनमें क्रियावती शक्ति है। क्रियावती शक्ति नहीं होने

से अनादिअनंत सदाकाल स्थिर रहनेवाले धर्म, अधर्म, आकाश और काल निष्क्रिय द्रव्य हैं, इसलिए उन्हें उदासीन निमित्त कहते हैं ।

जीव इच्छावान और क्रियावान होने से प्रेरक निमित्त तथा पुद्गल क्रियावान होने से प्रेरक निमित्त कहलाता है । जैसे, विद्यार्थियों को पढ़ानेवाले अध्यापक इच्छावान होने से प्रेरक निमित्त हैं और ध्वजा लहराती है तब हवा सक्रिय होने से प्रेरक निमित्त है ।

निमित्त प्रेरक हो या उदासीन, पर द्रव्यों का कार्य करने में वह कोई मदद नहीं करता, दोनों की स्थिति समान ही है । दो प्रकार के निमित्तों में भेद दर्शाने के लिए उनके प्रेरक और उदासीन नाम होनेपर भी कोई भी निमित्त पर द्रव्यों का कार्य करने में 'धर्मास्तिकायवत् उदासीन' ही है यह शास्त्रवचन है ।

तुम कहोगी, 'निमित्तों का इतना निषेध करने में आता है तो उनका नाम ही क्यों लेते हैं? उनका स्वरूप समझने की क्या आवश्यकता है? कौनसे कार्य में कौनसे निमित्त होते हैं यह बताने का प्रयोजन क्या है? बस, उपादान से कार्य होता है कह दो ।'

फिर से सुनो, निमित्त का कोई भी निषेध नहीं कर रहा, निमित्त के कर्तृत्व का निषेध किया जा रहा है । निमित्त से परद्रव्य में कार्य होता है इस मान्यता का निषेध किया जा रहा है । निमित्त तो होता ही है परंतु वह अन्य द्रव्य के कार्य में किंचित् मात्र मदद, असर, प्रभाव, सहाय, हेरफेर नहीं करता । जब जब कार्य होता है तब तब दोनों कारण होते ही हैं - एक उपादान कारण और दूसरा निमित्त कारण । निमित्त होता है इसलिए उसका कथन भी किया जाता है ।

कार्य तो हमारे ख्याल में आता है क्योंकि वह व्यक्त है परंतु उपादान शक्ति अव्यक्त है वह ख्याल में नहीं आती, निमित्त की उपस्थिति तो ख्याल में आती है । इसलिए निमित्त ने ही कार्य किया इसतरह का भ्रम उत्पन्न होता है । निमित्तों का स्वीकार ही नहीं करेंगे तो ज्ञान झूठा होगा और निमित्त से कार्य होता है मानेंगे तो श्रद्धा झूठी होगी ।

जब तक निमित्त से ही कार्य होता है यह मान्यता रहेगी तब तक उस जीव की निमित्ताधीन दृष्टि छूटेगी नहीं । अपने कार्य के लिए वह अन्य व्यक्ति तथा कर्म की ओर आशाभरी निगाहें लगाकर बैठेगा, परपदार्थों का माहात्म्य कभी कम नहीं होगा और दृष्टि व ज्ञान कभी स्व की ओर नहीं मुड़ेगे ।

मैं अन्य पदार्थों का, धंदा व्यापार का, घर-गृहस्थी का कर्ता हूँ आदि मान्यता रहेगी, तब तक कर्तृत्वबुद्धि का बोझ कभी हटेगा नहीं । परकर्तृत्व के अहंकार और आकुलता के साथ जीव अपने शुद्धात्मस्वरूप का निराकुल वेदन नहीं कर सकता । प्रत्येक पदार्थ की एवं उनके कार्यों की अनंत स्वतंत्रता स्वीकार करनेवाला जीव ही स्वयं के स्वतःसिद्ध स्वरूप में लीनता धारण कर सकता है, उसका सम्यग्दर्शनरूपी कार्य सहज ही प्रकट होता है । वह कार्य प्रकट करने की भी आकुलता नहीं रहेगी ।

तुम कहोगी कि, 'उपादान तो अनादि का है । हमारे द्रव्य और श्रद्धा गुण में शक्ति तो है, परंतु आज तक सम्यग्दर्शनरूपी कार्य क्यों नहीं हुआ? आज तक निमित्त नहीं मिला था इसीलिए ना? तुम दोनों के उपदेश से अब प्रेरणा प्राप्त हो गयी है । अब हम होंगे कामयाब ।'

अब भी निमित्त को ही कार्य का नियामक यानि कार्य कब सम्पन्न होगा यह निश्चित करनेवाला कारण मानने से इसतरह की गड़बड़ी हो रही है । क्योंकि तुम्हें अभी उपादान के भेदों की जानकारी नहीं है । उसे पढ़ने के बाद तुम्हारे ख्याल में आएगा कि श्रद्धा गुण अनादि का होने पर भी कार्य कब होगा इसका नियामक उपादान भी द्रव्य में ही विद्यमान है ।

इन सब प्रकार के उपादानों की चर्चा हम भविष्य में करनेवाले ही हैं ।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

निमित्त नैमित्तिक संबंध

पत्रांक ७

११ मई २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

बेटियों, कारण-कार्य व्यवस्था में कारणों की चर्चा करते हुए हम निमित्त कारण और उपादान कारण संबंधी जानकारी प्राप्त कर रहे हैं । कारणों के संबंध में विपरीत ज्ञान अर्थात् कारणविपरीतता मिथ्याज्ञान का एक लक्षण है । अनादिकाल से अज्ञानी जीव ने एक द्रव्य के कार्य का यानि पर्याय का कर्ता अन्य द्रव्य को माना है । वस्तुव्यवस्था सम्पूर्णतया स्वतंत्र होने पर भी मान्यता और ज्ञान में विपरीतता होने से परद्रव्यों को कर्ता मानकर यह जीव रागद्वेष करता आया है और उसने संसार परिभ्रमण चालू ही रखा है ।

जिनागम का अभ्यास करने पर भी समीचीन दृष्टि बिना इस जीव ने अपनी निमित्ताधीन दृष्टि को नहीं छोड़ा । 'निमित्तरूप से तो कर्ता है ना ?' 'निमित्त कर्ता तो है ना ?' कहकर जीव अपनी मिथ्याबुद्धि का प्रदर्शन नये नये भेष में करता रहता है । आज तक जिन मान्यताओं का पोषण किया था, जिनका उपदेश औरों को दिया था वे मान्यतायें झूठी है ऐसा कबूल करने में भी बड़े ढाढ़स की जरूरत होती है । बहुत कम लोग उसे जुटा पाते हैं ।

जिसके बिना कार्य नहीं होता फिर भी जो कार्य नहीं करता वह निमित्त है । ऐसी वस्तुस्थिति होने से सामान्यतया सभी लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि निमित्त ही कार्य का कर्ता है । ज्ञानी के उपदेश से निमित्ताधीन दृष्टि छूटकर उपादान शक्ति की पहचान होती है । देखो, यहाँ भी ज्ञानी का उपदेश तो मात्र निमित्त है । उस जीव की वैसी 'पर्यायगत योग्यता' यही सच्चा कारण है । इसकी चर्चा भविष्य में हम करनेवाले ही है ।

पं. बनारसीदास कहते हैं —

'उपादान निज गुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय ।'

इसमें पर कहा है, परद्रव्य नहीं । सूक्ष्मता से देखने पर 'पर'

दो प्रकार के हैं - (१) परद्रव्य की पर्याय और (२) स्वद्रव्य के अन्य गुण की पर्याय ।

परद्रव्य की पर्यायों संबंधी उदाहरण हम पहले देख चुके हैं । अन्य गुणों की पर्यायों की भी तुम्हें जानकारी है परंतु निमित्त के कथनों के संदर्भ में हम उन्हें दुबारा समझेंगे । सामान्य गुणों की परिभाषाओं का जरा स्मरण करो । प्रत्येक परिभाषा की शुरुआत 'जिस शक्ति के निमित्त से.....' इसतरह से हमने कंठस्थ की थी ।

प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण हैं और प्रत्येक गुण अपना अपना कार्य करता है उसमें उस द्रव्य का वस्तुत्व गुण निमित्त है, सच कहो तो वस्तुत्व गुण का परिणमन निमित्त है । प्रत्येक गुण का कार्य निरंतर चलता रहता है, उसमें द्रव्यत्व गुण निमित्त है । प्रत्येक द्रव्य की - उसके सभी गुणों की सत्ता अनादि अनंत कायम रहती है उसमें उस द्रव्य का अस्तित्व गुण निमित्त है ।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है यह तो स्थूल कथन है । एक द्रव्य का एक गुण भी दूसरे गुण का कार्य नहीं करता । इतना ही नहीं प्रत्येक पर्याय भी स्वसमय में स्वयं की योग्यता से उत्पन्न होती है ।

तुम कहोगी, 'तो फिर हम निमित्तों की खोज करें या न करें? हैं उन निमित्तों को रखना या छोड़ देना?'

बेटियों, निमित्त ढूंढने से नहीं मिलते क्योंकि निमित्त नाम का कोई विशिष्ट द्रव्य नहीं है, अन्य द्रव्य की पर्याय है । तुमने उस द्रव्य को ढूंढ भी निकाला तो भी उस द्रव्य की विशिष्ट पर्याय लाना तुम्हारे हाथ में नहीं है । और यह भी तो बात है कि कार्य एक समय का होता है । एक द्रव्य के अनंत गुणों में प्रत्येक समय में स्वयं का एक एक कार्य निरंतर चलता रहता है । तो फिर कौनसे गुण के कौनसे कार्य का निमित्त तुम ढूंढोगी? एक समय का कार्य अपने क्षयोपशम ज्ञान में जाना नहीं जाता । जिसे हम कार्य कहते हैं वह तो स्थूल कथन है ।

जैसे, हम कहते हैं कि मैंने उंगली हिलायी । उंगली में अनंत पुद्गल परमाणु हैं । उनमें से प्रत्येक परमाणु की हिलने की

अर्थात् क्षेत्र क्षेत्रांतर की क्रिया उसके स्वयं के स्वतंत्र उपादान से हुयी । उसमें अंतरंग निमित्त अर्थात् नियमरूप निमित्त धर्मद्रव्य है ।

तुम कहोगी, 'जीव ने इच्छा की तभी तो उंगली हिली । देखो मैं जब चाहूँ उंगली हिला सकती हूँ ।' मुझे बताओ जिसे पॅरॅलिसिस हुआ है ऐसे व्यक्ति को उंगली हिलाने की बहुत इच्छा है तो फिर वह उंगली क्यों नहीं हिला सकता? तुम कहोगी, 'उसके शरीर की, मज्जातंतुओं की वैसी योग्यता नहीं है ।' हां, यही तो जिनागम में बताया है कि उसकी योग्यता नहीं होती तब नहीं हिलती और जब हिलती है तब वह अपनी योग्यता से ही हिलती है, जीव ने इच्छा की इसलिए नहीं हिलती ।

स्वयं परिणमन करनेवाले द्रव्य को अन्य द्रव्य के मदद की जरा भी अपेक्षा या जरूरत नहीं होती ।

किसी कंपवात (पार्किन्सोनिझम) से पीड़ित मनुष्य की उंगलियां, हाथ आदि उसके इच्छा के विरुद्ध ही हिलते हैं, वह तो उनके हिलने के कारण अत्यंत परेशान होता रहता है । इसपर से यही निष्कर्ष निकलता है कि जीव की इच्छा से शरीर की क्रिया होती भी नहीं है और रुकती भी नहीं है ।

जीव की और शरीर की अनेक क्रियाओं में निमित्त नैमित्तिक संबंध पाया जाता है । जैसे, चलना, बोलना, हंसना, भोजन करना, उपवास करना आदि । जीव ने आज तक इन सभी क्रियाओं को अपनी ही क्रिया मानी है ।

संबंध शब्द दो भिन्न बातों का सूचक है । निमित्त का अर्थ ही यह है कि जो नैमित्तिक कार्य का कर्ता नहीं है । निमित्त नैमित्तिक संबंध, ज्ञेयज्ञायक संबंध, एकक्षेत्रावगाह संबंध, संयोगसंबंध आदि भिन्नता का ज्ञान करानेवाले संबंध हैं । परंतु उससे विपरीत 'देखो यह संबंध तो है ना!' कहकर जीव ने अपनी पर में एकत्वबुद्धि और ममत्वबुद्धि पुष्ट कर दी । अनादि से पर से संबंध स्थापित करने में ही इस जीव को रस है ।

जिसतरह एक गुण की पर्याय में उसके स्वद्रव्य के अन्य गुण सहज ही निमित्त बनते हैं उसीप्रकार एक द्रव्य के कार्य में भी

अन्य द्रव्य सहज ही निमित्त बनते हैं। किसी को निमित्त बनाऊँ ऐसी इच्छा करने से कोई निमित्त बन नहीं सकता। परंतु जब कार्य होता है तब उस कार्य में विशिष्ट द्रव्य निमित्त हुआ है, ऐसे पाया जाता है। उसे दृष्टांत द्वारा समझते हैं।

मारीचि वृषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती का पुत्र अर्थात् उनका पोता था। जिसके दादा साक्षात् तीर्थकर, पिता चक्रवर्ती - क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे उस मारीचि ने स्वयं अज्ञान दशा में दिगंबर मुनिदीक्षा अंगिकार की। सर्वोत्कृष्ट सर्व निमित्त होने पर भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी नहीं, उल्टा उसने ३६३ पाखंडी मतों की स्थापना की। सम्यग्दर्शन का कार्य ही नहीं हुआ इसलिए उसे सब निमित्त मिले थे कहना भी गलत है। वही जीव अनेक भवों के पश्चात् सिंह पर्याय में आया। दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों के उपदेश से अंतर्मुख परिणामों द्वारा उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया।

उस जीव की सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता थी तो निमित्त आकाश से उतरकर आ गए। मुनियों को उपदेश देने का भाव हुआ यह उनका कार्य उनके उपादान से हुआ और सिंह के लिए वह निमित्तरूप बना। निमित्त नैमित्तिक संबंध इसतरह सहज ही होता है। प्रथमानुयोग की अनेक कथायें पढ़कर यह बात हमारे ख्याल में आती है।

दूसरा प्रश्न यह था कि निमित्तों को हटाकर विशिष्ट दुर्घटना तो टाल सकते हैं ना? इसके लिए हम हरिवंशपुराण की प्रसिद्ध घटना देखते हैं। नेमिनाथ तीर्थकर ने द्वारका नगरी बारह वर्ष बाद जलने की घोषणा की थी। उसमें निमित्तों को भी बताया था कि यादव राजकुमार मद्य पीकर द्वीपायन मुनि पर उपसर्ग करेंगे, उससे क्रोधित होकर द्वीपायन मुनि अशुभ तेजस् शरीर द्वारा द्वारका को जलायेंगे और स्वयं भस्म हो जायेंगे।

सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय पर जिनकी श्रद्धा थी उनके वैराग्य उत्पन्न होकर उन्होंने महाव्रत, किसीने अणुव्रत धारण किए, किसीने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया। जिनका सर्वज्ञ पर पूर्ण विश्वास नहीं था उन यादव राजाओं ने उस दुर्घटना को टालने के लिए राज्य में सर्वत्र दारुबंदी का कायदा जारी किया। मद्य

निर्मिति में काम आनेवाली सारी सामग्री दूर जंगल में खाईयों में फेंक दी गयी । द्वीपायन ने सोचा हम ही यहाँ से निकल जाएंगे, 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी ।'

बारह वर्ष समाप्त होने को आए । अधिक मास को गिनती में लेना भूल जाने से द्वीपायन बारह वर्ष बीत गये हैं समझकर कुतुहल से बारह वर्ष पूर्ण होने से पहले ही द्वारका की ओर चल पड़े । वन में वनक्रीड़ा करने के लिए गये हुये राजकुमारों ने वहाँ के तालाब का पानी प्राशन किया । परंतु वह तो मद्यसामग्री सड़ने से मद्य बना था । राजकुमारों को उसकी नशा चढ़ गयी । नगर की ओर आते समय द्वीपायन को देखकर यही है द्वारका जलानेवाला कहकर उन्हें पत्थर मारना शुरू कर दिया । द्वीपायन अति क्रोधित हो गए और उनके बायें बाहु में से अशुभ तेजस् शरीर बाहर निकला, द्वारका को जलाकर मूल शरीर में लौटकर द्वीपायन भी जलकर भस्म हो गए । इसे तेजस् समुद्घात कहते हैं ।

जिस घटना को टालने के लिए जो जो प्रयत्न किये गये थे वे प्रयत्न ही कालांतर से निमित्त बन गये । कहा ही है, 'तादृशी जायते बुद्धि, यादृशी भवितव्यता' । यह पढ़कर नियति या कर्म पर सारा भार मत सोंपना । शास्त्र में से कर्म का सविस्तार वर्णन और उसका जीव के साथ निमित्त नैमित्तिक संबंध इनके बारे में पढ़कर जीव कर्म पर ही सारा हवाला रख देता है । कर्म ही मुझे रागद्वेष कराते हैं, मुझे सुख दुःख देते हैं, मुझे संयोग प्राप्त करा देते हैं इसतरह कर्म में कर्तापना स्थापित करके यह जीव स्वयं को पराधीन मानकर हीनदीन बनता है ।

पं. टोडरमलजी ने कहा है कि, "यदि कर्म स्वयं कर्ता होकर उद्यम से जीव के स्वभाव का घात करे, बाह्यसामग्री को मिलावे तब तो कर्म के चेतनपना भी चाहिए और बलवानपना भी चाहिए सो तो है नहीं, सहज ही निमित्त नैमित्तिक संबंध है । जब उन कर्मों का उदयकाल हो उस काल में स्वयं ही आत्मा स्वभावरूप परिणमन नहीं करता, विभावरूप परिणमन करता है तथा जो अन्य द्रव्य हैं वे वैसे ही संबंधरूप होकर परिणमित होते हैं ।"

"जिसप्रकार सूर्य के उदय काल में चकवा-चकवियों का संयोग होता है; वहाँ रात्रि में किसी ने द्वेषबुद्धि से बलजबरी

करके अलग नहीं किए हैं, दिन में किसी ने करुणाबुद्धि से लाकर मिलायें नहीं हैं, सूर्योदय का निमित्त पाकर स्वयं ही मिलते हैं । ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बन रहा है । उस ही प्रकार कर्म का भी निमित्त नैमित्तिक भाव जानना ।”

आचार्य अमृतचंद्र प्रवचनसार की तत्त्वप्रदीपिका टीका में कहते हैं, “द्रव्य अपनी अनंतशक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण है इसलिए स्वयं ही षट्कारकरूप होकर अपना कार्य करने में समर्थ है । उसे बाह्यसामग्री या अन्य कोई भी सहाय नहीं कर सकता । इसलिए केवलज्ञान की इच्छा करनेवाले जीव को बाह्यसामग्री की अपेक्षा रखकर परतंत्र होना योग्य नहीं है ।”

बाह्यसामग्री का अर्थ है देव, शास्त्र, गुरु, कर्म, अन्य अनुकूलता आदि । ऊपर षट्कारक शब्द आया है उसकी सविस्तार चर्चा हम भविष्य में करेंगे । कारणों की चर्चा में षट्कारकों की चर्चा आवश्यक है ।

आत्मख्याति के अंत में आचार्य अमृतचंद्र लिखते हैं, “हे व्यवहारी जन हो ! इस टीका की रचना अमृतचंद्रसूरि ने की है इसतरह के मोह से मत नाचो । यह तो शब्दों की रचना शब्दों के कारण हुयी है ।”

तुम सोचोगी कि यह कहने मात्र के लिए कहते होंगे? जिसकी स्वयं की कर्तृत्वबुद्धि कायम है, उसे दूसरों के विधान अंतःकरण की गहराई से लिखे हैं इस बात का विश्वास नहीं होता । मैं तुम्हें बताना चाहती हूँ कि वस्तुस्वरूप का, तत्त्वों का ज्ञान होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर परद्रव्यों के सभी कार्य होते हुए भासित होते हैं, स्वयं की भिन्नता सदाकाल अनुभव में आती रहती है ।

जो जीव ज्ञानी का उपदेश सरल अंतःकरण से ग्रहण करता है, यह ऐसा ही है इसतरह विश्वास करता है, जिनेन्द्र भगवान की वाणी पूर्ण सत्य और कल्याणकारी है इस विश्वास के साथ उसकी श्रद्धा करता है और तदनुसार तत्त्वनिर्णय करता है वह जीव अल्पकाल में ही सम्यग्दर्शन प्राप्त करके मोक्षमार्ग पर अग्रेसर होता है । उसका मोक्ष दूर नहीं यह बताने की जरूरत नहीं है ।

तुम कहोगी, 'निमित्त कार्य में कुछ भी नहीं करता तो फिर कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के त्याग का उपदेश क्यों दिया जाता है?'

जब 'यह करो', 'वह मत करो' या 'ऐसा करना चाहिए' की भाषा होती है तब समझना कि वह उपदेश की भाषा है। चरणानुयोग में यह भाषापद्धति अपनायी जाती है। इसका मतलब ऐसा कदापि नहीं है कि चरणानुयोग में निमित्त को कर्ता माना होगा। हम जो सिद्धांत सीखते हैं उसमें जो यथार्थ वस्तुस्थिति है उसका कथन किया जाता है। तत्त्वनिर्णय इन सिद्धांतों के आधार से ही होता है। तत्त्वनिर्णय करने के लिए प्रेरणा देनेवाली उपदेशात्मक भाषा इसी प्रकार की होती है।

जिस जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया है उस जीव को सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की प्रतीति और प्रयोजनभूत सात तत्त्वों का हेय, ज्ञेय, उपादेय श्रद्धान होता ही है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से पूर्व जीव की ऐसी ही पात्रता होती है कि उसे कुदेवादिकों की श्रद्धा, आदर, विनय नहीं रहता। कौनसे कार्य के समय किस प्रकार के निमित्त होते हैं और कौनसे निमित्त नहीं होते इसका हमें ज्ञान कराया जाता है। प्राथमिक भूमिका के जीवों को उपदेशात्मक भाषा जल्दी ख्याल में आती है इसलिए कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के सेवन का त्याग करने का उपदेश दिया जाता है।

हम डॉक्टर्स पेशेंट को दवाईयां देते समय ठीक तरह से बता देते हैं कि यह दवा पेट में लेने की है - खाने के लिए है और यह जो दूसरी दवा है वह ऊपर से लगाने के लिए है। उसपर लेबल भी लगाते हैं 'For External Use Only' यानि सिर्फ बाहर से इस्तेमाल कीजिए। बाहरी इलाजवाली औषधि नहीं खाना चाहिए इतना विवेक तो रोगी को रखना ही होगा अन्यथा अनर्थ हो जाएगा। द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग की भाषा संबंधी भी यह विवेक हमें रखना होगा।

चरणानुयोग के ग्रंथ में मुनि और श्रावक के आचार संबंधी उपदेश दिया जाता है। वहाँ कुछ शरीर में एकत्वबुद्धि कराने का प्रयोजन नहीं होता। जिन जीवों को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी है, जिनकी शरीर में एकत्वबुद्धि नष्ट हुयी है उन जीवों के लिए यह उपदेश दिया जाता है। मोक्षमार्ग आत्मस्थिरता द्वारा प्राप्त

होता है और उसकी वृद्धि भी वृद्धिगत आत्मस्थिरता द्वारा ही होती है। परंतु उसके साथ साथ इन जीवों को सहज ही श्रावक और मुनियोग्य व्रत और आचरण पालन करने का भाव यानि राग आता है। ऐसा सहज ही निमित्त नैमित्तिक संबंध होता है।

निमित्त सहचर है, सूचक है, ज्ञापक है। जिस जीव के श्रावक के योग्य दो कषाय चौकडी के अभावपूर्वक वीतरागता होती है उस जीव के अणुव्रत के परिणाम होते ही हैं। जिस जीव के मुनियोग्य तीन कषाय चौकडी के अभावपूर्वक वीतरागता होती है उस जीव को २८ मूलगुण पालन करने का भाव और तदनु रूप आचरण होता ही है।

श्रावक, मुनि, भगवान का बाह्य स्वरूप देखकर हम उनकी भूमिका का अंदाजा लगा सकते हैं। बाह्य परिग्रह, वस्त्र पात्रादि सहित कोई अपने को मुनि या आचार्य मनवाते होंगे तो वे तीन काल में सच्चे मुनि नहीं है। केवल बाह्यतः नग्न वेष और आचरण है इसलिए कोई मुनियोग्य वीतरागी होगा ऐसा भी नहीं है। जो जो सच्चा मुनि होगा उसके अंतरंग में मुनियोग्य वीतरागता और बाह्यतः २८ मूलगुणों का पालन होगा ही।

देखो, यहाँ वीतरागता के साथसाथ निमित्तरूप सरागधारा और निमित्तरूप शरीर की अवस्था इनका सहज सुमेल होता है। ऐसा ही सहज निमित्त नैमित्तिक संबंध होता है।

शरीर में कहीं जखम होने पर हम मलमपट्टी-ड्रेसिंग लगाते हैं। जखम ठीक होने का कार्य तो शरीर में होता है, पट्टी में से कुछ नहीं आता। फिर भी बाहर से इन्फेक्शन न लगे, चोट न आ जाए इसलिए वह उपयोगी है। उसीप्रकार उस उस भूमिका के योग्य आचार भी होते हैं।

तुम पूछोगी, 'तुम उपदेश क्यों दे रही हो? पत्ररूप स्वाध्याय क्यों कर रही हो?' स्वामीजी का एक उत्तर मुझे हमेशा याद आता है, वे कहा करते थे, 'कौन करता है?'

शब्दों की रचना यह कार्य परमाणुओं की स्वयं की उपादान शक्ति से होता है। उसमें अनेक निमित्त हैं। तुम्हारे और अन्य के निमित्त से यह लिखा जा रहा है इसलिए तुम निमित्त हो। लिखने का राग मुझमें उत्पन्न हो रहा है वह भी सहज निमित्त है

वह मुझे पूछ पूछकर नहीं आता। मेरा योग और उपयोग इसमें जुड़ा है वह भी निमित्त है। अधिक आत्मस्थिरता के बदले यह शुभ अपराध हो रहा है इसका मुझे एहसास है। तुमसे घर गृहस्थी, बालबच्चे, गहने, कपडे इनके संबंध में चर्चा करने का विचार भी मेरे मन में नहीं आता उसका भी मुझे भान है।

कोई जिनमंदिर बांधता है, कोई शास्त्र छपाता है, कोई दान देता है और कोई प्रचार प्रसार में जुड़ जाता है और हम उनकी प्रशंसा भी करते हैं। परंतु उस समय वह कार्य करनेवालों तथा उनकी प्रशंसा करनेवालों को भी यह बात ध्यान में रखनी होगी कि यह सारी परमाणुओं की रचना परमाणुओं की अपनी योग्यता से हो रही है, मैं इन बातों का कर्ता नहीं हूँ।

निमित्तों की यह सारी चर्चा सुनकर तुम कहोगी, 'हम दान दे कि न दें? लड्डू बनावे या नहीं? कम से कम उनके खाने का आनंद तो लूट सकते हैं ना?'

देखो, अब भी भ्रांति चल ही रही है। निमित्त को मात्र निमित्तरूप से स्वीकार करना है, कर्तारूपसे नहीं। जो जो कार्य होता है उसे योग्य निमित्त भी सहज ही उपलब्ध होता है, किसी को ना हटाना है, ना ही किसी को जबरदस्ती से लाना है।

जीव की अनादिकालीन मिथ्याबुद्धि इसी तरह चलती आ रही है कि 'मैं परद्रव्य का कर्ता हूँ'। केवल इतने मात्र से उसकी भ्रांति रुकती नहीं परंतु 'मैं परद्रव्य का भोक्ता हूँ' इसतरह पर के भोक्तृत्व का अभिप्राय भी उसके साथ में विद्यमान रहता है।

हम विवक्षित कार्य के कर्ता हैं या नहीं इसे देखने के लिए मैं तुम्हें एक आसान युक्ति बता देती हूँ। गुण में जो शक्ति विद्यमान होती है उसीके प्रकट अंश को पर्याय कहते हैं, इसे ही हम कार्य कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जैसा गुण वैसा कार्य। जिस कार्य का हम स्वयं को कर्ता मान रहे हैं उसमें मेरे गुण प्रकट हुए हैं या नहीं इसका विचार करो। हमें अभिमान होता है कि मैंने कितनी अच्छी रोटी बनायी। हमारा ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, सुख इत्यादि गुणों का अंश क्या रोटी में प्रकट हुआ है? नहीं, वैसा तो कभी नहीं होता। तो फिर निश्चित समझ लो कि वह हमारा कार्य नहीं है।

जीव परद्रव्य का कर्ता मानकर रुकता नहीं, वह अपने को परद्रव्य का भोक्ता मानता है। उसने परद्रव्य को अर्थात् पुद्गल को अपना 'भोग्य' माना है। इसीलिए प्रश्न उठता है कि, 'मैं लड्डू का कर्ता नहीं परंतु भोक्ता तो हूँ ना? देखो मैं उसका स्वाद लेता हूँ, आनंद लेता हूँ, सुखी होता हूँ।' थोड़ा विचार करो कि लड्डू का कौनसा गुण जीव में प्रविष्ट हुआ? लड्डू के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, गुण क्या जीव में आ गए? क्या लड्डू में सुख गुण है कि जिसकी पर्याय जीव में हो रही है?

जीव ने लड्डू का मीठा रस अपने ज्ञान द्वारा जाना। क्या ज्ञान रसरूप परिणमित हो गया? स्पर्श, गंध, वर्ण रूप परिणमित हुआ? वैसे हो जाता तो ज्ञान के अचेतन होने का प्रसंग बन जाता। लड्डू को जानते हुए ज्ञान ज्ञानरूप से ही स्वचतुष्टय में रहता है और लड्डू यह ज्ञेय ज्ञेयरूप से अपने स्वचतुष्टय में रहता है। यदि एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य में जानेरूप परिवर्तन या कार्य नहीं होता तो समझ लो कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता या भोक्ता नहीं हो सकता।

दर्पण में अग्नि का प्रतिबिंब है वह दर्पण की अवस्था है, अग्नि दर्पण में प्रविष्ट नहीं हुआ है। दर्पण के गुण दर्पण में तथा अग्नि के गुण अग्नि में कायम हैं। ज्ञान भी ज्ञेय को जानते हुए सदाकाल ज्ञानरूप ही रहता है। वह अपनी स्वशक्ति से ज्ञेयों के गुण पर्यायों को जानता है परंतु ज्ञेयरूप नहीं होता।

अज्ञानी जीव स्वयं को ज्ञेयरूप मानता है (एकत्वबुद्धि), ज्ञेय मेरे हैं मानता है (ममत्वबुद्धि), मैं ज्ञेय का कर्ता हूँ मानता है (कर्तृत्वबुद्धि), मैं ज्ञेयों का भोक्ता हूँ मानता है (भोक्तृत्वबुद्धि)। इन विविधरूपों में वह अपना मिथ्यात्व कायम रखता है।

जीव ने स्वयं को कर्म और नोकर्म का कर्ता माना है इसका कारण है उनका निमित्त नैमित्तिक संबंध। जीव के मोह, राग, द्वेष रूपी भावों के निमित्त से कार्माण वर्गणा स्वयं कर्मरूप परिणमित होती है। यह परिणमन उनके स्वयं के उपादान से स्वकाल की योग्यता से होता है, जीव उसका रंचमात्र भी कर्ता नहीं है। जीव का रागभाव निमित्तरूप से उपस्थित है इसलिए अज्ञानी को ऐसा ही भ्रम होता है कि जीव ने कर्म बांधा है।

एक नियम अच्छी तरह से ख्याल में रखो कि जो कोई कर्ता है वह अपने भावों का ही कर्ता होता है, परभावों में - परद्रव्य के भावों में - निमित्तमात्र होने पर भी कोई भी परभावों का कर्ता या भोक्ता हो ही नहीं सकता। विभाव होने के कारण जीव को अपने राग भावों का कर्ता किसी अपेक्षा से कहा भी जा सकता है, परंतु कर्म का कर्ता वह सर्वथा नहीं है। उसी प्रकार जीव सुख, दुःख का भोक्ता है कह सकते हैं परंतु कर्म का या परवस्तु का भोक्ता वह सर्वथा नहीं है।

कर्म और शरीरादि नोकर्म जीव के एकक्षेत्र में रहते हैं। परंतु यह जीव तो अत्यंत भिन्न सजीव और निर्जीव पदार्थों का अर्थात् स्त्री, पुत्र, घर, धन, धान्य आदि का अपने को कर्ता, भोक्ता मानता है। अज्ञानी जीव ने इन पदार्थों में से सुख मिलता है ऐसी भ्रांत कल्पना कर रखी है। परंतु ये पदार्थ तो दुःख में भी निमित्त होते हुए कभी कभी दिखते हैं।

ये सारे निमित्त नैमित्तिक संबंध जानकर पर से संबंध प्रस्थापित करना अपना प्रयोजन नहीं है, अपितु भेदविज्ञान करना यही एकमेव प्रयोजन है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, चैतन्यमय है और उसकी पर्यायें - उसके कार्य अपने चैतन्यस्वभाव को नहीं छोड़ते। आत्मा निजभावों का कर्ता और भोक्ता है, परपदार्थों के भावों का कर्ता भोक्ता वह कदापि नहीं है।

इसतरह प्रत्येक कार्य उपादानरूप निजशक्ति से ही होता है तब निमित्त भी सहज ही उपस्थित रहता है इस वस्तुव्यवस्था को जानकर योग्य तत्त्वनिर्णय करने से हमें निराकुलता की प्राप्ति होती है।

मुझे आशा है कि उपादान कारणों के भेद प्रभेदों की चर्चा करने के पश्चात् तुम्हारे कारण-कार्य संबंधी अन्य प्रश्नों के भी उत्तर मिल जायेंगे। शेष आगामी पत्र में।

जय जिनेन्द्र।

तुम्हारी माँ

उपादान कारण

पत्रांक ८

२२ मई २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

बेटियों, जिनागम के आधार से हम कारण-कार्य व्यवस्था देख रहे हैं, कारणों की चर्चा कर रहे हैं । शास्त्र में कहा है, 'कारणानुविधायिनि कार्याणि' अर्थात् कारण के अनुसार कार्य होता है । जैसा कारण वैसा कार्य । एक कार्य होता है तब अनेक कारण एकत्रित होते हैं, आ मिलते हैं । उनमें से सच्चा कारण अर्थात् कार्य का कर्ता कौन है और अन्य कारण अर्थात् निमित्त - अनुकूल विशिष्ट परिस्थिति कौन है इसका निर्णय हमें करना चाहिए ।

आचार्य अमृतचंद्र आत्मख्याति टीका में कहते हैं, "जो परिणमन करता है वह कर्ता, जो परिणमन हुआ वह उसका कर्म यानि कार्य और जो क्रिया हुयी ये तीनों बातें वस्तुपने से एक ही है परंतु उनका भेद करना तो उपचार है । परंतु एक द्रव्य का कार्य अन्य द्रव्य करता है ऐसा ज्ञान मिथ्याज्ञान है । जीवद्रव्य पुद्गल का अर्थात् कर्म का या शरीर का कार्य करता है इसतरह जानना मिथ्याज्ञान है, इसीतरह मानना मिथ्यादर्शन है । दो द्रव्यों में कर्ता कर्मपने का उपचार भी नहीं संभवता ।"

कोई कहेगा कि दो द्रव्य मिलकर तो एक कार्य करते होंगे ? उपादान और निमित्त मिलकर तो कार्य होता होगा ? आचार्य कहते हैं, "दो द्रव्य मिलकर एक परिणाम-पर्याय-कार्य नहीं करते, दो द्रव्यों की मिलकर एक क्रिया नहीं होती ।"

"कोई शंका करेगा कि जीवद्रव्य राग द्वेष रूप कार्य और कर्मबंधरूप कार्य ये दोनों कार्य तो कर सकता है ना ? तो वह भी अशक्य है । जीवद्रव्य की परिणति चैतन्यमय है और पुद्गल की परिणति जड़ है, अचेतन है । जीव जीवभावरूप परिणमित होता है चाहे वह स्वभावरूप अर्थात् शुद्ध चेतनारूप परिणमन हो या विभावरूप - राग, द्वेष, मोह रूप अर्थात् अशुद्ध चेतनारूप परिणमन हो । उसीप्रकार पुद्गल द्रव्य ज्ञानावरणादि जड़ कर्मरूप परिणमित होता है ।"

आचार्य कहते हैं, “अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वरूप अंधःकार के कारण ऐसा ही मानता आ रहा है कि कर्म का कर्ता जीव है । कर्मकृत पर्याय-मनुष्य, तिर्यच, देव, नारकी इसी में ‘यह मैं हूँ’ मान रहा है । परंतु यह अज्ञान अनादि का होने पर भी घबराने की कोई जरूरत नहीं है । स्वयं के स्वरूप का-शुद्धज्ञानघनस्वरूप का भान होते ही यह जीव अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है ।”

जब तक परद्रव्य से कार्य होता है, निमित्त से कार्य होता है, निमित्त नहीं है इसलिए मेरा कार्य सम्पन्न नहीं हो रहा आदि मान्यतायें रहेगी तब तक दृष्टि और ज्ञान का उपयोग दोनों पर की तरफ ही रहेंगे, वहाँ से हटकर स्वद्रव्य की तरफ नहीं मुड़ेंगे ।

इस विश्व के अनंत द्रव्यों में प्रत्येक में स्वयं की उपादान शक्ति विद्यमान है जिसके कारण उस उस द्रव्य का कार्य - परिणमन हो रहा है, अनादि काल से होता आया है और अनंत काल तक होता रहेगा । प्रत्येक द्रव्य के अनंत गुणों का प्रत्येक का स्वयं का परिणमन स्वयं में स्वयं से चल रहा है ।

कालाणु और परमाणु जैसे अतिसूक्ष्म द्रव्य हो या अनंतप्रदेशी आकाश द्रव्य हो , प्रत्येक द्रव्य स्वयं में स्वयंपूर्ण है, परिपूर्ण है । उसे कायम टिकने के लिए या प्रतिसमय परिणमन करने के लिए परद्रव्य की रंचमात्र अपेक्षा नहीं है, आवश्यकता नहीं है । प्रत्येक द्रव्य निजशक्ति से भरपूर है । प्रत्येक द्रव्य में ऐसी अनंत प्रभुता है, ऐसा अनंत ऐश्वर्य है । प्रत्येक द्रव्य ईश्वर है । यही चराचर की ईश्वरता है । कोई एक ईश्वर पूरे विश्व में व्यापनेवाला हो और सबका कर्ता धर्ता हो यह मान्यता अज्ञान का द्योतक है ।

अज्ञानी जगत ने पर का कार्य करनेवाला, पर को उत्पन्न करनेवाला, नाश करनेवाला, रक्षा करनेवाला वह ईश्वर है इसतरह की झूठी कल्पना कर रखी है । ऐसा कोई ईश्वर ही अस्तित्व में नहीं है, ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं है जो दूसरे का कार्य कर सके, दूसरे का भलाबुरा कर सके, दूसरे की मदद करे, दूसरे का नाश कर दे । इसलिए यह सोचना भी गलत है कि हमारे वीतरागी भगवान तो किसी का कुछ नहीं करते परंतु अन्यमती के भगवान तो कुछ कर दे ।

प्रत्येक द्रव्य का परिणमन - कार्य - पर्याय उस द्रव्य के निजशक्ति से ही होता है, उस शक्ति को उपादान कारण कहते हैं। हमें कार्य तो दिखायी देता है, निमित्त भी ख्याल में आते हैं परंतु उपादान शक्ति का पता ही नहीं था। वह अव्यक्त है। इसकारण वह है ही नहीं मानना गलत होगा।

तुमने विज्ञान की प्रयोगशाला में सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा अनेक बार परीक्षण किया है। आँखों को तो कांच पर फैलाया हुआ एक खून का बिंदु मात्र दिखता है परंतु उसी को सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर उसमें सफेद पेशी, लाल पेशी, उनके अनेक भेद आदि अनेक बातें दिखायी देती हैं। उसीप्रकार वस्तुस्वरूप का ज्ञान अपनी सामान्य नजर में - ज्ञान में नहीं आता उसके लिए केवलज्ञानी ने अपने केवलज्ञान द्वारा जानकर जो कथन किया है उस आगम का अभ्यास आवश्यक है। हमें आगमचक्षु द्वारा सब स्पष्ट दिखने लगता है।

प्रवचनसार ग्रंथ में कहा है कि सर्व प्राणि इंद्रिय चक्षुवाले हैं, देव अवधिचक्षुवाले हैं अर्थात् अवधिज्ञान द्वारा जाननेवाले हैं, साधु आगमचक्षुवाले हैं अर्थात् आगम द्वारा सब जानते हैं और केवली भगवान सर्वतःचक्षुवाले हैं अर्थात् सर्व आत्मप्रदेशों द्वारा जाननेवाले हैं - केवलज्ञान द्वारा जाननेवाले हैं - सर्वज्ञ हैं।

प्रयोगशाला में हम कभी नहीं कहते कि मेरी आँखों से दिखाई देगा उसे ही हम मानेंगे। उल्टा सूक्ष्मदर्शित्र से निरीक्षण करके अपनी ज्ञान की सीमायें बढ़ाने में, अपना ज्ञान विकसित करने में हमें उत्साह लगता है।

उसीप्रकार आगम द्वारा विश्व, छह द्रव्य, प्रयोजनभूत सात तत्त्व आदि का स्वरूप, कारण-कार्य व्यवस्था आदि अनेक बातें जानकर हमें सच्चे वस्तुस्वरूप का ज्ञान होता है, अपना स्वयं का स्वरूप स्पष्टतया ख्याल में आता है। स्वयं के स्वरूप संबंधी और उसका अनुभव करने के मार्ग संबंधी निःशंकता होगी तो ही स्वस्वरूप में एकाग्रता, रमणता, लीनता द्वारा हम शुद्धात्मानुभूति कर सकते हैं-सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर सकते हैं।

आगम का अर्थ आगमानुकूल ही करना चाहिए। 'मुझे ऐसा लगता है' कहकर अपनी बुद्धि के नाप से नापना ठीक नहीं है, उससे काम नहीं चलेगा। गणित की पुस्तक में से गणित के प्रश्न

सुलझाने पर अंतिम पृष्ठ पर लिखे हुए उनके उत्तरों के साथ मिलान करके हम अपना उत्तर ठीक है या नहीं देखते हैं। अपना उत्तर यदि ठीक न हो तो बारबार गणित सुलझाते हैं, नहीं आता हो तो गुरुजनों को-शिक्षकों को अथवा सहाध्यायीयों को पूछते हैं।

उसीप्रकार आगम के सिद्धांत जैसे बताए हैं वैसे ही जानना पड़ेगा। हमें उसका अर्थ समझ में नहीं आता हो, बुद्धि की कसौटि पर उसका स्वीकार नहीं होता हो तो ज्ञानी गुरुजन या अन्य स्वाध्यायी जीवों को उसका अर्थ पूछना पड़ेगा। आगमानुसार निर्णय होने तक उसपर बारंबार विचार करना होगा।

जब कोई घटना घटती है तब हम उसके कारणों की पूछताछ करते हैं वह भी निमित्तों की, केवल बहिरंग निमित्तों की। क्योंकि हम उपादान कारण को नहीं जानते और अंतरंग निमित्त कारण - कर्मों की उदयादि अवस्थाएँ हमारे ज्ञान में नहीं आती। किसी व्यक्ति के मरण की वार्ता जब हम सुनते हैं तब पहला प्रश्न पूछते हैं, 'क्या हुआ, कैसे मरा?' उत्तर आता है, 'बीमार था या अॅक्सिडेंट में मरा'। पश्चात् 'कौनसी बीमारी? कौनसे डॉक्टर के पास ले गए थे? किस हॉस्पिटल में रखा था? कौनसी दवाईयां दी थी?' आदि अथवा अॅक्सिडेंट से मरा हो तो, 'अॅक्सिडेंट कैसे हुआ? गाड़ी कौन चला रहा था? कहीं टक्कर खायी क्या?' इसतरह प्रश्नोत्तर माला चालू हो जाती है। लौकिक व्यवहार ऐसा ही चलता है, परंतु देखो उसमें कितनी आकुलता छिपी हुई है।

'उस डॉक्टर के पास तुम्हें नहीं जाना चाहिए था उसने ठीक जांच नहीं की, विशिष्ट औषधि क्यों न दी? समय पर उपचार न करने से ऐसा हो गया' इत्यादि उपदेशामृत भी पिलाते हैं जिससे आकुलता और भी बढ़ती है। परंतु इसका सच्चा कारण समझने पर आकुलता कम हो जाती है, दुःख के प्रसंग में भी दुःख की तीव्रता कम होती है, मानसिक संतुलन नहीं बिगड़ता।

जीव स्वयं की योग्यता से विशिष्ट पर्याय में रहता है और स्वयं की योग्यता से ही उसकी पर्याय पलटती है जैसे मनुष्य पर्याय पलटकर देवपर्याय होती है। यह उस जीव की उपादान गत योग्यता है। जब आयुकर्म खिर कर समाप्त होता है तो दूसरे ही समय में नवीन आयुकर्म का उदय प्रारंभ होता है। आयुकर्म

तो पूर्वभव में ही बंधता है और प्राप्त आयु में यानि भुज्यमान आयु में वध घट या बदलाव नहीं होता ।

निमित्त की भाषा में बोलना हो तो जब तक आयुकर्म का उदय है तब तक मरण नहीं हो सकता और भुज्यमान आयुकर्म खत्म होने पर जीव इस भव में एक समय मात्र भी अधिक रुक नहीं सकता । समयसार में कहा है, “हे जीव, तू दूसरे को आयु दे नहीं सकता या किसी की आयु हरा ले नहीं सकता तो फिर मैं दूसरों को बचाता हूँ या मारता हूँ यह बुद्धि कहाँ तक ठीक है ?”

उपादान संबंधी चर्चा सुनते समय लोगों के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि, ‘उपादान तो सदा से उपस्थित ही था परंतु देखो तो जब निमित्त मिला तभी तो कार्य हुआ ना? मूँग, मटकी डिब्बे में थी तब तक कुछ नहीं हुआ, पानी में भिगोने से ही उसमें अंकुर फूट गये, है ना? जीव में श्रद्धा गुण तो अनादि का है, परंतु मोक्षमार्ग का उपदेश मिल गया, देशनालब्धि प्राप्त हुयी तभी तो जीव इस मार्ग पर चला ना? सम्यग्दर्शन प्राप्त किया ना?’

उपादान और उसके भेद-प्रभेद के बारे में अनभिज्ञ होने से ये भ्रांतियां खड़ी हो जाती हैं । इसलिए हम उपादान के भिन्न भिन्न प्रकार, उनके नाम तथा स्वरूप समझेंगे ।

उपादान दो प्रकार के हैं (१) त्रिकाली उपादान और (२) क्षणिक उपादान । जो द्रव्य अथवा गुण स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है उस द्रव्य या गुण को उस कार्य का ‘त्रिकाली उपादान’ कहते हैं । विशिष्ट पर्यायरूप परिणमन करने की शक्ति उस द्रव्य में त्रिकाल विद्यमान रहती है । उसी के साथ साथ ‘क्षणिक उपादान कारण’ भी विद्यमान रहता है जिससे यह निश्चित होता है कि कार्य कब होगा और कौनसा होगा, इसी को कार्य का नियामक कहते हैं ।

क्षणिक अर्थात् क्षणवर्ती - एक समय के लिए जो है । इसके भी दो भेद हैं ।

(१) अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय

(२) उस समय की पर्याय की योग्यता

जब कार्य होता है उससमय पूर्व पर्याय का व्यय होता है और कार्य यानि विवक्षित पर्याय उत्पन्न होती है । मान लो १०१,

१०२, १०३.....१०९, ११० नंबर की पर्यायें हो रही हैं। ११० वी पर्याय को हम विशिष्ट कार्य मानते हैं। उसमें त्रिकाली उपादान तो उस द्रव्य का वह गुण है और क्षणिक उपादान दो प्रकार के हैं। (१) १०९ वी पर्याय का व्यय कारण और ११० वी पर्याय का उत्पाद कार्य - इसी को 'अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप क्षणिक उपादान कारण' कहा है। परंतु पर्याय में से पर्याय उत्पन्न नहीं होती। जो स्वयं व्ययरूप हो गयी उस अभाव में से भाव की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? पर्याय तो द्रव्य में से उत्पन्न होती है। कार्तिकियानुप्रेक्षा में कहा है कि अनंतरपूर्व परिणाम से युक्त द्रव्य कारण है और अनंतर उत्तर परिणाम से युक्त वही द्रव्य कार्य है।

अनंतरपूर्व का अर्थ है पूर्व पर्याय। समयमात्र का भी अंतर छोड़े बिना जो पूर्व समय की पर्याय है उसे अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय कहते हैं।

(२) कार्य हुआ वह उस विशिष्ट पर्याय की स्वयं की योग्यता से हुआ उसे 'तत्समय की पर्याय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान कारण' कहते हैं।

११० वी पर्याय १०९ वी पर्यायपूर्वक हुयी, १०९ वी पर्याय १०८ वी पर्यायपूर्वक हुयी, १०८ वी पर्याय १०७ वी पर्यायपूर्वक हुयी। विवक्षित पर्याय विवक्षित समय में उसकी स्वयं की योग्यता से होती ही है परंतु विवक्षित पूर्व पर्याय का व्यय होकर ही होती है। इसका तात्पर्य है कि पूर्व पर्याय भी निश्चित है, उससे पूर्ववाली पर्याय भी निश्चित है। अर्थात् एक एक पर्याय का व्यय और उत्पाद होते होते पर्यायों की मालिका - पर्यायों का सिलसिला होकर - विवक्षित क्रम होकर ही विवक्षित समय में विवक्षित कार्य होता है। इसे 'विधि' कहते हैं, प्रक्रिया कहते हैं। विवक्षित विधि से यानि प्रक्रिया से ही कार्य की उत्पत्ति होती है। इसे ही पुरुषार्थ कहते हैं।

११० वी पर्याय विवक्षित समय में उत्पन्न हुयी इतना ही नहीं अपितु विवक्षित विधिपूर्वक हुयी है। उसके पूर्व की पर्यायों की अखंड मालिका उसमें कारण है। सम्यग्दर्शन विवक्षित समय में उत्पन्न होता है परंतु उसके पूर्व में परिणामों की - पर्यायों की निश्चित मालिका होती है। सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती

है उसके पूर्व बढ़ते हुए विशुद्ध परिणामों को करणलब्धि या करण परिणाम कहते हैं। करणलब्धिपूर्वक ही सम्यक्त्व होता है। इसमें भी तीन करण हैं - अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। इनका भी यही क्रम निश्चित है।

करणलब्धि प्राप्त करनेवाले जीव को उससे पहले अन्य चार लब्धि होती ही हैं। उनका क्रम इसप्रकार है - (१) क्षयोपशम लब्धि (२) विशुद्धिलब्धि (३) देशनालब्धि (४) प्रायोग्यलब्धि इनके पश्चात् ही करणलब्धि होती है। एकांत नियतवाद माननेवाले अज्ञानी जीव इन पर्यायों को और उनके क्रम को देखते नहीं और मात्र काल की बात करते हैं कि हमें सम्यक्त्व जब होना है तब होगा।

क्षणिक उपादान कारण में दोनों कारणों का समावेश है। अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय का व्यय और उस समय वह पर्याय उत्पन्न होने की योग्यता ये तो कारण हैं और जो पर्याय उत्पन्न हुयी वह कार्य है। फिर से ध्यान देना, यहाँ योग्यता को कारण और पर्याय को कार्य कहा जा रहा है।

प्रत्येक पर्याय में अपने विवक्षित समय में उत्पन्न होने की योग्यता होती है। उसे किसी ने निर्माण नहीं किया या बाह्य परिस्थिति के अनुसार वह योग्यता बदलती नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में जो अनादिअनंत पर्यायों का प्रवाह है उसमें प्रत्येक पर्याय अपने स्वसमय में स्वयं की योग्यता से उत्पन्न होती है। प्रवचनसार ग्रंथ में इसे पर्यायों का जन्मक्षण कहा है। इसीलिए क्षणिक उपादान कारण को 'समर्थ उपादान कारण' कहते हैं। त्रिकाली उपादान तो सदा ही विद्यमान रहता है। उसे यदि समर्थ उपादान कारण मानेंगे तो विवक्षित कार्य निरंतर उत्पन्न होना चाहिए, परंतु ऐसा कभी नहीं होता। समर्थ उपादान कारण की परिभाषा हम इसतरह कर सकते हैं, - 'जिसके बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती और जिसके होने पर नियम से कार्य की उत्पत्ति होती है उसे समर्थ उपादान कारण कहते हैं।'

समर्थ उपादान निश्चित ही कार्य का जनक है। समर्थ उपादान से वही कार्य होगा कि जिस कार्य का वह उपादान है। उस विवक्षित समय में जो निमित्त उपस्थित रहता है उसमें कार्य करने की शक्ति ही नहीं होती परंतु उपादानानुसार होनेवाले कार्य

का सूचक होने से उसे निमित्त कहते हैं ।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि त्रिकाली उपादान कार्य का नियामक कारण नहीं है परंतु क्षणिक उपादान ही कार्य का नियामक कारण है । इसी नियामक कारण से विवक्षित कार्य निश्चित रूप से उत्पन्न होता है । 'ऐसा है तो फिर त्रिकाली उपादान कहने की जरूरत ही क्या है?' ऐसा सवाल उठता है ।

उपादान निजशक्ति है । यह शक्ति दो प्रकार की है - द्रव्यशक्ति और पर्यायशक्ति । द्रव्यशक्ति बताती है कि यह कार्य कौनसे विवक्षित द्रव्य में होगा । श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, सुख आदि गुणों की पर्यायें (कार्य) जीव द्रव्य में ही होती हैं, अन्य द्रव्य में नहीं । इसलिए इन कार्यों का त्रिकाली उपादान जीवद्रव्य है, इसी को द्रव्यशक्ति कहते हैं ।

पर्यायशक्ति बताती है कि विवक्षित कार्य विवक्षित समय में होगा । यह काल की नियामक है । यह पर्यायशक्ति अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय का व्यय और तत्समय की पर्याय की योग्यता रूप है । उन दोनों को मिलाकर क्षणिक उपादान कहते हैं और वह कार्य का नियामक है ।

त्रिकाली उपादान और क्षणिक उपादान इन दोनों कारणों को एकसाथ बताना हो तो 'पर्यायशक्ति से युक्त द्रव्यशक्ति' कहना पड़ेगा । निमित्त को भी इसके साथ बताना हो तो, 'सहकारी कारण (निमित्त) सापेक्ष विशिष्ट पर्यायशक्ति से युक्त द्रव्यशक्ति' कहना होगा । इसमें सभी कारणों का समावेश होता है ।

तत्त्वार्थराजवार्तिक आदि ग्रंथों में इसपर विस्तृत चर्चा की हुयी है । अपना मिट्टी के घड़ेवाला दृष्टांत दुबारा देखते हैं । उसमें मिट्टी त्रिकाली उपादान है, घड़ेरूप परिणमन करने के सम्मुख मिट्टी क्षणिक उपादान है और दण्ड, चक्र, कुम्हार के प्रयत्न आदि निमित्त हैं । विशिष्ट प्रकार की मिट्टी ही घड़ेरूप होती है, रेतवाली मिट्टी नहीं हो सकती इसलिए मिट्टी उपादान है और दण्डादि निमित्त हैं; यह हुयी त्रिकाली उपादान की बात । अब क्षणिक उपादान कौन है देखते हैं । मिट्टी की कीचड़, पिंड आदि पर्यायें घड़े की क्षणिक उपादान नहीं हैं परंतु अनंतर समय में - दूसरे ही समय में घड़ा रूप परिणमित होनेवाली मिट्टी ही

क्षणिक उपादान है । और जब यह परिणमन हो रहा है मात्र उसी काल में दण्ड, चक्र, कुम्हार आदि को निमित्तपना से स्वीकारा गया है, अन्य काल में उन्हें निमित्त भी नहीं कहा जा सकता ।

कोई मानेगा कि उपादान से ही कार्य होता है, निमित्त की आवश्यकता ही नहीं है, तो वह गलत होगा ।

जब जब विशिष्ट कार्य होते समय विशिष्ट पर्यायशक्ति से युक्त द्रव्यशक्ति पायी जाती है, तब तब उस कार्य में अनुकूल निमित्त मिलते ही हैं ऐसा नियम है । ऐसा कभी नहीं होता कि निश्चय उपादान तैयार हो और निमित्त ही न मिले ।

इसतरह हमने देखा है कि त्रिकाली उपादान स्वभाव का नियामक है । कौनसे द्रव्य में और कौनसे गुण में यह कार्य होगा इसे निश्चित करनेवाला यह कारण है । अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय युक्त द्रव्यरूप क्षणिक उपादान कारण विधि का अर्थात् प्रक्रियाका-पुरुषार्थ का नियामक है । तत्समय की पर्याय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान काल का अर्थात् पर्याय का-कार्य का नियामक है ।

कार्य उपादान से होता है तब निमित्त की सहज उपस्थिति होती है । निमित्तों को दूढ़ना नहीं पड़ता । निमित्त कैसे और कहाँ से मिलेगा इस चिन्ता से व्यग्र होने की जरूरत नहीं है । निमित्तानुसार कार्य नहीं होता परंतु कार्य होता है उसके अनुसार निमित्त संज्ञा दी जाती है ।

कार्य एक समय का होता है और उसमें निमित्तरूप होती है परद्रव्य की पर्याय जो स्वयं एक समय की होती है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि निमित्त नैमित्तिक संबंध दो द्रव्यों की विशिष्ट पर्यायों में होता है और वह भी एक समय मात्र का होता है ।

एक ही विशिष्ट घटना या पर्याय अन्य अन्य जीवों को अन्य अन्य कार्यों में निमित्त हो सकती है । मृत स्त्री को देखकर किसी के वैराग्य उत्पन्न होगा तो किसी कामी पुरुष के कामभाव जाग्रत होगा । निमित्तानुसार कार्य होता होगा, तो प्रत्येक को समान भाव उत्पन्न होने चाहिए परंतु ऐसा तो कभी नहीं होता ।

पं. टोडरमलजी कहते हैं कि परद्रव्य अपने भाव बिगाड़ते नहीं हैं । अपने भाव बिगाड़ते हैं तब वे तो केवल बाह्य निमित्त हैं । इसतरह परद्रव्यों पर दोष लगाना मिथ्याभाव है ।

निमित्त जबरदस्ती से उपादान में कुछ नहीं करता और उपादान भी निमित्तों को जबरदस्ती से जुटाता या हटाता नहीं है। दोनों का सहज ही संबंध पाया जाता है।

जीव के स्वभावभाव में तो परद्रव्य का कुछ कर्तृत्व है ही नहीं, उसके विभावभाव में भी पर के कर्तृत्व का निषेध किया है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र हमें सम्यक्त्व प्रदान नहीं करते। फिर भी उनकी श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं। क्योंकि सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का स्वरूप पहचाने बिना, उनके बताये हुए वस्तुस्वरूप का निर्णय किए बिना मोक्षमार्ग की पहचान और प्रारंभ नहीं हो सकता।

जिसे आत्मा की रुचि है वह ज्ञानी सत्पुरुष को सहज खोज लेता है, उसके उपदेश द्वारा वह ज्ञानी है ऐसी पहचान भी उसे हो जाती है। यहीं पर मुझे सच्चा मार्ग मिलेगा इसका उसे पक्का विश्वास होता है। परंतु ज्ञानी व्यक्ति मिलती नहीं इसलिए व्यस्त होने की - आकुलित होने की जरूरत नहीं है। स्वयं की पात्रता बढ़ती है तब उसे ज्ञानी के ज्ञानीपने की पहचान हो जाती है। पहले से ही उस व्यक्ति के परिचय में भी आया हो परंतु वह ज्ञानी है इस बात की पहचान उसे अपनी पात्रतासे होती है।

‘निमित्तोपादान’ पुस्तक में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल लिखते हैं, “जब संसार सागर का किनारा निकट आता है तब सहज ही आत्मा की रुचि जागृत होती है। आत्मरुचि भगवान आत्मा और आत्मज्ञ सत्पुरुष की शोध की ओर पुरुषार्थ को प्रेरित करती है। सत्पुरुष के समागम से आत्मरुचि को अभूतपूर्व बल प्राप्त होता है; अध्ययन, मनन, चिंतन की प्रक्रिया पर से विमुख हो स्वोन्मुख हो जाती है। रुचि की तीव्रता और पुरुषार्थ की प्रबलता दृष्टि को स्वभावसन्मुख तो करती ही है, ज्ञान और ध्यान पर्याय को भी आत्मोन्मुख करती है और यह निमित्त-उपादान का सहज सुमेल देशनालब्धि से करणलब्धि की ओर ढलता हुआ सम्यग्दर्शन पर्याय प्राप्त करने की सशक्त भूमिका तैयार कर देता है।”

निमित्त उपादान का यह सहज सुमेल होने पर भी दो भिन्न द्रव्य स्वयं में परिणमन करते हैं। जीव का राग, द्वेष, मोह निमित्त और पुद्गल का कर्मबंध यह कार्य इनमें जीव की पर्याय के स्वयं

के षट्कारक स्वतंत्र हैं और पुद्गल के कर्मरूप पर्याय के अपने षट्कारक स्वतंत्र हैं ।

ये नये नाम सुनकर डरो मत । मुझे पता है कि उपादान के भेद-प्रभेदों के अनेक नाम और उनकी चर्चा सुनकर तुम्हें थोड़ी उलझन हुयी होगी । इसलिए षट्कारकों की चर्चा अब हम आगामी पत्र में करेंगे ।

निमित्त उपादान की चर्चा जो हम करते आये हैं और उसे मिट्टी और घड़े के उदाहरण द्वारा समझा है उसीप्रकार रोटी बनी, सोने का हार बना, दिव्यध्वनि खिरी इन कार्यों पर उपादान के सर्व भेद-प्रभेद तथा निमित्त लगाकर देखना । हमें यह विषय पं. कैलाशचंदजी बुलंदशहरवालों ने सन १९७६ में पढ़ाया था । वे तो हमें गृहकार्य देते थे । दिन में तीन बार उनका क्लास, मेरा दवाखाना, घर के सारे कामकाज, २५-३० लोगों की रसोई आदि, तुम बच्चों की देखभाल-पढ़ाई इनमें से फुरसत निकालकर गृहपाठ लिखने में रात के दो बज जाते थे । एक दो दिन की बात नहीं थी, लगातार ढ़ाई तीन महिने तक हम इसी पद्धति से पढ़ते थे । तुम्हारे दादा-दादी, सभी चाचा-चाची, फूफी-फूफाजी, मैं और तुम्हारे पिताजी सारे लोग बड़े उत्साह के साथ जाते थे, पढ़ते थे । तुम भी जितने उत्साह के साथ पढ़ोगी, उतना मेरा भी पढ़ाने में उत्साह बढ़ेगा ।

‘निमित्तोपादान’ पुस्तक के आधार से मैंने रोज डेढ़ घण्टे क्लास चलाया था । उनके ९० मिनटों के बारह कॅसेट्स के सेट्स तुम दोनों के लिए भेज रही हूँ । उसे ध्यान से सुनना । उसमें अधिक विस्तार से और बारबार समझाया है इसकारण यह विषय अच्छी तरह से आत्मसात होगा । तत्त्वनिर्णय करने की दृष्टि से यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

मुझे विश्वास है कि निमित्त उपादान का स्वरूप ठीक तरह से ख्याल में आने पर आगे चलकर पांच समवाय, षट्कारक आदि की चर्चा आसानी से तुम्हारी समझ में आएगी ।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

षट्कारक

पत्रांक ९

२ जून २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

कारण-कार्य व्यवस्था की चर्चा करते हुए हमने निमित्त और उपादान कारणों की सविस्तार जानकारी देखी । हमें कार्य तो होते हुए दिखायी देते हैं, परंतु उन कार्यों के कारण कौन हैं, उनके 'कारक' कौन हैं इनका ज्ञान न होने से कोई ईश्वर को, कोई नियति को, कोई निमित्तों को कारण मानकर इस पराधीनता की कल्पना के कारण परपदार्थों को जुटाने और हटाने में व्यस्त रहता है, राग द्वेषों की शृंखला कायम रखकर संसार चक्र को घुमाता रहता है, दिनरात इसी में कार्यरत है ।

अब तक हमने कार्य के कारण इसप्रकार देखे हैं ।

(१) निमित्त कारण

(२) त्रिकाली उपादान कारण

(३) अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्यायरूप क्षणिक उपादान कारण

(४) तत्समय की पर्याय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान कारण ।

इन चार कारणों को कारक भी कहा जाता है ।

जिनागम में कथन दो प्रकार से किया जाता है -

(१) औपचारिक कथन और (२) वस्तुस्थिति का यथार्थ कथन ।

औपचारिक कथन तो कथन मात्र होता है, वस्तुस्थिति वैसी नहीं होती । इसे ही व्यवहार कथन कहते हैं ।

दूसरा यथार्थ कथन है उसे निश्चय कथन कहते हैं ।

अथवा जिसे मुख्य करना हो उसे निश्चय और जिसे गौण करना हो उसे व्यवहार कहते हैं । कारकों की चर्चा में निश्चय व्यवहार की चर्चा पढ़कर झुंझला मत जाना । उसका आवश्यक है उतना ही उल्लेख करके हम अपना विषय आगे बढ़ाएंगे ।

मोक्षमार्ग प्रकाशक में कहा है, 'मुख्य सो निश्चय, गौण सो व्यवहार' । हम जब पढ़ते हैं कि निमित्त से कार्य होता है तब उसे

उपचार कथन, व्यवहार कथन समझना, उसकी तुलना में कारण नंबर २ त्रिकाली उपादान कारण कार्य का कर्ता है यह कथन निश्चय कथन है ।

जब कारण नं.२ और कारण नं.३ की तुलना करते हैं तब त्रिकाली उपादान को कर्ता कहना व्यवहार कथन होगा और अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्यायरूप क्षणिक उपादान को कर्ता कहना निश्चय कथन होगा ।

इसके आगे की बात तुम्हारे विचक्षण बुद्धि ने पकड़ ही ली होगी कि जब हम कारण नं ३ और कारण नं ४ की तुलना करेंगे तब अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्यायरूप क्षणिक उपादान को कर्ता कहना व्यवहार कथन होगा और तत्समय की पर्याय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान को कर्ता कहना निश्चय कथन होगा ।

इससे एक बात ख्याल में आयेगी कि सर्वप्रथम निमित्त का ज्ञान कराने के लिए निमित्त को कारण कहा जाता है । परंतु निमित्ताधीन दृष्टि छुड़ाने के लिए और परद्रव्यों से भिन्नता दर्शाने के लिए त्रिकाली उपादान से कार्य होता है इसतरह कथन किया जाता है । परंतु कार्य कौनसा, कब और किसप्रकार सम्पन्न होगा यह बताने के लिए उसमें विधि अर्थात् पुरुषार्थ और तत्समय की पर्याय की योग्यता ये कारण बताकर कारण संबंधी अपना अज्ञान दूर किया जाता है ।

पूर्व पर्याय का व्यय और तत्समय की (वर्तमान समय की) पर्याय की योग्यता ये दो क्षणिक उपादान कारण तो वर्तमान एक समय में हैं । इसलिए भूतकालीन और भविष्यकालीन पर्यायों से अपनी दृष्टि हटती है और कार्य का सच्चा कर्ता तत्समय की योग्यता ही है यह बात ख्याल में आती है ।

ये जो चार कारण हमने देखे उन्हें कर्ताकारक भी कहते हैं । तुम्हारे प्रश्न का मुझे अंदाजा है । तुम कहोगी, 'यदि ये कर्ताकारक हैं तो क्या अन्य और भी कारक हैं? यदि हैं तो कौनसे हैं ? कारकों की परिभाषा भी समझाओगी तो अच्छा रहेगा ।'

हमें पता ही है कि कार्य अर्थात् पर्याय, परिणाम, दशा,

हालत, अवस्था, कर्म, परिणति, क्रिया समानार्थी शब्द हैं। क्रिया का यानि कार्य का जो जनक है, कार्य उत्पन्न करनेवाला है उसे कारक कहते हैं। किसी ना किसी रूप में जो कार्य के प्रति प्रयोजक होता है उसी को हम कारक कह सकते हैं, अन्य को नहीं।

देखो, किसी भी कार्य के बारे में छह प्रश्न उठ सकते हैं, उनके उत्तर में ही ये छह कारक पाये जाते हैं।

१. कार्य किसने किया? कर्ता।
२. क्या किया? कर्म।
३. किस साधन द्वारा किया? करण।
४. किसके लिए किया? सम्प्रदान।
५. किसमें से किया? अपादान।
६. किसके आधार से किया? अधिकरण।

तुम्हारे ख्याल में आया ही होगा कि 'कारक' छह हैं - (१) कर्ता (२) कर्म (३) करण (४) सम्प्रदान (५) अपादान और (६) अधिकरण।

तुमने स्कूल में व्याकरण पढ़ा था तब प्रथमा, द्वितीया....कर्ता, कर्म, करण आदि विभक्ति और उनके प्रत्यय कंठस्थ किए थे, याद है? यहाँ पहले पांच कारक तो क्रम से पांच विभक्ति हैं और छठवाँ कारक सप्तमी विभक्ति समान है। षष्ठी विभक्ति संबंध सूचक है उसमें कार्य के प्रति कुछ प्रयोजन नहीं है और अंतिम संबोधन में तो हे राम! हे सीते! ऐसा मात्र संबोधन ही होता है। वह भी कार्य का सूचक नहीं है। इसलिए इन दोनों को कारकों में नहीं लिया है।

अब प्रत्येक कारक की परिभाषा देखते हैं।

(१) **कर्ताकारक** - जो स्वाधीनपने से स्वयं के परिणाम को करता है वह कर्ता है।

(२) **कर्मकारक** - कर्ता जिस परिणाम को प्राप्त करता है वह परिणाम उसका कर्म अर्थात् कार्य है।

(३) **करणकारक** - उस परिणाम के उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं।

(४) **सम्प्रदानकारक** - कार्य जिसे देने में आता है अर्थात् जिसके लिए वह कार्य किया गया हो उसे सम्प्रदान कहते हैं ।

(५) **अपादानकारक** - जिसमें से कार्य करने में आता है उस ध्रुव वस्तु को अपादान कहते हैं ।

(६) **अधिकरणकारक** - जिसमें या जिसके आधार से कार्य करने में आता है उसे अधिकरण कहते हैं ।

प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय में छह कारक एकसाथ रहते हैं । जीव और पुद्गल द्रव्य शुद्धपर्यायरूप से या अशुद्ध (विभाव) पर्यायरूप से परिणमित होते हैं तब स्वयं ही छह कारकरूप होकर परिणमन करते हैं, उन्हें अन्य कारकों की अर्थात् निमित्त कारणों की अपेक्षा नहीं होती । पंचास्तिकाय गाथा ६२ की टीका में यह कथन है ।

जब निमित्तों का ज्ञान कराने के लिए भिन्न द्रव्यों को अर्थात् निमित्तों को कारक कहा जाता है तब निश्चितरूप से समझना कि वे व्यवहार कारक हैं । उदाहरण के लिए देखते हैं -

कुम्हार कर्ता है, घड़ा कर्म है, चक्र, दण्ड, दोरी करण हैं, पानी भरनेवाले के लिए घड़ा बनाया इसलिए पानी भरनेवाला सम्प्रदान है, टोकरी में से मिट्टी निकालकर घड़ा बनाया इसलिए टोकरी अपादान है, जमीन के आधार से घड़ा बनाया इसलिए जमीन अधिकरण है ।

और दूसरा उदाहरण देखो । मैं बुंदी के लड्डू बना रही थी - मैं कर्ता, रोहित ने पूछा 'नानीजी क्या बना रही हो?' 'लड्डू', लड्डू कर्म हुआ । अगला प्रश्न 'किससे बना रही हो?' 'झारे से', झारा हो गया करण । 'नानीजी, किसके लिए बना रही हो?' 'तेरे लिए, रिया के लिए, रोहन के लिए, सोहम् के लिए' - ये सारे नाती हो गये सम्प्रदान । 'किसमें से बना रही हो?' 'डब्बे में से बेसन निकालकर बना रही हूँ' । डब्बा हो गया अपादान । 'किस में बना रही हो?' 'थाली में बना रही हूँ,' थाली हुयी अधिकरण ।

यहाँ प्रत्येक कारक भिन्न भिन्न है इसलिए इन्हें भिन्नकारक भी कहते हैं । अन्य कर्ता, अन्य कर्म, अन्य करण, अन्य

सम्प्रदान, अन्य अपादान और अन्य अधिकरण होने से ये व्यवहार कारक हैं ।

प्रवचनसार गाथा १६ के भावार्थ में कहा है कि वस्तुस्थिति देखने पर अर्थात् परमार्थ दृष्टि से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता हर्ता हो ही नहीं सकता । इसलिए ये व्यवहार छह कारक असत्य हैं, उन्हें कारक कहना औपचारिक कथन है ।

तब सवाल उठना स्वाभाविक है कि, 'व्यवहार कारक असत्य हैं तो फिर सत्य कारक-निश्चय कारक कौनसे हैं ?' हम अपने घड़े के प्रसिद्ध उदाहरण पर घटायेंगे ।

मिट्टी स्वतंत्रपने से घड़ारूप कार्य को प्राप्त होती है इसलिए मिट्टी कर्ता है और घड़ा कर्म है अथवा घड़ा और मिट्टी अभिन्न होने से मिट्टी स्वयं ही कर्म है । स्वयं के परिणमन स्वभाव द्वारा मिट्टी ने घड़ा बनाया इसलिए मिट्टी स्वयं ही करण है । मिट्टी ने घड़ा रूप कर्म स्वयं को ही दिया इसलिए मिट्टी स्वयं ही सम्प्रदान है । मिट्टी ने स्वयं में से पिंडरूप अवस्था को नष्ट करके घड़ारूप कर्म किया और वह स्वयं ध्रुव रही इसलिए मिट्टी स्वयं ही अपादान है । मिट्टी ने स्वयं के आधार से घड़ा किया इसलिए मिट्टी स्वयं ही अधिकरण है ।

इसप्रकार छहों कारक अर्थात् अभिन्न कारक एक ही द्रव्य में - प्रत्येक द्रव्य में अपने अपने होते हैं । परमार्थ से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को सहाय नहीं कर सकता । द्रव्य स्वयं ही, स्वयं को, स्वयं द्वारा, स्वयं के लिए, स्वयं में से, स्वयं के आधार से कार्य करता है इसलिए ये निश्चय कारक ही परमसत्य हैं । प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही स्वयं के अनंत शक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण होने से स्वयं ही षट्कारकरूप होकर स्वयं का कार्य करने में समर्थ है । उसमें बाह्य सामग्री किंचित् मात्र मदद नहीं कर सकती ।

ये छह कारक प्रत्येक समय में रहते हैं । ये कारक क्या है? द्रव्य हैं, गुण हैं या पर्याय हैं ? छह कारक सर्व द्रव्यों में पाये जानेवाले सामान्य गुण हैं । जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छहों द्रव्यों में वे पाये जाते हैं । समयसार ग्रंथ में आत्मा की ४७ शक्तियों का वर्णन आता है उसमें भी ये छह शक्तियां बतायी हैं - कर्तृशक्ति, कर्मशक्ति, करणशक्ति,

सम्प्रदान शक्ति, अपादान शक्ति और अधिकरण शक्ति ।

छह कारक गुण हैं और उनका भी परिणमन निरंतर चलता रहने से प्रत्येक पर्याय में नये नये पर्यायरूप छह कारक पाये जाते हैं । इसीलिए कहते हैं कि प्रत्येक पर्याय के स्वयं के षट्कारक भिन्न हैं, स्वतंत्र हैं । अनेक लोगों का प्रश्न है कि द्रव्य त्रिकाल शुद्ध होने पर पर्याय अशुद्ध किसप्रकार हो सकती है ? उस प्रश्न का उत्तर अब ख्याल में आयेगा कि प्रत्येक पर्याय के स्वयं के षट्कारक भिन्न होने से पर्याय तत्समय की योग्यता से ही उत्पन्न होती है । परंतु हम किसी कार्य के लिए परपदार्थों को जिम्मेदार मानकर उनके प्रति रागद्वेष करते हैं । ये रागद्वेष भी स्वयं के षट्कारकों से उत्पन्न होते हैं , परपदार्थों के कारण नहीं । चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है इसलिए भी नहीं । क्योंकि कर्म पुद्गल की पर्याय है और रागद्वेष जीव की पर्याय है । दोनों में निमित्त नैमित्तिक संबंध होने पर भी कर्ता कर्म संबंध नहीं है ।

समयसार कलश ४९ में कहा है कि व्याप्यव्यापकभाव हुए बिना कर्ताकर्मस्थिति हो नहीं सकती । इस बड़े नाम से घबराना मत, उसका अर्थ समझ लेते हैं ।

जो अपनी सभी अवस्थाओं में व्यापता है वह व्यापक और उसकी विशिष्ट अवस्था उसका व्याप्य है । मिट्टी व्यापक है और घड़ा तथा अन्य पर्यायें उसका व्याप्य है । द्रव्य और पर्याय अभेद होने से द्रव्य पर्याय में व्यापता है - प्रसरता है और पर्याय द्रव्य द्वारा व्यापी जाती है । ऐसा यह व्याप्य व्यापकपना अभिन्न सत्ता में - द्रव्य और उसकी पर्याय में होता है - दो भिन्न द्रव्यों में नहीं होता ।

जहाँ जहाँ व्याप्यव्यापकभाव होगा वहीं पर कर्ताकर्मभाव संभवता है, व्याप्यव्यापकभाव बिना कर्ताकर्मभाव हो नहीं सकता । पुद्गल द्रव्य उसके अपने पर्यायों में व्यापक है और जीवद्रव्य अपने स्वयं की पर्यायों में व्यापक है । परंतु जीव व्यापक और शरीर व्याप्य यह बात तीन काल में नहीं हो सकती । कोई भी द्रव्य अपना स्वचतुष्टय छोड़ कर परचतुष्टय में प्रवेश ही नहीं कर सकता; परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव में व्याप नहीं सकता । इसीलिए मैं अर्थात् जीवद्रव्य अन्य किसी का भी कर्ता

नहीं, अन्य किसी का कार्य भी नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में 'अकार्यकारणत्व' शक्ति है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का 'अकार्य' और 'अकारण' है। कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्य का कार्य भी नहीं होता उसी प्रकार कारण भी नहीं होता-हो ही नहीं सकता।

मैं पर का या पर मेरा भला बुरा कर सकता है, कर्म मुझे संसार में घुमाते हैं, कर्म के कारण मुझे राग, द्वेष होते हैं आदि मान्यतायें मिथ्यात्व है, अज्ञान है।

निमित्त बिना कार्य नहीं होता, उचित निमित्त से कार्य होता है आदि शास्त्र में जो कथन आता है वह व्यवहार नय का कथन है - औपचारिक कथन है। उसे निश्चयनय का कथन मानना, सत्यार्थ मानना यह भी मिथ्यात्व है, अज्ञान है।

जिस प्रकार मिट्टी द्वारा घट हो सकता है परंतु मिट्टी द्वारा पट यानि वस्त्र होना अशक्य है उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने स्वयं के भावों का, पर्यायों का कर्ता हो सकता है, परंतु परभावों का-पर की पर्याय का-कार्य का कर्ता होना अशक्य है। फिर भी आत्मा और पुद्गल दोनों की क्रिया एक आत्मा ही करता है माननेवाला मिथ्यादृष्टि है।

कोई भी द्रव्य अन्य किसी भी द्रव्य का कर्ता होता ही नहीं, सभी द्रव्य अपने अपने स्वभाव के अनुसार परिणमते हैं। यह जीव-यह मूर्ख उल्लू जीव व्यर्थ ही राग द्वेष करके आकुल व्याकुल होता है, दुःखी होता है।

अनेक बार हमें इच्छा होती है और उसीप्रकार पदार्थ परिणमन करते हैं फिर भी वे अपनी इच्छा के कारण परिणमित नहीं होते परंतु उनके परिणमन स्वभाव के कारण परिणमते हैं और अज्ञानी जीव 'मैंने यह कार्य किया' इसतरह की मिथ्या कल्पना करके पर के कर्तृत्वबुद्धि की मिथ्या मान्यता को पुष्ट करता है। छोटा बालक चलते हुए गाड़े को हाथ लगाकर मानता है कि मैं यह गाड़ा चला रहा हूँ, वैसी ही अपनी मान्यता तो नहीं है ना इस बात का प्रत्येक को विचार करना चाहिए।

तुम कहोगी, 'सुबह से रात तक हम कामों के बोझ तले मरे जा रहे हैं और तुम कह रही हो कि इनमें से एक भी कार्य हम ने नहीं किया? घर की साफ सफाई, झाड़ू लगाना, रसोई बनाना,

कपड़ा धोना, बर्तन मांजना, बच्चों की देखभाल करना इतना ही नहीं हमारे व्यावसायिक कामकाज ये सारा हम नहीं कर रहे तो और कौन कर रहा है ? जाने दो, कल से हम ये सारे कामकाज करेंगे ही नहीं, देखे तो कैसे होते हैं?’

कह दिया जो कहना था ? अब जरा शांत होकर ठीक तरह से ध्यान दो । जो कार्य, जो काम तुम कर ही नहीं सकती थी, कर नहीं रही थी उन्हें तुम कैसे छोड़ सकोगी ? हम अब नहीं करेंगे इस कथन द्वारा ‘हम कर सकते हैं’ इस मान्यता का ही तुम प्रदर्शन कर रही हो । बेटियों, इसतरह गुस्सा मत होना । ‘मैं मनुष्य हूँ’ इसतरह की इस मनुष्यपर्याय में - असमानजातीय द्रव्यपर्याय में एकत्वबुद्धि होने के कारण ‘इस शरीर की क्रिया मैं करता हूँ’ ऐसी इस जीव की मान्यता अनादि काल से चली आ रही है ।

आचार्य करुणाबुद्धि से इस विश्व के सभी पदार्थों की कारण-कार्य व्यवस्था और उसका रहस्य बताकर इस जीव के कल्याण का ही मार्ग बता रहे हैं । तुम ऐसा विश्वास रखो कि, ‘मैं मेरी मिथ्या मान्यता के कारण और राग द्वेषों के कारण दुःखी हूँ और जिनागम का उपदेश ही मुझे सुख का मार्ग दिखानेवाला है, अन्य कोई भी मार्ग मेरे सुखप्राप्ति में कारण नहीं है ।’ सरल मन से यह उपदेश ग्रहण करके उसका मर्म पहचानोगी तो यह अत्यंत सहज, सुलभ, स्वाधीन मार्ग तुम्हें भी प्राप्त होगा ।

जिनागम का यह रहस्य जानोगी तो तुम भी ज्ञातादृष्टापने का अनुभव करोगी । ऊपर बताये हुए सारे कामकाज उसके पश्चात् भी होते रहेंगे परंतु तब वे सारे कार्य ‘होते हुए’ भासने लगेंगे-ज्ञान में आयेंगे, पर की कर्तृत्वबुद्धि नष्ट होगी, ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में अहंबुद्धि प्रस्थापित होगी, सहज सुख की प्राप्ति होगी । माँ की किचकिच समझकर इसे मत देखो परंतु आचार्यों का अनमोल उपदेश, जो सर्वज्ञ के दिव्यध्वनि के अनुसार है, समझकर इसे ग्रहण करो, उसका मर्म पहचानो, मात्र शब्दों का ग्रहण और रटन मत करो ।

आचार्य जो उपदेश देते हैं वह कहीं व्यवहार कथन द्वारा प्राथमिक भूमिका के शिष्यों को समझाने के लिए, तो कहीं

निमित्तादि का ज्ञान कराने के लिए, तो कहीं निश्चय कथन द्वारा सत्यार्थ का विवेचन करने के लिए होता है। हमें उसमें से यथार्थ अर्थ ग्रहण करना चाहिए। चलो, अब हम अपने मूल विषय पर आते हैं।

कर्ताकारक - कर्ताकारक में चार प्रकार के कारक बताये जाते हैं - निमित्त, त्रिकाली उपादान, अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय और तत्समय की पर्याय की योग्यता। मान लो, कोई मात्र तत्समय की पर्याय की योग्यता को ही कार्य का कर्ताकारक मानेगा और अन्य सब कारणों का निषेध करेगा तो वह भूल होगी। जब जब कार्य होता है तब तब ये चारों कर्ताकारक होते ही हैं। ऐसा ही वस्तुस्वभाव है। उनमें से तत्समय की पर्याय की योग्यता यही सच्चा कारण यानि कार्य का नियामक कर्ता है यह बात भी जाननी चाहिए।

कर्ता की परिभाषा में 'जो स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य करता है' लिखा है उसमें स्वतंत्रतापूर्वक शब्द महत्व का है। वह नहीं होगा तो अन्य द्रव्य भी इस कार्य का कर्ता होने का प्रसंग आयेगा। जैसे, रोटी आटे से बनी और बाई से भी बनी ऐसा प्रसंग आयेगा, घड़ा मिट्टी ने बनाया और कुम्हार ने भी बनाया ऐसा प्रसंग आयेगा, शब्द भाषावर्गणा का कार्य है और जीव का भी कार्य है ऐसा प्रसंग आयेगा, यह अक्षरों की रचना स्याही कर रही है और मैं भी कर रही हूँ ऐसा प्रसंग आयेगा।

तुम पूछोगी, 'जीव रागद्वेषादि विकार भी स्वतंत्रता से ही करता है ना?' जीव विकार करता है वह उसके अशुद्ध उपादान द्वारा, तत्समय की पर्याय की योग्यता से, उस पर्याय के स्वतंत्र षट्कारकों द्वारा करता है। परंतु वह जीव का स्वभाव नहीं है यह बताने के लिए निमित्त का यानि द्रव्यकर्म के उदय का ज्ञान कराया जाता है। उसीप्रकार पुद्गल द्रव्य भी स्वतंत्रता से कर्मरूप परिणमित होता है उसमें जीव के रागद्वेष निमित्त हैं।

जब जीव स्वयं की योग्यता से स्वतंत्रता से विभाव अर्थात् मोह, राग, द्वेष करता है तब पूर्वबद्ध कर्मों का उदय निमित्त होता है। कर्म का उदय जीव को पराधीन नहीं बनाता, राग द्वेष नहीं कराता। हमने पहले ही देखा है कि निमित्त की मात्र उपस्थिति रहती है।

उसीप्रकार जब कार्माण वर्गणा स्वयं की योग्यता से स्वतंत्रता से कर्मरूप परिणमित होती है तब जीव के मोह, राग, द्वेष निमित्त होते हैं। जीव और कर्म दोनों ही अपना अपना स्वयं का कार्य स्वयं में करते हैं। शास्त्र में जब कथन आता है कि जीव ने कर्म बांधा या कर्म का क्षय किया तब वह निमित्त का कथन है, निमित्त की उपस्थिति दर्शानेवाला कथन है, इसप्रकार योग्य अर्थ हमें ग्रहण करना चाहिए।

जिसप्रकार सूर्य, चंद्र के प्रकाश के निमित्त से सायंकाल में आकाश में मेघ विविध रंग और आकार धारण करते हैं, इंद्रधनुष की रचना होती है, चंद्रमा की चहुँ ओर प्रकाशवलय दिखने लगता है इन सभी रचनाओं में पुद्गल स्कंध स्वयं ही स्वयं की शक्ति से विविध रूप में परिणमित होते हैं, अन्य कोई भी उनका कर्ता नहीं है। उसीप्रकार जीव के मोह, राग, द्वेषादि भावों के निमित्त से पुद्गल द्रव्य स्वयं ही स्वयं की शक्ति से ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप परिणमित होते हैं।

अज्ञानी जीव राग द्वेष की उत्पत्ति परपदार्थों, कर्मों के कारण होती है मानता है। सच्चा कारण तो उस जीव का अज्ञानभाव ही है। 'समयसार नाटक' में लिखा है - "शिष्य पूछता है, 'हे स्वामी! रागद्वेष परिणामों का मूल प्रेरक कौन है वह आप मुझे बताईये - पुद्गल कर्म है? या मन, वचन, काय की क्रिया है? या इंद्रियों का भोग है? या धन है? या घर है?'

गुरु समाधान करते हैं, 'छहों द्रव्य स्वयं अपने स्वयं के स्वरूप में सदा असहाय (दूसरे के सहायबिना) परिणमन करते हैं, इसलिए कोई भी द्रव्य अन्य किसी भी द्रव्य के परिणमन के लिए कभी प्रेरक नहीं होता, इसलिए राग, द्वेष का मूल कारण मिथ्यात्वरूपी मदिरापान ही है।'

यह अनादिकालीन मिथ्यात्व दूर करने के लिए ही हम जिनेन्द्रकथित आगम का अभ्यास करते हैं। निमित्त उपादान, निश्चय व्यवहार, पांच समवाय, चार अभाव, क्रमबद्धपर्याय, सर्वज्ञता आदि विषयों का अध्ययन करके ठीक तरह से समझकर तदनुसार तत्त्वनिर्णय करना मिथ्यात्व ग्रंथी का भेद करने के लिए अत्यावश्यक है।

अज्ञानी अवस्था में जीव को राग का कर्ता कहो तो कहो, परंतु सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव के राग भावों का स्वामीपना नहीं होता, अपने ज्ञातापना में उसे अहंबुद्धि होती है तथा आस्रव तत्त्व को वह अपने से भिन्न जानता है इसकारण ज्ञानी को राग का अकर्ता कहते हैं ।

देखो, यहाँ अज्ञानी को उसके विभाव का कर्ता कहा है परंतु परद्रव्य का कर्ता तो कोई भी नहीं हो सकता । शास्त्र में कर्ता कर्म संबंधी जितनी चर्चा की है उतनी भोक्ता भोग्य संबंधी नहीं है । उसका कारण यही है कि जहाँ कर्ताबुद्धि होती है वहाँ भोक्ताबुद्धि भी होती ही है । उसीतरह जीव परद्रव्य का कर्ता नहीं है इस सिद्धांत के द्वारा वह परद्रव्य का भोक्ता भी नहीं है, परद्रव्य उसका भोग्य नहीं है यह बात भी सिद्ध होती है ।

कर्मकारक - कर्ताकारक के बाद अब कर्मकारक की चर्चा करेंगे । कर्म शब्द से उलझन में पड़ सकते हैं । अनेक भिन्न भिन्न अर्थों में उसका प्रयोग होता है । जनसामान्य तो उसका अर्थ जाने बिना ही उसका सरेआम प्रयोग करते हुए पाये जाते हैं । जैसे, हमें कर्म करते रहना चाहिए परंतु उसके फल की अपेक्षा - इच्छा नहीं करनी चाहिए । घर गृहस्थी, धंदा व्यापार नीती और सदाचार से करना, दूसरों को मदद करना इसीको वे कर्म करना कहते हैं । परपदार्थों का मैं कर्ता हूँ और शरीरादिक की क्रिया मेरा कर्म है ऐसी मान्यता तो महान मिथ्यात्व है । परंतु इसी प्रकार के उपदेश के डोस लोग एकदूसरे को पिलाते रहते हैं और सुननेवालों को भी वे मीठे लगते हैं ।

शास्त्र में कर्म शब्द का प्रयोग अलगअलग अर्थों में किया जाता है ।

(१) द्रव्यकर्म - ज्ञानावरणादि आठ कर्म जो पुद्गल के कार्माण वर्गणा की अवस्था है । (२) भाव कर्म - जीव के राग, द्वेष, मोह आदि परिणाम । (३) नोकर्म - शरीर, मन, वाणी आदि । (४) कर्म यानि कार्य अर्थात् पर्याय । प्रत्येक द्रव्य या गुण की पर्याय उसका कर्म है ।

कर्मकारक की चर्चा में यह चौथे प्रकार का अर्थ समझना चाहिए । पहले हम इतना ही कहते थे कि द्रव्य कर्ता यानि

त्रिकाली उपादान है और पर्याय उसका कर्म है। अब उपादान के भेद-प्रभेद जानने के बाद अब तुम्हारे ख्याल में आयेगा कि तत्समय की पर्याय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान कारण कर्ता है और वह पर्याय कर्म है। इसीप्रकार छहों कारक उस विशिष्ट पर्याय पर घटित होते हैं। देखो, पहले हमने छह कारक द्रव्य पर घटाये थे अब इनको पर्याय पर घटित कर रहे हैं। पर्याय स्वयं ही कर्ता, पर्याय स्वयं ही कर्म, पर्याय स्वयं ही करण, पर्याय स्वयं ही सम्प्रदान, पर्याय स्वयं ही अपादान और पर्याय स्वयं ही अधिकरण है।

इसे आत्मा पर घटाते हैं। द्रव्य और पर्याय अभेद करके छह कारक इसप्रकार हैं - आत्मा स्वयं ही अपने निर्मल शुद्ध पर्याय का कर्ता है, शुद्ध पर्याय उसका कर्म है, आत्मा ही उसका साधन अर्थात् करण है, स्वयं को ही शुद्धता का दान देता है इसलिए आत्मा सम्प्रदान, स्वयं में से देता है इसलिए आत्मा अपादान और स्वयं के आधार से देता है इसलिए आत्मा ही अधिकरण है।

आत्मा के शुद्ध पर्याय के छह कारक इसप्रकार हैं - शुद्ध पर्याय स्वयं कर्ता, शुद्ध पर्याय स्वयं कर्म, शुद्धता ही उसका साधन है इसलिए शुद्धपर्याय करण, अपने को ही शुद्धता का दान देने से शुद्ध पर्याय सम्प्रदान, स्वयं में से शुद्धता प्रकट होने से शुद्ध पर्याय अपादान, स्वयं के आधार से शुद्ध होने से शुद्ध पर्याय अधिकरण है।

ये सारी बातें समझने पर दृष्टि परपदार्थों और पर्यायों से हटकर स्व तरफ केंद्रित हो जाती है और ज्ञानानंद स्वभाव को जानते रहने से पर्याय में वीतरागता और आनंद की प्राप्ति होती है।

करणकारक - लोगों में करणकारक अर्थात् साधन के बारे में भी कुछ कम घोटाले नहीं हैं। एकबार एक ८७ वर्ष के बुजुर्ग अपने यहाँ आये थे। वे कहने लगे कि, 'जैन तत्त्वपरिचय और करणानुयोग परिचय दोनों पुस्तक पढ़कर मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि आत्मानुभव का शास्त्रशुद्ध मार्ग मुझे आप से प्राप्त होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि आप आत्मानुभवी है। अहो, मैं तो किसी व्यक्ति के मार्गदर्शन में गत चार सालों से साधना कर

रहा हूँ, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूँ परंतु सारा व्यर्थ गया!’

मैंने कहा, ‘आपने कौनसे प्रयत्न किए वे भी तो बताईये।’ उस व्यक्ति ने बताया, ‘मैं रोज प्रातःकाल चार बजे उठकर पौना घंटा स्थिर आसन लगाकर, नासाग्र दृष्टि रखकर ॐ का जाप तथा सिद्धों का जाप करता हूँ।’

‘चाचाजी, सिद्धों का स्वरूप तो आप जानते ही होंगे ना?’ - मैंने पूछा। उसपर वे कहने लगे, ‘अहो, उसकी क्या आवश्यकता है? मुझे कुछ उनका स्वरूप मालूम नहीं है। देखिए, मुझे केवल मिथ्यात्व का नाश करके सम्यक्त्व की प्राप्ति करनी है। अनंतानुबंधी तो हमें है ही नहीं क्योंकि हम इतने पुण्य कर रहे हैं, मंद कषायी हैं।’

मन ही मन में मैं समझ गयी। समाज में भोले जीवों की और उनकी दिशाभूल करनेवालों की कुछ कमी नहीं है। उसके पश्चात् डेढ़-दो घण्टे मैंने और तुम्हारे पिताजी ने उनसे चर्चा करके उन्हें अभ्यास की योग्य पद्धति का दिग्दर्शन कराया। कितने ही उच्च प्रकार का शुभभाव भी क्यों न हो, सम्यक्त्व प्राप्ति के बिना वह अनंतानुबंधी कषाय ही है इस बात को भी समझाया।

अब तो प्रेक्षाध्यान, विपश्यना आदि विविध ध्यानों की फैशन चल रही है, क्लासेस चल रहे हैं। कोई स्वयं को आसमान में उड़ान लगाते हुए अनुभवता है, तो किसी को शुभ्र सफेद दिव्य प्रकाश दिखायी देता है, तो कोई संगीत के आलाप द्वारा आत्मा की अनुभूति होने का दावा करते हैं। इसी को वे आत्मानुभूति एवं सम्यग्दर्शन मान भी लेते हैं। ध्यान के ध्येय संबंधी तो अज्ञान है ही, उसके साधन संबंधी-करणकारक संबंधी भी अज्ञान है।

आत्मानुभूति ज्ञान गुण की पर्याय है तो फिर/उसका साधन अर्थात् करण भी ज्ञान की पर्याय ही है। शास्त्र में बताया है कि प्रज्ञा छैनी द्वारा भेदविज्ञान करके अर्थात् ज्ञान द्वारा स्व और पर का भेद जानकर प्रज्ञा द्वारा ही स्व का ग्रहण करना है-स्व को जानना है।

सम्प्रदानकारक - अब थोड़ी चर्चा अन्य कारकों संबंधी भी करेंगे। सम्प्रदान अर्थात् ज्ञान का जो कार्य हुआ-जो ज्ञान हुआ वह स्वयं को ही दिया। हम निमित्त का कथन करते हैं कि गुरु ने शिष्य को ज्ञान दान किया, वहाँ निमित्त का ज्ञान कराया जाता है; परंतु गुरु कुछ अपने शिष्य को ज्ञान या सम्यक्त्व प्रदान नहीं कर सकता, उसकी पर्याय ला नहीं सकता। शिष्य उसे अपनी योग्यता एवं पुरुषार्थ से प्राप्त करता है। हाँ, उस वक्त गुरु की उपस्थिति होती है।

अनेक लोग कहते हैं, 'हमने तो गुरु कर लिया। अब हमारा सारा भार गुरु पर है, वही हमारा भला करेगा, अब हमें कोई चिंता नहीं है।'

स्टेशनपर हम देखते हैं कि किसी ने हमाल (कुली) कर लिया और सारा भार उसपर सोप दिया हो, उसी स्वर में गुरु करने का प्रकार कुछ अजब ही लगता है, है ना?

मोक्षमार्ग का उपदेश यानि देशनालब्धि हमें सच्चे देव, शास्त्र, गुरु से तथा आत्मानुभवी ज्ञानी पुरुष से ही प्राप्त होती है, अन्य किसी से भी नहीं यह बात सत्य है। परंतु यह तो निमित्त है। हम स्वयं जीवद्रव्य मोक्षमार्ग का त्रिकाली उपादान कारण है तथा पुरुषार्थ और तत्समय की पर्याय की योग्यता से ही मोक्षमार्ग प्रकट होता है - सम्यग्दर्शन, आत्मानुभूति प्रकट होती है।

अपादान कारक - ज्ञान की पर्याय ज्ञान में से ही उत्पन्न होती है ऐसा न मानकर शास्त्र में से ज्ञान होता है, दिव्यध्वनि से ज्ञान होता है, ज्ञेय में से ज्ञान आता है माननेवाला जीव अज्ञानी है। तीनों ही प्रकार के उपादान कारण (त्रिकाली तथा क्षणिक) अपादान कारक हैं परंतु परद्रव्य या निमित्त अपादान कारक नहीं है।

१८-२० सालों पहले की बात है। मेरी माँ के आग्रह के कारण उसके साथ मैं गयी थी धर्म की धुरा सम्हालनेवाले किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के पास। उन्हें प्रश्न पूछने का माँ का ही आग्रह था। योग्य उत्तर की आशा नहीं थी फिर भी पूछा था कि मुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करनी है, कैसे होगा बताइए। 'बालिके, वह बहुत कठिन है। मेडिकल पास करके डॉक्टर होना दस हजार में से किसी को ही संभव है' - उन्होंने बताया।

मैंने कहा, 'डॉक्टर की पदवी तो मैं बहुत पहले प्राप्त कर चुकी हूँ। मुझे सम्यग्दर्शन के बारे में बताइए।'

उसपर उन्होंने कहा था, 'उसका कुछ नियम नहीं है। किसी को झोपडी में होता है तो किसी को महल में। अरे, कौन है वहाँ? अपने टाइम्स ऑफ इंडिया के इशितहार का क्या हुआ?'

मैंने जो समझना था वह समझ लिया था। तुम भी समझ गयी होगी कि सम्यग्दर्शन आत्मा में से होता है और आत्मा का लक्ष करने से होता है। यह प्रसंग परनिंदा या आत्मप्रशंसा करने के लिए नहीं बता रही हूँ। तुम्हें भी परीक्षाप्रधानी होकर किसी के कथन द्वारा उसके उपदेश की सत्यासत्यता की परीक्षा करनी चाहिए।

अधिकरण कारक - प्रत्येक द्रव्य और पर्याय स्वयं के ही आधार से रहते हैं, वे स्वयं का ही अधिकरण हैं। परंतु इसे न मानकर अज्ञानी जीव ने आज तक शरीर के आधार से ही अपना अस्तित्व माना है। 'शरीर नहीं होगा तो जीव कहाँ रहेगा? मोक्षमार्ग के लिए शरीर की आवश्यकता है ना? शरीर को ठीक रखो तो तुम्हारी धर्मसाधना ठीक चलेगी' आदि सलाह लोग देते हैं। देखो, वज्रवृषभनाराच संहनन (हड्डियों तथा उनके वेष्टन की अत्यंत मजबूती) के बिना कोई क्षपक श्रेणी मांडकर निर्वाण नहीं प्राप्त कर सकता ऐसा शास्त्र का वचन पढ़कर इस श्रेष्ठ संहननवाले शरीर के आधार से ही मोक्ष प्राप्त होता है मानते हैं। क्या तुम्हें पता है कि सातवें नरक में जानेवाले मनुष्य या तिर्यक को भी वज्रवृषभनाराच संहनन ही होता है?

शास्त्र के ये सारे वचन निमित्तों का ज्ञान कराते हैं, अनुकूल परिस्थिति बताते हैं। वे कहीं सच्चे कारक या क्रिया के जनक नहीं हैं।

देखते देखते चर्चा बहुत लंबी चली। अब यहीं विराम लेती हूँ। कारणों की चर्चा में पांच समवायों की चर्चा सहज ही निकलती है। उसके बारे में आगामी पत्र में चर्चा करेंगे।

जय जिनेन्द्र।

तुम्हारी माँ

पांच समवाय

पत्रांक १०

१६ जून २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

तुम दोनों बच्चों की छुट्टियों में यहाँ मायके आकर कुछ दिन रही और वापस चली गयी । तुमने लौकिक सुख दुःख की बातें भी की, कई बातों संबंधी हमारी राय भी ली, हमारे मत भी पूछे थे । उसपर लौकिक सलाह के साथ साथ तत्त्वज्ञान और वस्तुस्वरूप की दृष्टि से मैंने तुम्हें कुछ उपदेश भी दिया था ।

बेटियों, बाह्य पदार्थों को इष्ट अनिष्ट मानकर उनके संयोग वियोग में हम सुख दुःख मानते हैं और उतने मात्र को अपना सर्वस्व मान लेते हैं । परंतु इन सब संयोगों से भिन्न, इन सबको जाननेवाला मैं कोई भिन्न तत्त्व हूँ, अनुपम, आश्चर्यकारी एवं अनुभव में आनेवाली वस्तु हूँ कि जिसके अनुभव में अतींद्रिय और सच्चा सुख प्राप्त होता है इस बात का पता भी अनेक लोगों को नहीं होता ।

इस स्वाधीन सुख की सहज उपलब्धि को छोड़कर यह जीव अनादिकाल से परद्रव्यों के परिणमन में कुछ हेरफेर, बदलाव करने के पीछे लगकर अपना जीवन बरबाद करते आया है । परद्रव्य का कार्य अन्य कोई द्रव्य कर ही नहीं सकता इस बात को न जानने से परकी कर्तृत्वबुद्धि के कारण यह जीव दुःखी हो रहा है । फिर भी उन्हीं प्रयत्नों में अपने को सुखी मान रहा है । यह अन्य किसी की नहीं परंतु अपनी ही दयनीय अवस्था है या नहीं इस बात पर तुम ही विचार करो ।

कोई भी कार्य होता है तब अनेक कारण सहज ही एकत्रित होते हैं, आ मिलते हैं । कारणों के इस समूह को 'समवाय' कहते हैं। किसी भी कार्य की उत्पत्ति में पांच कारणों का समवाय अर्थात् समूह पाया जाता है, इन्हें पांच समवाय कहा जाता है । उनके नाम इसप्रकार हैं (१) स्वभाव (२) निमित्त (३) नियति (काललब्धि) (४) पुरुषार्थ और (५) भवितव्य ।

इन सभी कारणों के समवाय से - एकत्रित आने से कार्य होता है मानना अनेकांत है, सम्यक्त्व है परंतु किसी एक ही कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है मानना एकांत है - मिथ्यात्व है । सर्वप्रथम इन पांच शब्दों के अर्थ हम समझते हैं ।

(१) स्वभाव - स्वभाव शब्द से तो अब तुम परिचित हो ही । वस्तु का यानि द्रव्य का स्वयं का जो भाव है वह स्वभाव है । उस स्वभाव के अनुसार ही कार्य होता है । कोई भी कार्य अपने द्रव्य स्वभाव का कभी भी उल्लंघन नहीं करता । द्रव्य की जो जो पर्याय होती है उस पर्यायरूप परिणमने की योग्यतारूप धर्म-स्वभाव उस द्रव्य में ही विद्यमान रहता है । इसे द्रव्यशक्ति भी कहते हैं । उपादान की भाषा में इसे त्रिकाली उपादान कहते हैं । जैसे, घड़ारूप परिणमन करने का स्वभाव मिट्टी में है, केवलज्ञानरूप परिणमन करने का स्वभाव जीवद्रव्य में है । इतना ही नहीं, जीव का जो मोह, रागद्वेषरूप विभाव परिणमन है उसकी पर्यायगत योग्यतारूप स्वभाव-जिसे अनियत स्वभाव कहा है, जीव में है । जैसे, शीतलता पानी का नियत स्वभाव है परंतु अग्नि के संयोग में गरम होने की पर्यायगत योग्यता भी उसमें है ।

परंतु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रूप या शरीररूप परिणमने का जीव का स्वभाव नहीं है, कर्मरूप परिणमने का उसका स्वभाव नहीं है । उसी तरह ज्ञानरूप परिणमने का स्वभाव शरीर, इंद्रिय, भेजे में नहीं है ।

हमने पहले देखा ही है कि प्रत्येक द्रव्य का स्वयं का स्वभाव है । स्वभाव स्वतःसिद्ध होता है उसे कोई उत्पन्न नहीं करता, न उसमें कोई बदल ही कर सकता है । यह स्वभाव अनादिअनंत एकसदृश एकरूप रहता है । स्वभाव को अन्य किसी के सहाय या मदद की आवश्यकता नहीं होती अर्थात् वह 'स्वसहाय' या 'असहाय' होता है । स्वभाव कभी खंडित नहीं होता ।

सदा कायम रहना, ध्रुवरूप से टिका रहना जैसे द्रव्य का स्वभाव है उसी प्रकार कायम रहकर भी निरंतर परिणमन करना, प्रति समय विशिष्ट अवस्थारूप से रहना, परिणमनशीलता का होना भी द्रव्य का स्वभाव है । इन्हें क्रम से नित्यस्वभाव और

अनित्यस्वभाव कहते हैं। प्रत्येक समय में तत्समय की पर्याय की योग्यता के अनुसार परिणमने का-कार्यरूप होने का स्वभाव-क्षणिक उपादान उस द्रव्य में ही योग्यतारूप से विद्यमान रहता है। इसे पर्यायशक्ति भी कहते हैं।

(२) निमित्त - निमित्त कारणों संबंधी हम सविस्तार चर्चा पहले ही कर चुके हैं। जब कार्य होता है तब कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिसपर आ सकता है परंतु जो स्वयं कार्यरूप नहीं परिणमता उसे निमित्त कहते हैं। निमित्त कार्य में कुछ भी फेरबदल, मदद, सहाय नहीं करता फिर भी निमित्त की उपस्थिति अनिवार्यपने से होती है।

जो निमित्त को मानेगा ही नहीं उसने पांच समवायों में से एक कारण को यानि निमित्त नाम के समवाय कारण को नहीं माना। उसकी यह मान्यता खोटी है।

जब मिट्टी स्वयं के उपादान से घड़ारूप परिणमन करती है तब कुम्हार, चाक, दण्ड आदि निमित्त भी उपस्थित रहते ही हैं। जब सम्यग्दर्शनरूप कार्य होता है अर्थात् जीव द्रव्य या जीव का श्रद्धा गुण स्वयं की योग्यता से सम्यग्दर्शन पर्यायरूप से परिणमित होता है तब दर्शनमोहनीय कर्म की उपशमादि अवस्था पायी जाती है जो अंतरंग निमित्त है। जो अंदर में है वह अंतरंग ऐसा उसका अर्थ नहीं है। नियमरूप निमित्त को अंतरंग निमित्त कहते हैं। सम्यग्दर्शन प्रकट करनेवाले किसी भी जीव में यह होगा ही।

उसमें बहिरंग निमित्त अन्य अन्य जीवों में अन्य अन्य हो सकते हैं। सच्चे देव, गुरु और शास्त्र, आत्मानुभवी ज्ञानी द्वारा देशना की प्राप्ति, उपदेश की प्राप्ति बाह्य निमित्त है। हो सकता है कि उसे देशना इस भव में या पूर्व भव में प्राप्त हुयी हो। जिनबिम्बदर्शन, जातिस्मरण, नरक की तीव्र वेदना, स्वर्ग का ऐश्वर्य आदि के निमित्त से जीव अंतर्मुख होकर विचार करने लगता है और स्वयं के शुद्धात्मस्वरूप का चिंतन करके उसमें एकाग्र होते ही उसे शुद्धात्मानुभूति प्रकट होती है - सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

निमित्तप्रधान शैली में 'देशना' रूप निमित्त को आत्मानुभूतिरूप कार्य में अत्यंत महत्त्व का स्थान देकर हम आत्मज्ञानी व्यक्ति, गुरु और इस देशना का मूलस्रोत अरहंत भगवान का उपकार स्मरण करते हैं ।

पांच कारणों अर्थात् पांच समवायों में से किसी एक कारण को मुख्य करके कथन किया जाता है तब अन्य चार कारणों का भी गौरवरूप से स्वीकार रहता ही है । परंतु इसे न मानकर सर्वथा एक ही कारण से कार्य होता है मानना मिथ्या एकांत है, इसे एकांतवाद कहते हैं । कोई मात्र निमित्त को ही कर्तापने से स्वीकार करते हैं और निमित्त न मिलने के कारण मेरा कार्य अटका हुआ है मानकर पराधीन दृष्टिवाले बनते हैं । अन्य कई लोग नियति यानि दैव पर सारा हवाला देकर एकांत नियतिवाद का पोषण करते हैं ।

(३) काललब्धि - प्रत्येक वस्तु में विशिष्ट कार्य होने की योग्यता जिस समय में होती है उसे 'काललब्धि' कहते हैं, इसे 'नियति' भी कहते हैं ।

उपादान की चर्चा में हमने क्षणिक उपादान कारण को कार्य का नियामक कारण अर्थात् कार्य कब होगा इसका नियामक कारण कहा है ।

प्रत्येक द्रव्य अनादिअनंत रहता है और उसकी प्रति समय एक पर्याय होती है । तुम मुझे बताओ, एक समय में एक पर्याय होती है तो प्रत्येक द्रव्य में कुल पर्यायें कितनी होती होंगी? विचार करो तो उत्तर निश्चित पाओगी ।

देखो, तीन काल यानि भूत, वर्तमान और भविष्यकाल के समय अनंत हैं और उतनी ही प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें हैं । द्रव्य की पर्यायों का जो यह अनादिअनंत प्रवाह है उसमें प्रत्येक पर्याय का समय निश्चित है अथवा इसतरह भी कह सकते हैं कि प्रत्येक समय की पर्याय निश्चित है । इसे किसी ने बनाया नहीं है । प्रत्येक पर्याय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान उस द्रव्य में ही विद्यमान है ।

कार्य होने की योग्यता - तत्समय की पर्याय की योग्यता को ही 'काल' कहते हैं । द्रव्य का स्वकाल अनादिअनंत है, तो

पर्याय का स्वकाल एक समय का है, केवल इतना ही नहीं वह समय निश्चित है। पर्यायों के अनादिअनंत प्रवाह में प्रत्येक पर्याय निश्चित है, स्वसमय में निबद्ध है।

काललब्धि के आधार से हम अन्य कारणों की निश्चितता सिद्ध कर सकते हैं। निमित्त परद्रव्य की पर्याय है इस बात को हमने पहले देखा था। प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय अपने स्वसमय में ही उत्पन्न होती है इसे भी हमने देखा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विशिष्ट समय का यानि विशिष्ट कार्य का निमित्त भी निश्चित रहता है, उसे कोई बदल नहीं सकता, आगे पीछे कर नहीं सकता।

(४) **पुरुषार्थ** - पुरुषार्थ शब्द का लौकिक अर्थ करते हुये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ यानि इन विशिष्ट कार्य के लिए जीव के प्रयत्न इसतरह हम इसका अर्थ करते हैं। जीव का विशेष गुण और उनकी पर्यायें पढ़ते समय हमने वीर्य गुण की चर्चा करते हुये देखा था कि पुरुषार्थ वीर्य गुण की पर्याय है। स्वभाव की रचना पर्याय में करना उसका कार्य है। छह द्रव्यों में पर्यायरूप कार्य स्वभावानुसार होता रहता है, इसलिए सभी छहों द्रव्यों में वीर्य गुण है और उसकी पुरुषार्थरूप पर्याय हर समय होती रहती है। वह पुरुषार्थ तो छहों द्रव्य की प्रत्येक पर्याय में कारणरूप से विद्यमान रहता है।

अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप क्षणिक उपादान कारण की चर्चा में इस पूर्व पर्याय के व्यय को हमने कारणरूप में देखा था। प्रत्येक समय में पूर्व पूर्व पर्याय का व्यय और उत्तर उत्तर पर्याय का उस उस समय की पर्याय की योग्यतानुसार उत्पाद निरंतर चलता रहता है। इसतरह जिस पूर्व पर्याय के व्ययपूर्वक विशिष्ट पर्याय होती है वह पूर्व पर्याय भी निश्चित है।

कारण कार्य की चर्चा में इन पूर्ववर्ती पर्यायों के रूप में हम पुरुषार्थ का विचार कर सकते हैं। सम्यग्दर्शनरूपी कार्य में उसके पूर्व में होनेवाली अनेक पूर्ववर्ती अवस्थाएँ होती हैं। जैसे सम्यग्दर्शन के पहले करणलब्धि, उसके पहले प्रायोग्यलब्धि, उसके पहले देशनालब्धि, उसके पहले विशुद्धिलब्धि, उसके पहले क्षयोपशमलब्धि आदि अवस्थाएँ-पर्यायें होती हैं, इनके

द्वारा हम पुरुषार्थ की सिद्धि कर सकते हैं। सम्यग्दर्शन के पूर्व में किये गये इन सभी प्रयत्नों को— पर्यायों को हम पुरुषार्थ कहते हैं और मोक्षमार्ग प्रकट करने के लिए इसी का उपदेश दिया जाता है।

प्रत्येक समय की पर्याय में 'पुरुषार्थ' नामक कारण उपस्थित रहता ही है। पांचों कारणों का समवाय होता है, इस बात को हम पहले ही देख चुके हैं। इन में से पांचवां कारण है 'भवितव्य'।

(५) भवितव्य - इसका शब्दशः अर्थ है 'होने योग्य'। वस्तु में जिस समय जो कार्य होने योग्य होता है वही होता है, अन्य नहीं इसी को 'भवितव्य' या 'होनहार' कहते हैं। अभी अभी काललब्धि की चर्चा में हमने देखा था कि काल अर्थात् प्रत्येक पर्याय का समय - प्रत्येक समय की पर्याय की योग्यता निश्चित है और यहाँ भवितव्य में हम देख रहे हैं कि प्रत्येक समय की पर्याय निश्चित है - प्रत्येक पर्याय निश्चित है। प्रत्येक समय में 'होने योग्य पर्याय' ही होती है, अन्य नहीं। पर्याय का योग्यतारूप धर्म उस द्रव्य में ही विद्यमान है।

हम किसी वस्तु की यानि चीज की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई को नापकर उस वस्तु का विस्तार कितना है इसे देखते हैं। जिनेन्द्र भगवान अपने दिव्य केवलज्ञान द्वारा वस्तु यानि द्रव्य कितने प्रदेशी है इसे तो जानते ही है, साथ साथ उस द्रव्य का अनादिअनंत पर्यायक्रम भी जानते हैं। काल की अपेक्षा द्रव्य अनादिअनंत फैला हुआ है, उसका प्रवाहक्रम वे जानते हैं। द्रव्य के क्षेत्र अपेक्षा से विस्तार को 'तिर्यक्प्रचय' कहते हैं और काल अपेक्षा अनादिअनंत प्रवाह को 'ऊर्ध्वप्रचय' कहते हैं।

देखो तो, क्षेत्र की अपेक्षा प्रत्येक जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं, आकाशद्रव्य अनंत प्रदेशी है, कालद्रव्य एक प्रदेशी और पुद्गल द्रव्य एक या बहुप्रदेशी (स्कंध की अपेक्षा) है, फिर भी काल की अपेक्षा सभी द्रव्यों का विस्तार समान ही है - अनादिअनंत है। लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई वस्तु की तीन डायमैन्शन्स हैं - नाप हैं और काल वस्तु की चौथी डायमैन्शन है। अर्थात् वस्तुको विस्तार की अपेक्षा हम नापते हैं उसी प्रकार काल से नापने पर वस्तु की कालअपेक्षा

लम्बाई अनादिअनंत है। आजकल तो वैज्ञानिकों ने भी काल को माना है, अब वे भी कहते हैं कि Time is a fourth dimension.

इसप्रकार स्वभाव, निमित्त, पुरुषार्थ, काललब्धि और भवितव्य इन पांच प्रकार के कारणों का अर्थात् पांच समवायों का स्वरूप हमने देखा। जब जब कार्य होता है तब तब ये पाचों ही कारण होते ही हैं। कोई भी कार्य कारण के बिना नहीं होता। जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य होगा। जैसा स्वभाव, जैसा पुरुषार्थ, जैसी काललब्धि, जैसा भवितव्य और जैसा निमित्त वैसा ही कार्य होता है।

मुझे पता है कि पांच समवायों के नाम और स्वरूप सुनकर तुम्हारे मन में अनेक सवाल उठेंगे। तुम कहोगी, 'हमें यदि विशिष्ट कार्य करना हो तो हम इन पांच समवायों को - पांच कारणों के समूह को कहाँ से ढूँढ़ निकालेंगे?' या 'हमारी काललब्धि ही नहीं आयी हो तो?' या 'न जाने हमारा भवितव्य क्या होगा?' या 'यदि हमारा भवितव्य ऐसा ही है तो पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है?' या 'हम पुरुषार्थ तो करेंगे परंतु यदि निमित्त ही न मिला तो?'

वस्तु की स्वतंत्र कारण-कार्य व्यवस्था का रहस्य ख्याल में नहीं लेने से इसतरह के अनेक सवाल उठते हैं और कारण संबंधी चिंता से, उन्हें जुटाने की चिंता से जीव आकुल व्याकुल हो जाता है। बेटियों, एक बात सदैव ध्यान में रखो कि तत्त्वज्ञान सभी आकुलताओं को नष्ट करनेवाला है। पांच समवायों का स्वरूप जानते ही अनंत आकुलता कम होती है। प्रत्येक पर्याय में उस पर्याय के अपने पांच समवाय भी एकत्रित होते हैं। वे स्वयं ही आ मिलते हैं - एकत्रित होते हैं, कोई उन्हें मिलाकर एकत्रित ला नहीं सकता।

वस्तु में अनंत गुण और प्रत्येक गुण की प्रत्येक समय में नयी नयी पर्याय - नया नया कार्य निरंतर चलता रहता है। ये पर्यायें अपनी इच्छानुरूप नहीं होती परंतु नियत यानि निश्चित वस्तुव्यवस्था के अनुसार होती हैं। यदि मैंने ऐसा किया होता तो वैसा हो जाता इसतरह अगर मगर की भाषा या यदि तदि की

शक्यता वस्तु की स्वतंत्र कारण-कार्य व्यवस्था में नहीं होती । यहाँ तो सब कुछ नियत है-निश्चित है । कारण भी नियत है और कार्य भी नियत है । तो फिर करने धरने के लिए रहा ही क्या ?

अभी हमने काललब्धि और भवितव्य इन दो कारणों की चर्चा करते हुये देखा था कि प्रत्येक पर्याय का स्वसमय, उसका जन्मक्षण निश्चित है, आगे-पीछे नहीं हो सकता उसी प्रकार कौनसी पर्याय होगी यह भी निश्चित है । द्रव्य की पर्यायों के अनादिअनंत प्रवाहक्रम में प्रत्येक पर्याय स्वयं की योग्यता से होनेवाली ही होती है । यह पर्यायशक्ति अथवा योग्यतारूप धर्म प्रत्येक द्रव्य का स्वतंत्र अपना अपना विद्यमान है, वह नया प्रकट नहीं होता ।

केवल विशिष्ट पर्याय निश्चित है इतना ही नहीं अपितु पूर्ववर्ती पर्याय, कि जिसके व्ययपूर्वक वर्तमान पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी निश्चित है । उसकी पूर्व की सभी पर्यायें भी निश्चित हैं । इसी को विधि, प्रक्रिया या पुरुषार्थ भी कहते हैं । इससे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थ भी निश्चित है ।

प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव तो अनादिअनंत त्रिकाल एकरूप ही रहता है, वह नियत है, निश्चित है इस बात को बताने की कोई आवश्यकता ही नहीं है ।

कोई पूछेगा कि, 'स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, भवितव्य सारा कुछ निश्चित है परंतु निमित्त को हम ढूँढ़ेंगे तभी और हम चाहेगे वही हम ला सकते हैं ना? जुटा सकते हैं ना?'

उसका समाधान यह है कि निमित्त तो परद्रव्य की पर्याय है अर्थात् परद्रव्य का कार्य है, वह भी उसके अपने द्रव्य के स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि और भवितव्य के अनुसार ही होगा जो सब निश्चित है । अन्य द्रव्य की पर्याय वह कैसे कर सकता है? इससे सिद्ध होता है कि विशिष्ट कार्य का निमित्त भी निश्चित है ।

यह सब स्वयंचलित - ऑटोमैटिक व्यवस्था है । कारण कार्य व्यवस्था का रहस्य जानने से हमें वस्तुस्वातंत्र्य का ज्ञान होता है, हमारी विपरीत मान्यतायें नष्ट होती हैं, आकुलता का अंत होता है और कर्तृत्वबुद्धि का भूत उतरने से अपना उपयोग सहज ही पर्याय और पर्याय के कर्तापने से हटकर स्वस्वभाव पर

केंद्रित होता है, सम्यक् पुरुषार्थ चालू होता है, सम्यग्दर्शनरूपी कार्य प्रकट होता है ।

पर्यायें निश्चित और उनका क्रम भी निश्चित है इसलिए पांचों ही समवाय निश्चित होने ही चाहिए, है ना? इन सभी बातों का यथार्थ ज्ञान होने पर क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत भी अपने ख्याल में आता है, उसका मर्म समझता है, उसके संबंध में उठनेवाले अनेक प्रश्नों का समाधान प्राप्त होता है ।

अजीव द्रव्यों की पर्यायों में भी ये पांचों ही समवाय पाये जाते हैं, तो फिर क्या जीव इतना पराधीन है कि उसे इन पांच समवायों को ढूँढ़ना पड़ेगा?

जब विशिष्ट कार्य होनेवाला होता है तब ये पांचों ही समवाय सहज आ मिलते हैं, और यदि कार्य नहीं होनेवाला हो तो नहीं मिलते । अज्ञानी जीव को कर्तृत्वबुद्धि का अहंकार होने से मैं कार्य करूं तो होता है, यदि मैं न करूं तो नहीं होता इसप्रकार की विपरीत बुद्धि-मिथ्याबुद्धि रहती है ।

हम अपनी रोजमर्राकी जिंदगी में इसे पदपद पर अनुभव भी करते हैं फिर भी मानने के लिये तैयार नहीं होते । हम विशिष्ट इष्ट संयोग की प्राप्ति के लिए मेहनत करते हैं, पैसों के अभाव में वह बात अप्राप्य लगती है परंतु पैसों का इन्तजाम होने पर भी उस संयोग की प्राप्ति नहीं होती तब हम दीन दुःखी होते हैं । ऐसे वक्त में जिनागम के सिद्धांतों का स्मरण होते ही आकुलता मिट जाती है, शांति उत्पन्न होती है ।

कातिकियानुप्रेक्षा ग्रंथ में आचार्य कातिकिय कहते हैं, “जिस जीव का, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस विधि से जो जन्म अथवा मरण जिनेन्द्र भगवान ने नियतरूप से जाना है, उस जीव का, उसी क्षेत्र में, उसी काल में, उसी विधि से वह अवश्य होता है उसे टालने में इन्द्र अथवा जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं है । इस प्रकार से जो सर्व द्रव्यों और उनकी पर्यायों को जानता है वह सम्यग्दृष्टि है, जो उसमें शंका करता है वह मिथ्यादृष्टि है ।”

जैनेन्द्र सिद्धांतकोशकार ने कहा है, ‘जो कार्य अथवा पर्याय जिस निमित्त द्वारा, जिस द्रव्य में, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस प्रकार से होनेवाली होगी वह पर्याय उसी निमित्त द्वारा, उसी

द्रव्य में, उसी क्षेत्र में, उसी काल में, उसी प्रकार से होती है ।’

देखो, इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और निमित्त सब कुछ निश्चित सिद्ध हुआ । पांच समवायों में हम द्रव्य का स्वचतुष्टय घटित कर सकते हैं । वह किस प्रकार है उसे देखते हैं ।

स्वभाव में ‘द्रव्य’ और ‘क्षेत्र’ शामिल है, काललब्धि में ‘काल’ समाविष्ट है, भवितव्य में होने योग्य ‘भाव’ और पुरुषार्थ में कारणरूप ‘भाव’ है तथा निमित्त तो परद्रव्य की पर्याय है । इसपर से तो स्व और पर की भी सिद्धि हो गयी । स्व में स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि और भवितव्य ये चार समवाय कारण हैं और पर में निमित्त कारण है ।

इन्हीं समवायों को निमित्त और उपादान रूप से विभाजित करना हो तो वह इस प्रकार होगा । स्वभाव त्रिकाली उपादान है, पुरुषार्थ अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप क्षणिक उपादान है और काललब्धि तथा भवितव्य उस समय की पर्याय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान कारण है । निमित्त को तो निमित्त रूप से हमने देखा ही है ।

क्या अब तुम इन पांच समवायों को द्रव्य और पर्याय में विभाजित कर सकोगी? स्वभाव द्रव्य है और पुरुषार्थ, काललब्धि, भवितव्य और निमित्त सब पर्यायें हैं ।

है ना मजे की बात? हमें जो सिद्धांत मालूम हैं, जो तत्त्व हम जानते हैं उनकी दृष्टि से किसी भी विषय पर विचारमंथन करके हमें बहुत सारी जानकारी उपलब्ध होती है । उनका यथार्थ भावभासन होता है ।

पांच भावों के नाम सुने है ना? पारिणामिक भाव, औपशामिक भाव, क्षायोपशामिक भाव, क्षायिकभाव और औदयिक भाव जीव के असाधारण भाव हैं, जो जीव द्रव्य के अलावा अन्य किसी भी द्रव्य में नहीं पाये जाते । इनमें से ‘पारिणामिक भाव’ स्वभावरूप भाव है, अन्य चार भाव पर्यायरूप भाव हैं, पर्यायें हैं, कार्य हैं ।

स्वभाव तो त्रिकाल होता है, उसमें निमित्त की आवश्यकता नहीं होती परंतु कार्य में निमित्त की उपस्थिति होती है । यहाँ जो

जीव के ये पर्यायरूप चार भाव हैं उनमें निमित्तरूप से कर्म की विशिष्ट अवस्था पायी जाती है । इसलिए इन निमित्तों का ज्ञान कराने के लिए जीव के इन भावों को कर्म की उन अवस्थानुसार नाम दिये हैं ।

जीव के जिन भावों के समय कर्म की उपशम अवस्था पायी जाती है, उन्हें 'औपशमिक भाव' कहते हैं ।

जीव के मोह, राग, द्वेष रूप भावों के समय कर्म का उदय निमित्तरूप से हाजिर रहता है, इसलिए इन भावों को 'औदयिक भाव' कहते हैं ।

जीव के जिन भावों के समय कर्म का क्षयोपशम निमित्तरूप से पाया जाता है उन भावों को 'क्षायोपशमिक भाव' कहते हैं । जीव के जिन भावों के समय कर्म की क्षयरूप अवस्था पायी जाती है, उन भावों को 'क्षायिक भाव' कहते हैं ।

परंतु जीव का पारिणामिक भाव कार्य न होने से, पर्याय नहीं होने से उसमें निमित्त का प्रश्न ही नहीं है । यह तो जीव का अनादिअनंत त्रिकाल स्वभाव है ।

पर्याय जब इस निज ध्रुव पारिणामिक भाव को अभेद होकर स्व पने से स्वीकार करती है, उसी को जानने में मग्न होती है तब पर्याय विभावरूप से नहीं अपितु स्वभावरूप से परिणमित होती है, जीव को आत्मानुभूति होती है, सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, अतीन्द्रिय आत्मिक सुख का अनुभव होता है ।

आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ में इन पांच समवायों का बहुत अच्छी तरह से विवेचन किया है । वह इस प्रकार -

“यहाँ प्रश्न है कि मोक्ष का उपाय काललब्धि आने पर भवितव्यतानुसार बनता है, या मोहादि के उपशमादि होने पर बनता है, या अपने पुरुषार्थ से उद्यम करने पर होता है सो कहो । यदि प्रथम दोनों कारण मिलने पर बनता है तो हमें उपदेश किस लिए देते हो? और पुरुषार्थ से बनता है तो उपदेश सब सुनते हैं उनमें कोई उपाय कर सकता है, कोई नहीं कर सकता, सो कारण क्या?

समाधान - एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं । सो मोक्ष का उपाय बनता है वहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलते हैं और नहीं बनता वहाँ तीनों ही कारण नहीं मिलते ।”

वे आगे कहते हैं, “जिस काल में कार्य बनता है वही काललब्धि और जो कार्य हुआ वही होनहार । निमित्त तो कर्म के उपशमादि हैं उसका आत्मा कर्ता हर्ता नहीं है । पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो यह आत्मा का कार्य है इसलिए आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं ।

जो जीव जिनेन्द्रकथित उपदेशानुसार योग्य उपाय करेगा उसका कार्य अवश्य प्रकट होगा । जो पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय करेगा उसे अन्य कारण तो स्वयमेव प्राप्त होते हैं और जो उपाय नहीं करता उसे अन्य कारण भी प्राप्त नहीं होते ।”

यहाँ अन्य चार समवायों का स्वीकार तो है, परंतु उन्हें गौण रखकर पुरुषार्थ की मुख्यता से कथन किया है, जीवों को मोक्ष का योग्य पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी है । कारण-कार्य व्यवस्था का ऐसा समीचीन विवेचन जिनागम में किया हुआ है । कथन जिनागम का होने पर भी ऐसी व्यवस्था तो वस्तु में ही अर्थात् छहों द्रव्यों में विद्यमान है । सर्वज्ञ भगवंतों ने यह व्यवस्था जानकर उसका कथन किया है ।

शास्त्र में कहीं कहीं काललब्धि की मुख्यता से कथन आता है । जैसे, काललब्धि आने पर जीव को सम्यग्दर्शन होता है । उस समय वहाँ भी सर्व पांचों समवायों का स्वीकार रहता है परंतु एक की मुख्यता से कथन किया जाता है । शास्त्र के कथनों का योग्य अर्थ करने की कला अवगत नहीं होगी, रीत पता नहीं होगी तो, अज्ञानी जीव शास्त्राभ्यास करके भी एकांत मिथ्या मतों का पोषण करता है, मिथ्या भ्रांति बना लेता है ।

मुझे विश्वास है कि पांच समवायों की चर्चा से द्रव्यों की स्वतंत्रता, पर्यायों की स्वतंत्रता और सहजता एवं निश्चित अर्थात् नियत कारण-कार्य व्यवस्था तुम्हारे ख्याल में आयी होगी ।

शेष चर्चा आगामी पत्र में ।

जय जिनेन्द्र,

तुम्हारी माँ

कारण-कार्य संबंधी शक्तियां

पत्रांक ११

२६ जून २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

पांच समवायों की चर्चा पढ़कर मानसिक अशांति दूर हुयी, धैर्य प्राप्त हुआ ऐसा तुम दोनों ने अपने अपने तरीके से बताया । बेटियों, लौकिक समस्यायें तो चलती ही रहती हैं, छोटी बड़ी आपत्तियां आती हैं उस समय यदि तत्त्वज्ञान की नींव नहीं होगी तो मन अत्यंत आंदोलित हो उठता है, मन का संतुलन हम खो बैठते हैं । प्राप्त परिस्थिति में से बाहर निकलने का मार्ग तो दिखता नहीं और उस कारण निराश होकर शोक, क्रोध आदि के संक्लेश परिणाम होते रहते हैं ।

इन संक्लेश परिणामों के कारण ऐसे कर्मों का बंध हो जाता है कि उसके फलस्वरूप-उसके उदय में भविष्य में भी इसीतरह के प्रतिकूल संयोग प्राप्त होते रहते हैं । अन्य कोई जीव अनुकूल संयोगों में हर्षित होता है, उसका भोक्ताबुद्धिरूप अज्ञान कायम रहता है, लोभ, मान, हास्य आदि परिणामों द्वारा भी उसका कर्मबंध तो होता ही रहता है । उसमें से छूटने का एकमेव मार्ग तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन ही है ।

जिनेन्द्रकथित आगम द्वारा वस्तुस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करते हुये छहों द्रव्यों का जो परिणमन होता है - कार्य होता है उसके कारणों की हम मीमांसा कर रहे हैं । प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है और वह स्वाधीनता से अपना परिणमन करता है, स्वयं का कार्य करता है, दूसरे किसी का भी कार्य नहीं कर सकता । सम्पूर्ण चराचर विश्व का कार्य करनेवाला कोई ईश्वर है यह मान्यता बिलकुल गलत है । प्रत्येक द्रव्य में कारण-कार्य संबंधी अनेक शक्तियां हैं उन्हें देखते हैं ।

प्रत्येक द्रव्य अनंत शक्तियों से युक्त है । 'जैन तत्त्व परिचय' पुस्तक में हमने सामान्य गुणों की चर्चा में वस्तुत्व और द्रव्यत्व गुणों का सविस्तार विवेचन किया था । प्रत्येक द्रव्य में वस्तुत्व नाम का गुण है । द्रव्य का ऐसा स्वभाव है कि जिसके

कारण द्रव्य अपना अपना प्रयोजनभूत कार्य अर्थात् परिणमन करता है, द्रव्य में उत्पाद व्यय होते रहते हैं। द्रव्य के इस स्वभाव को ही उसका वस्तुत्व गुण कहते हैं।

द्रव्य का एक स्वभाव ऐसा भी है कि जिसके कारण यह परिणमन निरंतर-प्रतिसमय चलता ही रहता है। द्रव्य अपना स्वरूप कायम रखते हुये निरंतर परिणमन करता रहता है। द्रव्य के इस स्वभाव को द्रव्यत्व गुण कहते हैं।

प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद व्यय ध्रुवत्व शक्ति है। इस शक्ति के कारण से द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रुवता से युक्त है। इस शक्ति के कारण से प्रत्येक समय में पूर्ववर्ती पर्याय का व्यय, वर्तमान पर्याय का उत्पाद होता है और साथ साथ द्रव्य की ध्रुवता कायम टिकती है। स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता से परिणमन करना तो प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव ही है।

निमित्त नहीं मिला इसलिए किसी द्रव्य का कार्य रुक गया हो ऐसा कभी होता ही नहीं। जिस समय में जो पर्याय होनी है अर्थात् जो होनहार है - जो भवितव्य है उस प्रकार का निमित्त भी सहज ही उपलब्ध होता है। निमित्त आया इसलिए कार्य हुआ ऐसा भी नहीं है और निमित्त के बिना ही कार्य हुआ ऐसा भी नहीं है। निमित्त की सहज उपस्थिति रहना तो सहज, सुंदर नैसर्गिक नियम है, ऐसी ही कारण-कार्य की स्वतंत्रता और सहजता है।

प्रत्येक द्रव्य में ऐसी अनेक शक्तियां हैं कि जो कारणरूप से कार्य करने में समर्थ हैं। 'क्रियाशक्ति' के कारण से द्रव्य अपने षट्कारक के अनुसार परिणमन करता है। द्रव्य में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण नाम की शक्तियां हैं, इन्हें षट्कारक भी कहते हैं। इनका स्वरूप एवं कार्य हमने विस्तार से देखा ही है।

द्रव्य में एक 'परिणामशक्ति' है। द्रव्य का ही ऐसा स्वभाव है कि वह अपने स्वभाव के कारण ही नित्य ध्रुवरूप भी रहता है और अपने स्वभाव से ही व्यय और उत्पाद भी करता है। उत्पाद, व्यय और ध्रुवता इन तीनों को मिलाकर एक अस्तित्वमयपना द्रव्य का स्वभाव है। ये तीनों पर के यानि निमित्त के कारण नहीं हैं परंतु अपने स्वभाव के कारण हैं ऐसा यह परिणामशक्ति बताती है।

द्रव्य में 'अकार्यकारणत्व' शक्ति है। द्रव्य अन्य का कार्य नहीं तथा कारण भी नहीं है, गुण भी अन्य का कारण नहीं तथा कार्य भी नहीं है उसी तरह प्रत्येक पर्याय भी अन्य किसीका कारण भी नहीं है और कार्य भी नहीं है। यह द्रव्य का स्वभाव होने से द्रव्य के प्रत्येक गुण की प्रत्येक पर्याय स्वयं का ही कारण है और स्वयं का ही कार्य है। उसे द्रव्य का कार्य कहना भी उपचार है। प्रत्येक पर्याय निज सामर्थ्य से ही स्वतंत्र प्रकट होती है, वह अन्य का कारण नहीं तथा अन्य का कार्य भी नहीं है।

सम्यग्दर्शन की पर्याय कर्म के उपशमादि ने करायी नहीं है उसी प्रकार यह पर्याय कर्म में कुछ कर दे ऐसा नहीं है। अन्य द्रव्य का कार्य अन्य द्रव्य करे यह जैन सिद्धांत नहीं है।

देखो यहाँ अकार्यकारणत्वशक्ति में पर के कार्य या कारण होने का निषेध किया जा रहा है, अपने स्वयं के कार्य करने का निषेध नहीं है। द्रव्य तथा पर्याय स्वतंत्रता और स्वाधीनता से स्वयं का कार्य करते हैं, पर का नहीं करते बताकर अस्ति नास्ति सिद्ध की है, वस्तु का अनेकांत स्वभाव बताया है।

अब भाव, अभावादि छह शक्तियों का स्वरूप देखते हैं। ये भी सामान्य शक्तियां होने के कारण सभी द्रव्यों में पायी जाती हैं। वे इस प्रकार हैं -

(१) **भावशक्ति** - भावशक्ति के कारण से द्रव्य हमेशा अपनी वर्तमान अवस्था से युक्त रहता है। इस शक्ति का कार्य ही ऐसा है कि द्रव्य में वर्तमान अवस्था अर्थात् वर्तमान पर्याय विद्यमान रहती ही है - करनी नहीं पड़ती।

(२) **अभावशक्ति** - अभावशक्ति के कारण से द्रव्य में वर्तमान अवस्था के अलावा अन्य कोई भी अवस्था - पर्याय हो ही नहीं सकती। उसमें परद्रव्य की पर्याय का तो अभाव है ही, उसी द्रव्य की पूर्व पर्यायों का तथा भविष्यकालीन पर्यायों का भी वर्तमान में अभाव रहता है।

(३) **भावअभावशक्ति** - भावअभावशक्ति के कारण से वर्तमान पर्याय का नियम से आगामी समय में अभाव हो जाता है - व्यय होता है। वर्तमान पर्याय का मुझे नाश करना चाहिए इस प्रकार की चिंता करने की जरूरत नहीं है और वर्तमान पर्याय

को कायम टिकाने की इच्छा एवं प्रयत्न भी व्यर्थ हैं। अनादिकाल से अज्ञान और मिथ्यात्व चला आ रहा है इसलिए घबराने का कोई कारण नहीं है, उसका अभाव करने की योग्यता और क्षमता जीवद्रव्य में ही है।

(४) **अभावभावशक्ति** - भविष्य की पर्याय जो वर्तमान में नहीं है-अभावरूप है उसका अगले ही समय में उत्पाद होगा - भावरूप होगा ऐसी अभावभावशक्ति प्रत्येक द्रव्य में है। उस शक्ति के कारण से वर्तमान पर्याय का आगामी समय में व्यय होकर नवीन पर्याय का उत्पाद होगा।

(५) **भावभावशक्ति** - होनेवाली पर्याय होगी ही, उसमें कारण है भावभावशक्ति। इस भावभावशक्ति के कारण जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है वह होगी ही।

(६) **अभावअभावशक्ति** - अभावअभावशक्ति के कारण, जो पर्याय होनेवाली नहीं है वह होगी ही नहीं।

इसतरह द्रव्यस्वभाव अगाध है। परिणमनशीलता द्रव्य का स्वभाव है, परिणमन अर्थात् पर्याय द्रव्य का वर्तमान है, द्रव्य उस रूप में वर्तमान में विद्यमान है। उसे उसरूप रहने के लिए किसी अन्य की सहायता की रंचमात्र अपेक्षा नहीं होती। कोई करना चाहे तो भी सहाय कर ही नहीं सकता। प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक समय की पर्याय की ऐसी स्वतंत्रता, स्वाधीनता, सहजता एवं निश्चितता ख्याल में आते ही हमारी अनंत आकुलता कम हो जाती है, निराकुलता की प्राप्ति होती है।

पर के तथा स्वयं के भी परिणमन की चिंता छोड़कर, पर्याय पर से लक्ष हटाकर, त्रिकाली ध्रुव स्वभाव को स्वपने से स्वीकार करके उसमें एकाग्र होने से पर्याय में स्वभावरूप परिणमन शुरू होता है - सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

ज्ञान की प्रति समय जाननेरूप पर्याय निरंतर होती रहती है। अपनी तथा पर की पर्याय करने, बदलने, टिकाने या नाश करने की कोई संभावना ही नहीं रहती। पर्याय एक समय की है और नाशवंत है यह बात समझ में आने पर ज्ञान की पर्याय पर्यायों को जानना छोड़कर सामान्य स्वरूप निज ध्रुव शुद्धात्मा को जानने लगती है, उसी में अहंपना स्थापित हो जाता है और धर्म का प्रथम सोपान-सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

कारण - कार्य संबंधी चर्चा करते हुये अब हम कुछ चर्चा कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा के बारे में करते हैं। शास्त्र में इसतरह के अनेक शब्द पढ़ने में आते हैं परंतु उन शब्दों का अर्थ न समझने के कारण उलझन होती है, अनेक प्रश्न मन में उठते हैं।

ऐसे अनेक व्यक्ति दिखायी देते हैं जो बड़े उत्साह के साथ जिनागम का अभ्यास करने हेतु ग्रंथों का वाचन प्रारंभ करते हैं, परंतु उनका अर्थ और मर्म समझ नहीं पाने के कारण उनका उत्साह ठंडा पड़ता है और स्वाध्याय करना भी बंद हो जाता है। स्वाध्याय करके स्वयं का स्वरूप समझ लेने के बजाय पूजा, दान, उपवास, यात्रा आदि क्रियायें आसान लगने लगती हैं। अन्य पहचानवाले लोग भी वाहवा करते हैं और यह जीव उसी में संतुष्ट होकर, हम 'धर्म' कर रहे हैं मानकर वृथा अभिमान और समाधान धारण कर लेते हैं। परंतु आत्मा का धर्म आत्मा में है और आत्मा को जानने से वह प्रकट होता है।

जिनागम का अभ्यास कुछ बहुत कठिन बात नहीं है। विशिष्ट पद्धति से क्रम क्रम से एक एक सिद्धांत सीखते जायेंगे तो कुछ कठिनाई नहीं लगती, अत्यंत रोचक हैं तथा बुद्धि और तर्क की कसौटी पर खरे उतरनेवाले ये तत्त्व हैं। उसमें से न्याय, तर्कसंगत और युक्तिसंगत सिद्धांत, उनकी बारिकाइयां पढ़ते समय आनंद आता है, अधिकाधिक पढ़ने की रुचि उत्पन्न होती है, ज्ञान तीक्ष्ण होता है, बुद्धि की प्रगल्भता बढ़ती है और स्वयं के संबंध में इतनी सारी सहज, सुंदर, सम्यक् जानकारी से हम वंचित रह गये थे इसका सखेद आश्चर्य लगने लगता है।

हां, तो हम कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा के संबंध में बोल रहे थे। तुम कहोगी, 'परमात्मा के ये प्रकार हमें पता नहीं हैं। हम तो सकलपरमात्मा और निकलपरमात्मा दो भेद जानते हैं। कल यानि शरीर, सकल यानि शरीरसहित अरहंत परमात्मा सकलपरमात्मा है और निकल यानि शरीररहित सिद्धपरमात्मा निकलपरमात्मा है।'

तुम सोच रही हो उस प्रकारके ये भेद नहीं है। जरा ध्यान देकर पढ़ना। पर्याय में परमात्मदशा प्रकट करना अर्थात् अरहंत और सिद्ध दशा 'कार्यपरमात्मा' है। यह दशा-अवस्था-पर्याय-

कार्य बाह्य अन्य चीजों में से, कर्म के क्षय में से, निमित्त में से प्रकट नहीं होती परंतु उपादानगत योग्यता में से प्रकट होती है।

परमात्मदशारूप जो पर्याय है उसका उपादान कारण ही 'कारणपरमात्मा' है। पांच समवायों की भाषा में कहना हो तो 'स्वभाव' नाम का समवाय कारण है वह कारणपरमात्मा है। निमित्त-उपादान की भाषा में कहना हो तो उपादान ही कारणपरमात्मा है।

प्रत्येक जीव का त्रिकाली स्वभाव-ज्ञायक भाव-परमपारिणामिक भाव-निजध्रुवशुद्धात्मा समान है अर्थात् प्रत्येक जीव स्वभाव से कारणपरमात्मा है।

मैं भी स्वभाव से कारणपरमात्मा हूँ इतना सुनकर हर्षित मत हो जाना। 'कारण' तभी कहा जायेगा जब 'कार्य' होगा। कार्य बिना कारण किसका? जिसने परमात्मदशारूप 'कार्य' प्रकट किया हो उसीके 'कारणपरमात्मा' कह सकेंगे। पहले हमने उपादान कारणों की चर्चा में देखा था कि तत्समय की पर्याय की योग्यता ही सच्चा कारण-निश्चय कारण है और त्रिकाली उपादान तो उपचार कारण-व्यवहार कारण है। सच्चा कारण ही कार्य का नियामक है।

परमपारिणामिक भाव अर्थात् त्रिकाली उपादानरूप कारणपरमात्मा तो प्रत्येक जीव में है, परंतु कुछ ही जीव परमात्मदशा को प्राप्त हुये हैं। जिस जीव ने ध्रुवस्वभाव की दृष्टि-उसमें स्वपना स्थापित किया अर्थात् पुरुषार्थ किया और परमात्म दशा प्रकट की उसकी उस समय की पर्याय की योग्यता को - क्षणिक उपादान को सच्चा कारणपरमात्मा और उस पर्याय को कार्यपरमात्मा कहते हैं।

कोई अन्य परमात्मा - तीर्थकर या केवली अपने कार्यपरमात्मा के कारण नहीं है, अपितु अपना 'कारणपरमात्मा' हम स्वयं ही है।

कारण-कार्य व्यवस्था की यह सारी चर्चा करने का प्रयोजन ही यह है कि यह जीव अनादि काल से मिथ्यात्व अवस्था में अपने कार्य का कारण अन्य द्रव्यों में ढूँढ़ता आया है। शास्त्र में से निमित्तकथन पढ़कर योग्य अर्थ करने के बदले उसने

निमित्ताधीन एकांत दृष्टि पुष्ट की और इसकारण उसका उपयोग कभी स्वसन्मुख हुआ ही नहीं। सदा-सर्वदा परसन्मुख दृष्टि और पर की महिमा के कारण यह 'ज्ञायक' स्वयं के संबंध में अनभिज्ञ ही रह गया-अनाड़ी रह गया।

कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा के समान शास्त्र में कारणसमयसार और कार्यसमयसार शब्द भी आते हैं। समय शब्द के अनेक अर्थ हैं। समय काल को कहते हैं व्यवहार काल का यह नाप है, शास्त्र को भी समय कहते हैं, समय अर्थात् द्रव्य-छहों द्रव्यों को समय कहते हैं। सब द्रव्यों में सारभूत जीवद्रव्य-निजद्रव्य में स्वयं समयसार हूँ। जीवद्रव्य में निजशुद्धात्मा को समयसार कहा है। स्वशुद्धात्मा की दृष्टि, ज्ञान, रमणता को स्वसमय अर्थात् कार्यसमयसार कहते हैं और स्वशुद्धात्मा को कारणसमयसार कहते हैं।

इससे एक बात ख्याल में आती है कि प्रत्येक द्रव्य के 'कार्य' का 'कारण' उस द्रव्य में ही विद्यमान है। किसी को भी स्वयं के कार्य के लिये पराधीन होकर पर की तरफ आशाभरी निगाहों से ताकने की जरूरत नहीं है।

नियमसार ग्रंथ में कारणनियमसार और कार्यनियमसार की चर्चा की हुयी है। नियमसार कुंदकुंदाचार्य ने लिखा हुआ परम आध्यात्मिक ग्रंथ है इस बात का तुम्हें पता होगा ही। इस ग्रंथ पर मुनिराज पद्मप्रभमलधारीदेव ने विश्लेषणात्मक भाष्य अर्थात् टीका लिखी हुयी है।

जो नियमरूप से करनेयोग्य है वह 'नियम' है। अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र यही नियम है। सम्यक् अर्थ करने तथा विपरीतता का खंडन करने हेतु 'सार' कहने में आता है। रत्नत्रय नियम है। व्यवहार रत्नत्रय अर्थात् रागभाव रत्नत्रय नहीं है परंतु उसका सहचर होने से उपचार से रत्नत्रय कहा जाता है। उसे कोई करने योग्य न मान ले इस हेतु 'सार' शब्द जोडा है, जो निश्चय रत्नत्रय का सूचक है।

शुद्ध रत्नत्रयरूप 'नियम' मोक्षमार्ग है, वह कार्यरूप है, यही कार्यनियमसार है। उसका 'कारण' कौन है बताते हैं। कारण उसे ही कहते हैं कि जिसके आश्रय से कार्य प्रकट होता

क्रमबद्धपर्याय – स्वरूप

पत्रांक १२

५ जुलाई २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

बहुत दिनों से जिसकी चर्चा सुनने-पढ़ने के लिये तुम उत्सुक हो रही हो उस 'क्रमबद्धपर्याय' विषय की चर्चा हम आज से प्रारंभ कर रहे हैं। 'सुनने के लिये' इसलिए लिखा है कि इस विषय पर डॉ. हुकमचंद भारिल्ल लिखित क्रमबद्धपर्याय पुस्तक के आधार से मैंने जो क्लास चलाया था-प्रवचन दिये थे उसके ९० मिनट के २८ कॅसेट्स के सेट्स तैयार हैं। तुम्हें भेज रही हूँ, निमित्तोपादान की तरह इन्हें भी ध्यान से सुनना।

सर्व प्रथम 'क्रमबद्धपर्याय' कहते किसे हैं इस बात को हम देखते हैं। स्वभावपर्याय, विभावपर्याय के समान यह कोई पर्याय होगी ऐसा मत सोचना। यह पर्याय नहीं है अपितु वस्तु की परिणमन संबंधी व्यवस्था है। उसकी परिभाषा देखते हैं -

“जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस निमित्त की उपस्थिति में, जिस पुरुषार्थपूर्वक, जैसी होनेवाली होगी; उसी द्रव्य की, वही पर्याय, उसी क्षेत्र में, उसी काल में, उसी निमित्त की उपस्थिति में, उसी पुरुषार्थपूर्वक, वैसी ही होती है, अन्य प्रकार से नहीं। वस्तुव्यवस्था के इस नियम को क्रमबद्धपर्याय कहते हैं।”

इस परिभाषा से यह ज्ञात होगा कि यह मात्र पर्याय यानि कार्य संबंधी व्यवस्था नहीं है अपितु इसमें सर्व प्रकार के कारणों की अर्थात् उपादान-निमित्त की; द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, निमित्त की; पांचों ही समवायों की और साथ साथ कार्य की यानि पर्याय की भी चर्चा है। गत अनेक पत्रों द्वारा जिन कारणों की हमने विस्तार से चर्चा की है उन सब कारणों तथा कार्य की सुव्यवस्थित व्यवस्था का स्वरूप कथन करनेवाला यह सिद्धांत है।

क्रम अर्थात् एक के बाद एक, क्रम से, एकसाथ नहीं और बद्ध यानि नियमित अर्थात् निश्चित, नक्की और पर्याय का अर्थ

है द्रव्य या गुण का परिणमन । इसी को आत्मख्याति शास्त्र में क्रमनियमित कहा है ।

इस विश्व के प्रत्येक द्रव्य की सत्ता अनादिअनंत है । यह सत्ता उत्पाद-व्यय - ध्रौव्यात्मक है । प्रत्येक समय में भूवीन पर्याय का उत्पाद, पूर्व पर्याय का व्यय होता रहता है और द्रव्य अपने स्वरूप से कायम रहता है ।

यहाँ सवाल उठता है कि वस्तु के इस परिणमन संबंधी कुछ स्वभावगत नियम भी है या हम अपनी इच्छानुसार चाहे जैसा परिणमन कर सकते हैं ?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि प्रत्येक द्रव्य उसके स्वयं के निश्चित क्रम के अनुसार परिणमित होता है । यह क्रम प्रत्येक द्रव्य का अपना अपना निश्चित है । प्रत्येक परमाणु का, प्रत्येक जीव का तथा अन्य सभी द्रव्यों का यह पर्यायक्रम अपना अपना भिन्न भिन्न है । इसी कारण से वर्तमान काल में विविध द्रव्यों की पर्यायों में विभिन्नता पायी जाती है ।

जीवों की ही बात लो । कोई एकेंद्रिय पर्याय में तो कोई द्वीन्द्रियादि पंचेंद्रियपर्यंत अन्य अन्य पर्यायों में तो अन्य अनंत जीव सिद्ध पर्याय में हैं । कोई सम्यग्दर्शन प्राप्त करके अल्प काल में ही मोक्ष अवस्था प्रकट करता है तो कोई कालांतर से मोक्ष अवस्था प्रकट करता है ।

श्रेणिक राजा और चेलना राणी की कथा तो तुमने सुनी ही है । चेलनाराणी सम्यग्दृष्टि थी तो श्रेणिक राजा गृहीत मिथ्यात्वी । यशोधर मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डालने के परिणाम में उसे सातवें नरक का आयुबंध हुआ । जब दिगंबर मुनि का उपसर्गजयी स्वरूप देखा, महावीर भगवान के समवशरण में जिनधर्म का और वस्तुस्वरूप का ज्ञान हुआ तब वे सम्यग्दृष्टि हुये, उन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट किया इतना ही नहीं, तीर्थकर प्रकृति का बंध प्रारंभ हुआ । सातवे नरक की आयु की स्थिति घटकर पहले नरक की आयु बांधी ।

वर्तमान में श्रेणिक राजा का जीव पहले नरक में है । वहाँ चौन्यासी हजार वर्ष की आयु भोग कर वह इसी भरतभूमि के

उत्सर्पिणी काल का पहला तीर्थकर होगा। श्रेणिक राजा के पहले जो सम्यग्दृष्टि बनी थी वह चेलनाराणी स्वर्ग की सागरों की आयु भोगते हुये चौथे गुणस्थान में रहेगी पश्चात् कालांतर से मोक्ष प्राप्त करेगी।

कोई सम्यक्त्व प्राप्त करके उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है तो कोई सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में जाकर अर्धपुद्गल परावर्तन काल तक, जो अनंत काल है, तब तक, जन्म मरण रूपी संसार में ही रूलता रहता है और पश्चात् सम्यक्त्व प्राप्त करके मुनि बनकर मोक्ष प्राप्त करता है।

जीवों के बाह्य आचरण तथा राग भावों में भी विविधता पायी जाती है। किसी के बाह्य आचरण की ओर देखकर वह अविरत सम्यक्त्वी है या नहीं इसकी पहचान नहीं हो सकती। भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि, तद्भव मोक्षगामी थे फिर भी आदिनाथ भगवान के समवशरण में उनकी दिव्यध्वनि सुनना छोड़कर साठ हजार वर्षों तक छह खंड जीतने के लिये गये थे।

उनका पुत्र मारीचि मुनिदीक्षा धारण करके समवशरण में दिव्यध्वनि सुना करता था। सम्यक्त्व के बिना भ्रष्ट होकर लगभग एक कोडा कोडीसागर वर्षों तक भवभ्रमण करके सिंह की पर्याय में उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया। उसके दस भव पश्चात् चौबीसवें तीर्थकर महावीर होकर उस जीव ने मोक्ष प्राप्त किया। इससे सिद्ध होता है कि किसी ने बाह्य व्रतों का अंगिकार किया होगा तो वह सम्यग्दृष्टि होगा ही ऐसा है नहीं और बाह्य मुनिव्रत अंगिकार किये बिना ही जो अपने को मुनि मानता हो तो वह बात भी असत्य है। करणानुयोग पुस्तक में हमने इस विषय पर शास्त्रोक्त जानकारी हासिल की थी।

हम देख रहे थे कि भिन्न भिन्न जीवों की पर्यायों में तथा पर्यायक्रम में विभिन्नता पायी जाती है। पर्यायों का यह निश्चित क्रम सुव्यवस्थित है, स्वाभाविक अर्थात् सहज है, किसी ने बनाया नहीं है।

विश्व के सभी द्रव्यों के अनादि अनंत सभी पर्यायों तथा उनके पर्यायक्रम को अर्थात् क्रमबद्धपर्याय को सर्वज्ञ भगवान

अपने केवलज्ञान द्वारा युगपत् एक ही समय में स्पष्ट जानते हैं । परंतु केवलज्ञानी मात्र जानते ही हैं उन पर्यायों को करते नहीं है । उन्होंने जाना है इसलिए द्रव्यों को वैसा ही परिणमन करना पड़ता है ऐसा है नहीं । द्रव्य तो स्वतंत्रता और स्वाधीनता से परिणमन करते हैं ।

नियमसार ग्रंथ में कहा है, 'णाणा जीवा णाणा कम्मा.....' अर्थात् जीव नाना हैं - अनेक प्रकारके हैं और उनके कर्म, भाव अनेक प्रकारके हैं । सभी जीव द्रव्यदृष्टि से समान हैं । गुणों की अपेक्षा भी प्रत्येक जीव में अनंत गुण हैं, उनमें एक भी कम अधिक नहीं है और सर्व गुण सभी जीवों में समान हैं । परंतु फिर भी सभी जीवों के अनंत गुणों की किसी विशिष्ट समय की पर्यायें देखने पर किसी एक जीव की पर्यायें अन्य के समान नहीं पायी जाती । प्रत्येक जीव का अनादि अनंत पर्यायों का क्रम एक का दूसरे से मिलता नहीं है । प्रत्येक का अपना अपना पर्यायक्रम सुनिश्चित है ।

माला के मोती की तरह अर्थात् जिसतरह मोती की माला का प्रत्येक मोती अपने विशिष्ट स्थान पर होता है, आगे पीछे नहीं हो सकता, उसी तरह प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय अपने स्थान पर ही उत्पन्न होती है वह उसका जन्मक्षण है । हमारी इच्छा के कारण या भावना करने से या अन्य किसी भी उपायों से यह क्रम बदलता नहीं है ऐसी ही वस्तुव्यवस्था है ।

क्रमबद्धपर्याय वस्तुस्वरूप संबंधी एक सिद्धांत है । इसका योग्य स्वरूप समझ में न आने के कारण, आज तक स्वयं को दूसरे के परिणमन का कर्ता मानने के कारण तथा स्वयं के इच्छानुसार स्वयं का भी परिणमन बदलने के मिथ्या अभिमान के कारण अनेक लोगों को इस सिद्धांत का स्वीकार करने में भय लगता है । वे कहते हैं कि, 'सब कुछ निश्चित होगा, तो हमारे हाथ में करने के लिये क्या रह गया?' या 'भगवान ने जैसा जाना है वैसा और उसी समय होगा तो फिर हम प्रयत्न भी क्यों करें? उद्यम क्यों करें? तुम उपदेश भी क्यों दे रही हो?'

इसी प्रकार की अन्य भी अनेक भ्रांतियां उत्पन्न होने का एक ही कारण है, वह है इस सिद्धांत संबंधी अज्ञान! क्रमबद्धपर्याय के

विषय में यथार्थ ज्ञान होने पर दूसरे द्रव्य की तथा स्वयं की पर्यायें करने संबंधी कर्तृत्वबुद्धि और उन पर्यायों को बदलने की खोटी बुद्धि के कारण उत्पन्न होनेवाले संकल्प विकल्प मिटते हैं, मिथ्यात्व का अभाव होता है। क्रमबद्धपर्याय को समझना यही पुरुषार्थ है, जो मोक्षमार्ग का प्रारंभ करने के लिये अत्यावश्यक है।

यह सिद्धांत समझने से अकर्ता स्वभाव का निर्णय होता है उसके पश्चात् ही ज्ञायक स्वभाव से तन्मय होकर निर्विकल्प आत्मानुभूति प्रकट होती है। स्वामीजी ने कहा है कि, 'ज्ञान स्वभाव के पुरुषार्थ द्वारा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करके पर्याय स्वसन्मुख होती है, तब उस पर्याय में पांचों ही समवाय होते हैं - स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, होनहार और निमित्त होता है कर्म के उपशमादि।' वे कहते हैं, 'देखो यह वस्तुस्थिति! पुरुषार्थ भी नष्ट नहीं होता और क्रम भी नहीं टूटता। ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से सच्चा पुरुषार्थ होता है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल पर्यायों का क्रम शुरू होता है।'

क्रमबद्धपर्याय मात्र काल का या मात्र नियति का दर्शक नहीं है परंतु उसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, निमित्त अर्थात् पांचों समवायों की सुनिश्चितता होती है। जिनागम में स्थान स्थान पर, चारों अनुयोगों में, स्तुति-भजनों में यह सिद्धांत बताया है।

जिसे क्रमबद्धपर्याय का यथार्थ ज्ञान नहीं है वह अज्ञानी क्रमबद्धपर्याय के नाम से अपना एकांत नियतवादरूप अज्ञान और मिथ्यात्व पुष्ट करता है। गोम्मटसार ग्रंथ में कहा है कि यह तो स्वच्छंदी जीवों का एकांत नियतवाद है।

जो जीव सर्वज्ञ को नहीं मानता, ज्ञानस्वभाव का निर्णय नहीं करता, जिसने अंतरोन्मुख होकर समाधान नहीं किया है, जिसका विपरीत भावों संबंधी उल्हास कम नहीं हुआ है और 'होनेवाला है वही होगा' कहकर स्वच्छंदी होकर जो मिथ्यात्व का पोषण करता है वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है — ऐसा शास्त्रवचन है।

इससे सिद्ध होता है कि क्रमबद्धपर्याय एकांत नियतवाद नहीं अपितु सच्चा अनेकांत बतानेवाला स्याद्वाद है।

अनेक लोग मानते हैं कि विशिष्ट घटना विशिष्ट काल में होनेवाली होगी तो वह निश्चित ही होगी, भले उसका निमित्त कुछ भी हो । जैसे, जिसकी आयु पूरी हुयी हो वह कैंसर से मरेगा या हार्ट अटॉक से या अकस्मात से, भारत में मरेगा या अमरिका में । यह मान्यता पूर्णतः गलत है ।

क्रमबद्धपर्याय केवल काल का ही कथन नहीं करता परंतु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पुरुषार्थ, निमित्त, होनहार इस सभी बातों की सुनिश्चितता दर्शाता है । आयु पूर्ण होने पर जो व्यक्ति जिस काल में अर्थात् जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस निमित्त से, जिस प्रकार से मरनेवाला होगा ठीक उसी तरह मरेगा अन्य स्थान में या अन्य निमित्त से या अन्यप्रकार से नहीं मरेगा ।

प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक समय में एक एक पर्याय होती है और काल अनादि अनंत है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि भूत, वर्तमान, भविष्यकाल के जितने अनंत समय हैं उतनी प्रत्येक द्रव्य की तीनों काल की पर्यायें हैं । उसमें से प्रत्येक पर्याय अपने स्वसमय में खचित है, निश्चित है । उस पर्याय को वहाँ से हटाकर आगे पीछे कर ही नहीं सकते । पर्याय की यह अचलता अज्ञानी के ख्याल में न आने से वह काल की ओर देखता रहता है, उतावलापन करता है ।

मिथ्यात्व और कर्तृत्वबुद्धि के अभिमान के कारण उसे काल की निश्चितता का अर्थात् पर्याय विशिष्ट समय में ही होगी इस बात का विश्वास नहीं आता । कोई जीव विशिष्ट पर्याय समय से पहले लाना चाहता है । जैसे, भगवान आदिनाथ की दिव्यध्वनि में मारीचि चोबीसवां तीर्थकर होगा ऐसा कथन सुनकर वह क्रोधित हो उठा । 'मैं दूसरा तीर्थकर बन के दिखाऊंगा' कहकर दुरभिमान से उसने ३६३ पाखंड मतों की स्थापना की । मिथ्यात्व के कारण लगभग १ कोडाकोडी सागर वर्षों तक भवभ्रमण करके पश्चात् वह चोबीसवां तीर्थकर हुआ ।

कुछ लोग अनचाही घटना संबंधी आगाही सुनकर उसे टालने में अपनी पूरी सामर्थ्य का प्रयोग करते हैं । जैसे, द्वारकानगरी बारह वर्ष बाद जलेगी, द्वीपायन मुनि के निमित्त से

जलेगी, मद्य पीकर मत्त हुये यादव राजकुमार उनके क्रोध में कारण होंगे आदि सब बातें भगवान नेमिनाथ की दिव्यध्वनि में सुनकर वह घटना टालने के लिये जो जो प्रयत्न किये गये उनका क्रमिक विकास होते होते ठीक उसी समय उन्हीं निमित्तों से वह घटना वैसी ही घटित हुयी ।

हमने निमित्त नैमित्तिक संबंध नामक प्रकरण में इस घटना की विस्तार से चर्चा की ही थी ।

भविष्य की बात तो जाने दो, भूतकाल में जो बातें बन चुकी हैं उस संबंधी हम कितने संकल्प विकल्प करते रहते हैं यह तो हमारे सब के अनुभव की बात है । यदि ऐसा करते तो वैसा हो जाता, इस डॉक्टर के बदले उस फलाना डॉक्टर के पास जाते तो शायद उस व्यक्ति के प्राण बच जाते इसतरह की बिना काम की कल्पनाओं में अपने आयुष्य का अमूल्य समय हम बिना वजह बरबाद करते रहते हैं । जो बन चुका है उसे कभी भी बदल नहीं सकते । इस बात का हमें प्रत्येक को पूरा विश्वास होता है फिर भी मन के ये खेल चलते रहते हैं ।

खाली मन कुछ भी बातें सोचता रहता है । जो व्यक्ति नियमित स्वाध्याय, तत्त्वचिंतन, मनन, पठन करता है उसके मन में दिनरात उसीके विचार चलते रहते हैं । परंतु खाली मन कल्पनाओं द्वारा विविध संभावनायें चितारकर कल्पना ही का साम्राज्य निर्माण करता है जिसके कारण जीव चिंतित होता है, आकुलित होता है, रागद्वेष करता है, दुःखी होता है । वर्तमान में जीने के बदले ये जीव भूतकाल में या कल्पना के भविष्यकाल में ही रमते हैं ।

कुछ लोग भविष्य बतानेवाले ज्योतिषियों के जिम्मे रहकर तथाकथित भविष्य की दुर्घटना टालने के लिये जो जो उपाय बतायें जाते हैं उन्हें करने लग जाते हैं । बुवाबाजी, कुदेव, कुगुरु, हिंसादि पाप आदि के पीछे लगकर मिथ्यात्व रूपी जड़ मजबूत करके संसाररूपी वृक्ष का जतन करते हैं ।

जो अपनी मर्जी के अनुसार पर्याय को पलटाना चाहते हैं वे वस्तुस्वरूप संबंधी अज्ञान हैं, सर्वज्ञ का स्वरूप वे नहीं जानते,

क्रमबद्धपर्याय का उन्हें ज्ञान तथा निर्णय नहीं है, निमित्त से ही कार्य होता है और निमित्त बदलने से कार्य भी बदलेगा ऐसी उनकी मिथ्या मान्यता है ।

तुम कहोगी, 'तो क्या सिर्फ देखते रहना ?'

केवल देखते रहने के लिये - ज्ञाता दृष्टा बनने के लिये बहुत भारी पुरुषार्थ की जरूरत होती है । अंदर से इच्छा तो उत्पन्न हो रही है, भय-संताप तो लग रहा है परंतु क्या करे कुछ करना नहीं है ना, नहीं तो कर देते ऐसे विचारों के साथ परवशता से दुःखी-आकुलित होकर देखते रहना वह सच्चे ज्ञाता दृष्टा का लक्षण नहीं है । कर्म के उदय में दुःखी होकर भोगना तो कर्मफलचेतना हुयी । ज्ञान स्वयं को कर्म का भोक्ता अनुभव करते हुये उसका फल भोगने में लीन होता है ।

ऐसे प्रसंग में जीव रागीद्वेषी होकर कुछ तो उपाय करना चाहता है परंतु परद्रव्य की क्रिया तो कर नहीं सकता; परंतु रागद्वेष रूप परिणमन करता है, उसे करने योग्य भी मानता है । यह तो कर्मचेतना हुयी । ज्ञान रागद्वेष विभाव भावों में अटककर अपने को अनुरूप ही अनुभवने लगता है ।

सम्यग्दृष्टि जीव को भी उसकी भूमिकानुसार - उसके गुणस्थानानुसार चरित्रमोह कर्म के उदय में कम अधिक सुख दुःख और रागद्वेष तो होते हैं । परंतु अब उसे उन संयोगी भावों से भिन्न स्वयं के ज्ञाता दृष्टा अकर्ता स्वभाव की पहचान और अनुभूति होने के कारण यदि उसे कुछ करने का भाव भी उत्पन्न हुआ तो भी उसे कर्तृत्वबुद्धि नहीं होती अर्थात् मैं पर का कर सकता हूँ इसप्रकार का अज्ञान और मिथ्याबुद्धि उसके नहीं होती । उसकी ज्ञानचेतना है । अज्ञानजनित रागद्वेष उसे उत्पन्न नहीं होते । अल्प रागद्वेष होते हैं । परंतु उसको उनका स्वामीपना नहीं होता, ज्ञातास्वभाव से उनके भिन्न अस्तित्व का भान उसे सदा वर्तता है ।

तुमने पूछा था कि क्या मात्र देखते रहना है? जिसने क्रमबद्धपर्याय का तथा उसके द्वारा सर्वज्ञता का और सर्वज्ञ स्वभाव का निर्णय स्वसन्मुखता पूर्वक किया है उसका ही निर्णय

सत्य है। शास्त्र में से पढ़कर क्रमबद्धपर्याय का सच्चा निर्णय नहीं हो सकता। संयोगों की तरफ देख देखकर 'होने योग्य हुआ, हम क्या कर सकते हैं?' कहना अज्ञान का ही द्योतक है। कोई कहता है कि भगवान के इच्छानुसार सब कुछ हो रहा है तो कोई कहता है कि नियति बलवान है, सब कुछ दैव के आधीन है और कोई शास्त्र पढ़कर शास्त्र की भाषा में कहता है कि क्रमबद्ध होनेवाला ही होगा तो ये तीनों एकसमान है, एकांत मिथ्यादृष्टि हैं।

हमने पहले ही देखा है कि क्रमबद्धपर्याय मात्र नियति का ही द्योतक नहीं है। परंतु उसमें पांचों ही समवाय सुनिश्चित हैं। सर्व समवायों का स्वीकार करके किसी एक कारण की मुख्यता से कथन होगा तो ही वह योग्य है, परंतु सर्वथा एक ही कारण से कार्य की उत्पत्ति मानना और अन्य समवायों को अनिश्चित और पराधीन मानना गलत है।

संयोगों को तो ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी पलटा नहीं सकते क्योंकि संयोग तो परद्रव्य हैं। उन्हें कौन पलटा या हटा सकता है? परंतु संयोगीभाव-मोहरागद्वेषरूप विभावभाव तो जीव करता है। अज्ञानी अवस्था में मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी राग द्वेषरूप संयोगी भाव उत्पन्न होते हैं परंतु ज्ञानी जीवों के मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के तो भाव ही उत्पन्न नहीं होते और अन्य रागद्वेष भी बढ़ती हुयी वीतरागता के साथ कमती होते जाते हैं।

दोनों में अंतर ख्याल में आ रहा है ना? संयोग तो परद्रव्य है जिनका जीव के साथ कुछ काल तक संबंध आता है परंतु संयोगीभाव तो संयोगों की तरफ देखकर उत्पन्न होनेवाले जीव के विभावभाव हैं। यह बात ध्यानपूर्वक समझ लो कि कोई भी संयोग जीव को मोह, राग, द्वेष, उत्पन्न कराने में और सुख दुःख देने में समर्थ नहीं है। परंतु जीव ही स्वयं संयोगों में इष्ट अनिष्टपने की कल्पना करके मोही, रागी, द्वेषी होकर दुःखी होता है।

जिसने स्वयं के स्वाधीन, सहज, सुखमय स्वरूप का अनुभव किया है उसके संयोगों से सुखदुःख होता है इसतरह की मिथ्या मान्यता नहीं होती। संयोगों की तरफ देखते रहने का भी

अब उसे रस नहीं रहता । हां, जिसप्रकार रोग का इलाज करने के लिये हम मजबूरी से कडवी औषधि और इंजेक्शनों का सेवन करते हैं उसप्रकार सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव भी सांसारिक प्रसंगों में विविध कार्य करते हुये दिखायी देते हैं परंतु उसमें भी उनकी ज्ञातादृष्टा की धारा अखंडपने से चलती रहती है ।

इसप्रकार से तुम्हारे ख्याल में यह बात आ गयी होगी कि क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत समझना कितना आवश्यक है ।

क्रमबद्धपर्याय का स्वरूप जानते ही विविध संयोग देखकर या विविध लोगों के विविध परिणाम देखकर उत्पन्न होनेवाले आश्चर्य और आकुलता कम होते हैं । स्वयं के तथा अन्य व्यक्ति के परिणाम बदलने के प्रयत्न और इच्छा कम होकर दृष्टि अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव पर जाती है । क्रमबद्धपर्याय जानने से पर्यायबुद्धि नष्ट होकर द्रव्यदृष्टि होती है । सर्वज्ञ स्वभाव का तथा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय होते ही स्वानुभूति प्रकट होती है, जीव अकर्ता हो जाता है, कर्तृत्वबुद्धि नष्ट हो जाती है । स्वयं में ही एकाग्रता होने से - रमणता होने से और पूर्णरूप से स्थिरता होने से सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है - केवलज्ञान उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण विश्व की सभी क्रमबद्ध पर्यायें साक्षात् अपने ज्ञान में झलकने लगती हैं ।

इसतरह प्रत्येक आत्मारथी जीव को क्रमबद्धपर्याय का स्वरूप जानकर स्वसन्मुखतापूर्वक उसका निर्णय करना अत्यावश्यक है ।

अधिक चर्चा आगामी पत्र में करेंगे ।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

क्रमबद्धपर्याय - एक शाश्वतसत्य

पत्रांक १३

१५ जुलाई २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

क्रमबद्धपर्याय की चर्चा तुम अत्यंत उत्साह के साथ पढ़ रही हो और साथ साथ इस विषय की मेरी कॅसेट भी सुन रही हो ऐसा तुमने लिखा है । मोना, तुमने उस कॅसेट में हम जो मंगलाचरण करते थे उसे लिखकर भेजने को कहा है । वे तो कार्तिकियानुप्रेक्षा ग्रंथ की ३२१, ३२२ और ३२३ नंबर की गाथायें हैं । रोज सुनकर वे याद हो जायेगी फिर भी शुद्ध शब्दोच्चारण के लिये लिखकर भेज रही हूँ ।

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।

णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥३२१॥

तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि ।

को सक्कदि वारेदुं इंदो वा तह जिणंदो वा ॥३२२॥

एवं जो णिच्छयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।

सो सद्विड्ढी सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्विड्ढी ॥३२३॥

ये गाथायें प्राकृत भाषा में हैं, अर्थ ख्याल में आया ही होगा । वह इसतरह है - जिस जीव का, जिस देश में, जिस काल में, जिस विधि से जो जन्म अथवा मरण जिनेन्द्र भगवंतों ने निश्चतरूप से जाना है, उस जीव का उसी देश में, उसी काल में, उसी विधि से वह अवश्य होता है । उसे टालने में इन्द्र अथवा जिनेन्द्र कौन समर्थ है? अर्थात् कोई भी उसे टाल नहीं सकता । इसतरह से जो सर्व द्रव्यों को और उनकी सर्व पर्यायों को जानता है (अर्थात् यह नियम प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय पर लगता है ऐसे जो जानता है) वह सम्यग्दृष्टि है और जो इसमें शंका करता है वह मिथ्यादृष्टि है ।

कॅसेट के नाम से एक घटना याद आ गयी । हमने क्रमबद्धपर्याय का क्लास २० जनवरी २००१ से प्रारंभ किया था, रोज सुबह ८॥ से १० तक यह चलता था । २६ जनवरी

को प्रचंड भूकंप हुआ था यह तो सर्वविदित ही है। उस समय मैं क्लास ले रही थी। मेरा नीचे का आसन डगमगाने लगा। क्या हो रहा है ऐसा विचार मन में आ रहा था तभी सामने बैठे हुये मुमुक्षुओं के चेहरे के भाव, थोड़ी भीति, थोड़ी हलचल मेरे ख्याल में आ गयी। मैंने अपना वक्तव्य जारी ही रखा था। हम सभी ने अत्यंत निश्चिंतता से स्वाध्याय चालू ही रखा। लगातार दो मिनट तक भूकंप होता रहा। उस दिन की कॅसेट सुनोगी तो तुम्हारे ख्याल में आयेगा।

देखो तो सही, क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत समझ में आने पर संकट का भय, मरण का भी भय नष्ट हो जाता है, निराकुलता की प्राप्ति होती है।

क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत सिद्ध करने के लिये सर्वज्ञता सब से प्रबल हेतु दिया जाता है, सर्वज्ञता के आधार से क्रमबद्धपर्याय सिद्ध किया जाता है। सर्वज्ञता संबंधी अनेक मिथ्या मान्यताओं का खंडन हम पहले ही कर चुके हैं।

बीती हुई बातें - घटना तो कोई भी बदल नहीं सकता इस बात का प्रत्येक व्यक्ति विश्वास करता है, उसे मान्य करता है। परंतु भविष्यकालीन प्रत्येक घटना भी निश्चित है और वह भी निश्चित क्रम से होनेवाली है और उसे बदलने में कोई भी समर्थ नहीं है इस बात को अनेक लोग नहीं मानते, इस बात का उन्हें विश्वास नहीं है। उसे स्वीकार करने से उन्हें स्वयं का कर्तृत्व और पुरुषार्थ नष्ट होने की आशंका प्रतीत होती है, पराधीन, परवश, परतंत्र होना भासित होता है। परंतु इसमें तो अनंत स्वतंत्रता है।

पर्याय को तो द्रव्य की भी अपेक्षा नहीं है। प्रत्येक पर्याय तत्समय की पर्याय की योग्यतानुसार अर्थात् अपनी ही योग्यतानुसार स्वयं के षट्कारक से उसी प्रकार परिणमित होती है, अन्यप्रकार से नहीं ऐसी सुनिश्चितता एवं स्वतंत्रता है। यह निश्चितता जानने से हम निश्चित हो जाते हैं - आकुलता रहित और चिंता रहित हो जाते हैं। सर्वज्ञ भगवान इन सभी पर्यायों को वर्तमान में ही युगपत् स्पष्ट प्रत्यक्ष जानते हैं यह तो ज्ञान की दिव्यता है, ज्ञानस्वभाव का सामर्थ्य है।

जो जीव ज्ञान के इस सामर्थ्य का इन्कार करता है, सर्वज्ञता का अर्थात् स्वयं के सर्वज्ञ स्वरूप का स्वीकार नहीं करता उसका अज्ञान और मोह, राग, द्वेष हटते नहीं। अरहंत और सिद्ध सर्वज्ञ हैं, उनके सर्वज्ञ स्वरूप का ही पता न होगा तो उनका नामस्मरण करने से, णमोकार मंत्र की मालायें फेरने से, इतने सालों से पूजा-अर्चा करने से हमें कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होगा।

प्रवचनसार ग्रंथ में कहा है कि जो अरहंत को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है वह अपनी आत्मा को जानता है और उसका मोह यानि मिथ्यात्व लय को प्राप्त होता है - नष्ट होता है।

जो जीव अरहंत को तो मानते हैं परंतु उनके सर्वज्ञ स्वरूप संबंधी अनभिज्ञ हैं उनका अरहंतों को मानना, पूजना, नमस्कार करना सब व्यर्थ है।

प्रथमानुयोग में भविष्यसंबंधी अनेक वचन आज लिखित रूप में उपलब्ध हैं। भविष्य के उत्सर्पिणी काल में होनेवाले चौबीस तीर्थकरों के नाम, उनके माता पिता, जन्म और निर्वाण क्षेत्र इन सारों का उल्लेख जिनागम में है। मात्र तीर्थकरों के ही नहीं परंतु सभी त्रेसठ शलाका पुरुषों के नाम भी प्रसिद्ध हैं। ये शलाका पुरुष यानि विशेष व्यक्ति कौन हैं, पता है? उसे जानने से पहले उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, कालचक्र आदि की जानकारी लेते हैं।

२० कोडाकोडी सागर वर्षों का एक कल्पकाल होता है। उसमें से १० कोडाकोडी सागरों का अवसर्पिणी (उतरता हुआ) काल और १० कोडाकोडी सागरों का उत्सर्पिणी (चढता हुआ) काल होता है। सागर और कोडाकोडी का सविस्तार प्रमाण हमने 'करणानुयोग परिचय' में पढ़ा था।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में काल के छह छह विभाग होते हैं। अवसर्पिणी के पहले विभाग यानि काल को सुषम सुषमा कहते हैं। उस वक्त यहाँ भरतक्षेत्र में उत्तम भोगभूमि होती है। मनुष्य और तिर्यचों की उत्कृष्ट आयु ३ पत्य होती है तथा उनकी लम्बाई ३ कोस होती है। उस काल के अंत में आयु

२ पल्य और लम्बाई २ कोस होती है। यह काल ४ कोडाकोडी सागर का होता है।

उसके पश्चात् आनेवाले दूसरे काल को सुषमा कहते हैं। उस वक्त यहाँ मध्यम भोगभूमि रहती है। आयु शुरू में २ पल्य और अंत में १ पल्य की होती है और लम्बाई शुरू में २ कोस और अंत में १ कोस होती है। यह काल ३ कोडाकोडी सागर का होता है।

उसके पश्चात् आनेवाले तीसरे काल को सुषम दुषमा कहते हैं। उस वक्त यहाँ जघन्य भोगभूमि रहती है। आयु शुरू में १ पल्य और अंत में १ कोटी पूर्व होती है। लम्बाई शुरू में १ कोस तो अंत में ५०० धनुष्य होती है। १ पूर्व का अर्थ है सत्तर लाख छप्पन हजार करोड वर्ष या ८४ लाख गुणा ८४ लाख वर्ष। इसे १ करोड से गुणा करने पर १ कोटीपूर्व संख्या होती है। यह तीसरा काल २ कोडाकोडी सागर वर्षों का होता है।

चौथे काल को दुषम सुषमा कहते हैं। इस काल में यहाँ कर्मभूमि का प्रारंभ होता है। शुरू में आयु १ कोटीपूर्व तो अंत में १२० वर्ष की होती है। लम्बाई शुरू में ५०० धनुष्य तो अंत में ७ हाथ होती है। यह काल १ कोडाकोडी सागर में ४२००० वर्ष कम इतना होता है। इस चतुर्थ काल में जीवों का मोक्षगमन - मोक्ष प्राप्त करना - प्रारंभ होता है। चौबीस तीर्थकर इसी काल में होते हैं।

भोगभूमि का जीव चौथे गुणस्थान तक ही जा सकता है। वहाँ के सारे जीव मरकर देवगति में ही जाते हैं। मिथ्यादृष्टि मरकर भवनवासी, ज्योतिषी या व्यंतर देव होते हैं - इन्हें भवनत्रिक देव भी कहते हैं। सम्यग्दृष्टि मरकर पहले सौधर्म स्वर्ग या दूसरे ईशान स्वर्ग में जन्म लेते हैं। कर्मभूमि के जीव मरकर चारों गति में से किसी भी गति में जा सकते हैं। मनुष्य जीव पुरुषार्थ करके मोक्ष भी प्रकट कर सकता है।

पांचवें काल का नाम है दुषमा। वर्तमान में यहाँ भरतक्षेत्र में पंचम काल चल रहा है। इस काल में जन्मा हुआ जीव मोक्ष प्राप्ति का पुरुषार्थ नहीं कर सकता परंतु मनुष्य (पुरुष) मुनि

बनकर सातवें गुणस्थान तक का पुरुषार्थ कर सकते हैं। यह काल २१००० वर्षों का होता है। आयु शुरू में १२० वर्ष तो अंत में २० वर्ष होती है। लम्बाई शुरू में ७ हाथ तो अंत में २ हाथ होती है।

छठवें काल का नाम है दुषम दुषमा। यह काल भी २१००० वर्षों का होता है। इस काल में धर्म का लोप होता है। आयु शुरू में २० वर्ष तो अंत में १५ वर्ष होती है। मनुष्य की लम्बाई शुरू में २ हाथ तो अंत में १ हाथ होती है। सुषमा और दुषमा के बदले सुखमा दुखमा कहने की भी पद्धति शास्त्रों में है।

हमने देखा कि अवसर्पिणी के इन छह कालों में आयु और लम्बाई क्रमशः घटती जाती है। परंतु मजे की बात तो यह है कि मनुष्य का आहार तो बढ़ता जाता है, प्रमाण भी बढ़ता है और अधिक बार भोजन किया जाता है। प्रथम काल में हर चौथे दिन बेर जितना आहार होता है, द्वितीय काल में एक दिवस छोड़कर बेहडे जितना आहार होता है। तीसरे काल में एक दिन छोड़कर आमले जितना आहार तो चतुर्थ काल में रोज एक बार आहार होता है। पंचम काल में बार बार आहार लेता है यह बात तो अपने पर घटित हो ही रही है। छठवें काल में अति प्रचुर वृत्ति होती है, मछली आदि का आहार होता है।

ये छह काल उलटे क्रमसे उत्सर्पिणी काल में होते हैं। काल का यह क्रम किसी ने बनाया नहीं है। वह सहज नैसर्गिक क्रम है। उस उस काल में जीवों की योग्यता और शरीर की रचना भी सहज वैसी ही होती है। दोनों में मात्र निमित्त नैमित्तिक संबंध होता है।

अभी हम अवसर्पिणी के पंचम काल में हैं। वर्तमान का यह हुंडावसर्पिणी काल है। असंख्यात अवसर्पिणी बीत जाने पर एक बार आनेवाला ऐसा यह हुंडावसर्पिणी काल है। अन्य अवसर्पिणी की तुलना में यह निकृष्ट काल है। तीर्थकर जीवों के कन्या होना (वृषभदेव राजा को थी), चक्रवर्ती का मानभंग (भरत चक्रवर्ती का बाहुबली द्वारा पराजय), सभी तीर्थकरों का अयोध्या में जन्म न होना और सभी तीर्थकरों का सम्मेदशिखर से निर्वाण न होना आदि अनेक बातें इस हुंडावसर्पिणी की विशेषता है।

शलाकापुरुष ६३ न होकर कम होना भी इस काल की विशेषता है ।

प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के दुषम सुषमा अर्थात् चौथे काल में २४ तीर्थकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण और ९ बलभद्र इसतरह ६३ शलाकापुरुष होते हैं । परंतु इस चौथे काल में शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ ये तीनों तीर्थकर भी थे और चक्रवर्ती भी, इसलिए तीन कम और महावीर तीर्थकर बहुत पहले पूर्व भव में त्रिपृष्ठी नारायण थे इसलिए और एक कम इसतरह ६३ के बदले ५९ शलाका पुरुष इस चौथे काल में हुये थे ।

जिनागम में भूत, वर्तमान, भावि काल के भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्र के तीर्थकरादि के नाम प्रसिद्ध हैं, उनके पूर्वभव के नाम भी बताये हैं । यदि सब कुछ क्रमबद्ध नहीं होता तो कौन जान सकता था? ये जीव तीर्थकर होंगे यह बात निश्चित है इसका तात्पर्य यह हुआ कि उन जीवों के उस योग्य भाव होना, तीर्थकर प्रकृति बांधने योग्य षोडशकारण भाव होना भी निश्चित है, वे कौन से तीर्थकर के पादमूल में तीर्थकर प्रकृति बांधना प्रारंभ करेंगे यह बात भी निश्चित है ।

अनादि अनंत काल के सर्व अनंत तीर्थकरों, अनंत केवलीयो ने पूर्व में कौन कौन से भव धारण किये, किस भव में कब सम्यक्त्व प्राप्त किया, कब कौन सी कर्मप्रकृति बांधी, कैसे कैसे परिणाम हुये, कब केवलज्ञान हुआ ये सारी बातें सर्वज्ञ भगवान युगपत् एक समय में स्पष्ट जानते हैं ।

सर्व पर्यायें तथा उनके कारण यदि निश्चित नहीं होते तो सर्वज्ञ भी उन्हें कैसे जान पाते? और सर्व द्रव्यों की अनादिअनंत सर्व पर्यायें जिनके ज्ञान में नहीं आती हो उन्हें सर्वज्ञ संज्ञा कैसे प्राप्त होती?

अचानक होनेवाली, अनपेक्षित, अकस्मात् से होनेवाली घटनायें देखकर हम आश्चर्य करते हैं, हमें आकुलता उत्पन्न होती है । परंतु ये घटनायें और उनके कारण अन्य अन्य व्यक्तियों पर होनेवाले विविध परिणाम सब कुछ निश्चित है । सिनेमा के रील के साथ हम इसकी तुलना करते हैं ।

विशिष्ट क्रम से चित्रित की हुयी सिनेमा की फिल्म उसी क्रम से प्रदर्शित होती है, उसका क्रम नहीं बदलता। उसी प्रकार द्रव्य के अनादिअनंत पर्यायों का क्रम निश्चित है, वह बदलता नहीं है।

स्थूल दृष्टि से देखने पर जो परिणमन अव्यवस्थित दिखायी देता है, विसंगत लगता है, सूक्ष्मता से विचार करने पर वह भी सुव्यवस्थित ही होता है यह बात ख्याल में आती है। जिसप्रकार नाटक के रंगमंच पर जो दृश्य व्यवस्थित दिखाई देता है वह तो निश्चित और पूर्ण व्यवस्थित होता ही है परंतु जो दृश्य अव्यवस्थित दिखाई देता है वह भी पूर्व नियोजित और व्यवस्थित ही होता है।

जिसतरह राजमहल का दृश्य व्यवस्थित और पूर्व नियोजित होता है उसी तरह गरीब के झोपड़े का दृश्य भी पूर्वनियोजित और व्यवस्थित ही होता है। टूटे फूटे बर्तन, खटियां, फटे कपड़े आदि सारी वस्तुयें निश्चित पूर्व नियोजित स्थान पर रखनी पड़ती हैं। उसी प्रकार द्रव्य का अव्यवस्थित दिखनेवाला परिणमन भी निश्चित और व्यवस्थित ही होता है।

नाटक के प्रसंग क्रमशः आते हैं, एकसाथ नहीं। उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें क्रमशः होती हैं, एकसाथ नहीं।

नाटक में यह निश्चित रहता है कि कौनसे दृश्य के पश्चात् कौनसा दृश्य आयेगा। उसी तरह पर्यायों में भी यह निश्चित है कि कौनसी पर्याय के बाद कौनसी पर्याय होगी। जो पर्याय जब, जहाँ, जिस प्रकार से, जिस निमित्त से, जैसी होनी होगी वही पर्याय तभी, वहीं पर, उसी प्रकार से, उसी निमित्त से वैसी ही होगी, अन्यथा नहीं इसी का नाम क्रमबद्धपर्याय है।

जिसने पहले नाटक देखा हो वह प्रेक्षक जानता है कि कौन से दृश्य के बाद कौन सा दृश्य आनेवाला है। उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायों का निश्चित क्रम अपने ज्ञान द्वारा जानते हैं।

हां, परंतु एक बड़ा अंतर भी है। नाटककार या सूत्रधार ने नाटक की निर्मिति की है, उसने अपनी कल्पना से इच्छानुसार दृश्य बनाये हैं, प्रसंगों की रचना की है परंतु क्रमबद्धपर्याय को

किसी ने बनाया नहीं है, रचाया नहीं है, सर्वज्ञ ने भी उसकी निर्मिति नहीं की है। सर्वज्ञ तो केवल उसे जानते हैं और जब उनकी वाणी यानि दिव्यध्वनि सहजरूपसे खिरती है तब उसमें क्रमबद्धपर्याय का वर्णन अर्थात् वस्तुस्वरूप का विवेचन आता है। इसतरह सर्वज्ञता के हेतु द्वारा हमने क्रमबद्धपर्याय का स्वरूप देखा तथा उसकी सिद्धि की।

प्रवचनसार ग्रंथ की टीका में आचार्य अमृतचंद्र ने क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि की है। उसे हम समझेंगे। प्रत्येक द्रव्य सदा अपने स्वभाव में रहता है इसलिए 'सत्' है। द्रव्य को ही सत् कहते हैं। 'सत् द्रव्यलक्षणम्' तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है। यह सत् कैसा है? इसे बतानेवाला 'उत्पादव्ययधौव्य युक्तं सत्' सूत्र भी उसी में है। द्रव्य का स्वरूप उत्पाद, व्यय, धौव्यस्वरूप परिणाम है। परिणाम अर्थात् पर्याय को वे समझाते हैं।

जिसप्रकार प्रत्येक द्रव्य का स्वयं का विशिष्ट क्षेत्र है, उसका विस्तार यानि फैलाव है और उस विस्तार के छोटे से छोटे अंश को प्रदेश कहते हैं उसी प्रकार द्रव्य का जो अनादिअनंत काल है, जो एक अखंड प्रवाह है उसके छोटे से छोटे अंश को 'पर्याय' या 'परिणाम' कहते हैं।

यहाँ प्रदेशों के दृष्टांत से आचार्य ने पर्यायसंबंधी सिद्धांत हमें समझाया है, पर्यायों का सुनिश्चित क्रम सिद्ध किया है। जिसप्रकार द्रव्य में प्रदेशों का क्रम सुनिश्चित हैं, एक प्रदेश दूसरे प्रदेश से भिन्न है, प्रत्येक प्रदेश का अपना स्थान निश्चित है, एक प्रदेश को उठाकर अन्य प्रदेश के स्थान पर अदल बदल नहीं कर सकते अन्यथा द्रव्य का क्षेत्र खंडित होगा। उसी प्रकार द्रव्य के काल के अखंड प्रवाह में प्रत्येक पर्याय का स्थान निश्चित है, पर्यायों का क्रम निश्चित है, एक पर्याय को अपने स्थान से हटाकर अन्य पर्याय के स्थान पर अदल बदल नहीं सकते, उसमें फेरफार करने का प्रयत्न द्रव्य को काल अपेक्षा खंडित कर देगा। तब द्रव्य का द्रव्यपना नहीं रहेगा, द्रव्य का नाश होगा। परंतु ऐसा कभी हो नहीं सकता।

अज्ञानी वस्तुस्वरूप से विरुद्ध मान्यता रखकर पर्यायों में फेरफार करने का कितना भी प्रयत्न क्यों न करे, वह सारा व्यर्थ

है, निष्फल है। वस्तु की व्यवस्था अज्ञानी के मान्यतानुसार नहीं है, वह तो स्वतःसिद्ध स्वयंचलित व्यवस्था है, जिसका नाम है क्रमबद्धपर्याय। इस व्यवस्था को समझने से अज्ञान और दुःख का नाश होता है। सुखी होने का यही उपाय है।

क्रमबद्धपर्याय सभी द्रव्यों का स्वरूप है, स्वभाव है। लोकाकाश के जितने असंख्यात प्रदेश हैं, उतने ही एक एक जीव द्रव्य के प्रदेश हैं। उसी प्रकार तीन काल के जितने समय हैं उतनी ही प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें हैं अर्थात् गुण की अपेक्षा से प्रत्येक गुण की उतनी ही पर्यायें हैं। इन सर्व पर्यायों में से प्रत्येक पर्याय का स्वयं का स्वसमय निश्चित है।

जिसप्रकार लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर एक एक कालाणु खचित है, उसी प्रकार तीन काल के एक एक समय में प्रत्येक द्रव्य, गुण की एक एक पर्याय खचित है। प्रत्येक पर्याय स्वअवसर में ही प्रकट होती है, ऐसा ही द्रव्य का स्वभाव है।

इस द्रव्य स्वभाव का भान नहीं होने से अज्ञानी पर्यायों की तरफ ही देखता रहता है, उन्हें अपना स्वभाव मानता है, उनमें फेरफार करना चाहता है, उन्हीं विकल्पों में उलझा रहता है। उसकी दृष्टि स्वभाव की तरफ नहीं मुड़ती, उसे द्रव्यदृष्टि प्राप्त नहीं होती अर्थात् वह सम्यग्दृष्टि नहीं बन पाता।

द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के लिये द्रव्यस्वभाव का अर्थात् क्रमबद्धपर्याय का ज्ञान एवं उसकी प्रतीति - श्रद्धा आवश्यक है। पर्यायें निश्चित हैं इस बात के विश्वास बिना जीव निश्चित नहीं होता और निश्चित हुये बिना - निर्भार हुये बिना दृष्टि और ज्ञान की पर्याय स्वभाव की तरफ मुड़ती नहीं है, अंतर्सन्मुखता होती नहीं है उसमें एकाग्रता होती नहीं।

तुम कहोगी, 'दूसरे का कार्य रहने दो परंतु क्या मैं स्वयं का कार्य भी न करूं?' मुझे बताओ यह 'स्व' यानि 'मैं' तुमने किसे माना है? शरीर और जीव के संयोग से बने मनुष्यपर्याय अर्थात् 'असमानजातीय द्रव्यपर्याय' को 'मैं' मानकर बोल रही हो या 'मैं' अर्थात् आत्मा मानकर बोल रही हो? यदि आत्मा के अर्थ में 'मैं' शब्द का इस्तेमाल कर रही तो यह कौनसा आत्मा है? रागी, द्वेषी अशुद्ध आत्मा है या स्वभावरूप शुद्ध आत्मा है?

मेरा दूसरा प्रश्न यह है कि स्वयं का कौनसा कार्य तुम करना चाहती हो? तुम तो जीवद्रव्य, ज्ञानादि अनंत गुणों का समूह, असंख्यात प्रदेशी, अरूपी, संकोच विस्तार शक्ति से युक्त, अनादिअनंत वस्तु हो और तुम्हारा परिणमन यानि कार्य हर समय चल ही रहा है। वह करने या न करने की इच्छा व्यर्थ है उसकी आवश्यकता ही नहीं है। इच्छा की इसलिए कोई कार्य हुआ यह बात बिल्कुल नहीं है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य आदि अनंत गुणों का कार्य निरंतर चल ही रहा है। इच्छारहित वीतरागी जीवों के भी इन अनंत गुणों का कार्य निरंतर चल तो रहा है।

यदि मनुष्यपर्यायरूपी स्व का कार्य करने की इच्छा कर रही हो तो क्या आज तक के सारे कार्य तुमने इच्छा से ही किये हैं? बचपन में जो शारीरिक और बौद्धिक विकास होता गया, क्या वह पहले तय करके ही किया था? या सहज हो गया? यदि पहले से निश्चित करके करते तो दोनों का एकसमान क्यों नहीं हुआ? तुम इच्छा से ही सब कुछ करती हो तो कभी बीमार क्यों पड़ती हो? कभी दुःखी तो कभी हर्षित क्यों होती हो? हमेशा आनंद में ही रहना था, किसने मना किया है?

तुम कहोगी, 'देखो, हम चाहे जो मिष्टान्न बनाकर खाते हैं, अच्छे अच्छे कपडे पहनते हैं, चाहे जिस प्रकार से मौजमजा करते हैं।'

मुझे बताओ, तुम्हारी मर्जी के अनुसार तुमने आटे से रोटी या पुड़ी बनायी या हलवा बनाया ऐसा तुमने माना। परंतु पेट में जाने के बाद क्या तुमने तुम्हारी मर्जी के अनुसार उसका परिणमन कराया? उसमें से हड्डी, स्नायु, खून, चरबी, त्वचा, विष्टा आदि बने; तो क्या तुमने तुम्हारी इच्छानुसार ही बनाया होगा? तो फिर कभी कभी खून की कमी होने पर किसी को खून बढ़ने के लिए दवाईयां खाने की जरूरत क्यों पड़ती है?

तुम कहोगी, 'माँ, वह सब रहने दो। हमारा ज्ञान का कार्य निरंतर चल रहा है। क्या जानना और क्या नहीं जानना इतना तो हम निश्चित कर ही सकते हैं ना? तुम ही तो बारबार कहती हो कि उपयोग को पर से, राग से हटाकर स्वसन्मुख किये बिना - निजशुद्धात्मा की ओर लगाये बिना क्रमबद्धपर्याय का और सर्वज्ञताका निर्णय नहीं होगा। कम से कम इस उपयोग को तो

हम चाहे जैसा मोड़ सकते हैं ना?’

बेटियों, ‘मुझे उपयोग को स्वसन्मुख करना है’ - ऐसी वृत्ति का उठना, विकल्प आना, इच्छा उत्पन्न होना यह तो रागभाव है, आकुलता है। राग करते करते वीतरागता की प्राप्ति होना, निर्विकल्प शुद्धात्मानुभूति होना कैसे संभव है?

जिसतरह प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण की अनादिअनंत पर्यायें निश्चित हैं उसी तरह ज्ञानगुण की भी अनादिअनंत सारी पर्यायें निश्चित हैं। ज्ञानगुण की प्रत्येक समय की ‘जाननेरूप’ पर्याय-अवस्था स्वतंत्रपने से स्वयं के उपादान से होती है। स्वपर प्रकाशक शक्ति के कारण से ज्ञान की पर्याय स्वयं की योग्यता से ही प्रकट होती है। कौनसे वस्तु संबंधी-ज्ञेय संबंधी ज्ञान हो रहा है यह ज्ञान की स्वयं की तत्समय की योग्यता है। सामने ज्ञेय है इसलिए ज्ञान होता है ऐसी निमित्ताधीन पराधीनता उसमें नहीं होती। ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता।

ज्ञान की प्रत्येक पर्याय स्वाधीन है। जिस समय जिस ज्ञेय को जानने की ज्ञान की योग्यता हो, उस समय उसी ज्ञेय को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय स्वयं की निजशक्ति से उत्पन्न होती है। तुम ही कहो, शुद्धात्मा संबंधी चिंतन करना चाहते हैं तब दूसरे ही विचार मन में क्यों आते हैं? देवपूजा करते करते बीच में ही मन कहीं क्यों भटकता है? अच्छी तरह ध्यान देकर दूध गरम करते हैं, तब अचानक ध्यान कहीं चला जाता है और दूध उबलकर नीचे गिर जाता है, ऐसा क्यों? मुँह में मिष्ठान्न होने पर उसका स्वाद आने के बदले मुझे तुम्हारी याद आती है, ऐसा क्यों? तुम मेरे ज्ञान का ज्ञेय क्यों हो जाती हो? बुखार आने पर स्वादिष्ट भोजन भी कड़वा, स्वादहीन क्यों लगता है?

यह एक त्रिवार सत्य है कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, अपितु ज्ञान के अनुसार ज्ञेय जाने जाते हैं। जिसतरह द्रव्य और गुण त्रिकाल सत् हैं, उनमें कुछ भी बदलना संभव नहीं है, उसी तरह प्रत्येक समय की पर्याय भी उस उस समय की सत् है। पर्याय को उसके निश्चित स्थान से - समय से - कोई भी हटा नहीं सकता।

जिस समय वस्तुस्वरूप का, सहज कारण-कार्य व्यवस्था का अर्थात् क्रमबद्धपर्याय का ज्ञान होता है, स्वयं के ज्ञान द्वारा यह

तत्त्वनिर्णय पक्का हो जाता है, उस समय ज्ञान का उपयोग और पर्याय सहजरूप से स्व को जानती हुई प्रकट होती है, त्रिकाली ध्रुव निजशुद्धात्मा के साथ अभेद रूप होकर शुद्धात्मानुभूति प्रकट होती है। यही सम्यग्दर्शन प्राप्ति का समय है।

‘स्वयं को पहचान कर स्वयं को ही जानते रहना’ यह तो उपदेश की भाषा है। स्वयं को जानने से ही कल्याण होगा यह बात समझ में आने पर ‘अब मुझे अपना उपयोग पर से हटाना चाहिए, स्व की ओर ले जाना चाहिए’ ऐसी कोई भी कसरत नहीं करनी पड़ती।

स्वयं को कहाँ धोखा है, कहाँ नहीं है और कहाँ फायदा है यह बात तो एकेंद्रियादि सभी जीवों को समझती है। वनस्पति कायिक जीव एकेंद्रिय जीव हैं। हमारे घरों में रखे हुये पेड़ पौधे सूर्यप्रकाश की दिशा में बढ़ते हैं, किसी विशिष्ट वनस्पति के पन्ने हाथ या अन्य चीज लगने पर मिटते हैं, कीड़े मकोड़े, कीटक आँख और कान के नहीं होने पर भी धोखा ख्याल में आते ही दूर भागते हैं, खाद्य अखाद्य पदार्थों का निर्णय करते हैं।

हम तो संज्ञी पंचेंद्रिय मनुष्यपर्याय के जीव हैं। सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का समागम और उपदेश प्राप्त होने पर अपना कल्याण किसमें है इस बात का निर्णय करने जितना विवेक निश्चित ही हमारे पास है। फिर भी अनादि अज्ञानता के संस्कार के कारण यह जीव कुछ न कुछ करना चाहता है। उसकी यह ‘करूं, करूं’ की वृत्ति देखकर उससे कहते हैं कि, ‘भाई! तू तेरा उपयोग स्वसन्मुख कर।’ परंतु सत्य बात तो यह है कि स्वसंबंधी ज्ञान होने के पश्चात् स्व की अपूर्व महिमा जागृत होती है तब उपयोग सहज ही स्व को पकड़ता है। ‘स्व’ ज्ञान का ज्ञेय बनता है, करना नहीं पड़ता। उसके लिये क्रमबद्धपर्याय का, सर्वज्ञताका, स्वाधीन कारण-कार्य व्यवस्था का सम्यक् निर्णय होना अति आवश्यक है।

जिनागम का कोई भी अनुयोग, कोई भी प्रकरण, कोई भी पन्ना निकालकर देखो, उसके कथन द्वारा क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है। उनमें से कुछ हेतु हम आगामी पत्र में देखेंगे।

जय जिनेन्द्र।

तुम्हारी माँ

क्रमबद्धपर्याय - सिद्धि

पत्रांक १४

२५ जुलाई २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

गत पत्र में हमने कालचक्र का स्वरूप देखा था । अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी मिलाकर २० कोडाकोडी सागर का एक कल्पकाल होता है उसका वर्णन पढ़कर तुमने बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया है । पूर्व में हुये डायनोसोरस या अन्य महाकाय प्राणियों के अवशेष प्राप्त होने से वर्तमान युग के वैज्ञानिक उसके अनेक कारण ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं । परंतु अवसर्पिणी काल और उसमें होनेवाला परिवर्तन देखने पर उसका आश्चर्य नहीं लगता ।

पूर्वकाल में इतने बड़े मनुष्य और तिर्यचो का होना कैसे संभव था? ऐसा प्रश्न करने का कोई कारण नहीं है । वटवृक्ष के समान अनेक प्रचंड वृक्षों को 'बॉनसाय' पद्धति से कुछ इंचों में परिवर्तित होते हम प्रत्यक्ष देखते हैं । एक फूट लम्बा वृक्ष पूर्ण विकसित, फल-फूल से हरा भरा हम देखते हैं । उसी प्रकार यह भी संभव है ।

एक के बाद एक ऐसे अनंत कल्पकालों का रहट अनादि से चला आ रहा है, अनंत काल तक चलता रहेगा । हमारा आज अस्तित्व है - हमारा अर्थात् जीवद्रव्य का । जो जो अस्तित्ववान है उसका अस्तित्व अनादि अनंत विद्यमान रहता है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि अनादि से अनंतानंत कल्पकाल बीत गये, फिर भी हम जन्म-मरण, जन्म-मरण कर ही रहे हैं । इस भव में भी यदि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं करोगी तो क्या और भी अनंत काल इसी तरह भटकने का तुम्हारा इरादा है?

तत्त्वज्ञान का अभ्यास करने से प्राप्त संयोग तो नहीं छूटेंगे इसतरह भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है ।

हम सोचते हैं कि धन के कारण संयोग प्राप्त होते हैं । इस कारण अथक परिश्रम से हम धन कमाते हैं । तब ख्याल में आता

है कि धन होने के बावजूद विशिष्ट वस्तु की प्राप्ति होने में अनेक अकल्पित विघ्न आ खड़े हो जाते हैं। हम सोचते कुछ और हैं और होता कुछ और है। उसके कारण चिंता कर करके अधमरे से होने की नौबत आ जाती है। आम लोग भी कहते हैं, 'भाग्य से अधिक और समय से पहले कुछ नहीं मिलता।'

इतना सारा होने के पश्चात् विशिष्ट संयोग प्राप्त भी हुये तो अब उसकी परेशानियां ख्याल में आती हैं, उसमें सुख भासित नहीं होता या अन्य अन्य चीजों की प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होती ही रहती है और यह जीव दुःखी ही रहता है।

अज्ञानी जीव को स्वयं में ही विद्यमान स्वाधीन, सहज सुख की जानकारी ही नहीं है। किसी ने उपदेश देकर समझाया तो भी उस बात का उसे विश्वास नहीं आता। अब तक इस जीव ने अनंत भव धारण किये, प्रत्येक भव में इसने संयोग प्राप्ति के लिये जीवन बरबाद किया और मरण होते ही इन संयोगों को छोड़कर अन्यत्र जन्म धारण करने के लिये चला गया।

बेटियों, हमने इस भव में भी निरंतर राग, द्वेष, इच्छा करके इन संयोगों को, परिग्रह को इकट्ठा किया है, वह कुछ भी हमारे साथ परभव में नहीं आनेवाला। परंतु कषाय के कारण बंधा हुआ कर्म तो साथ में आयेगा ही और भविष्य में उसका फल भी भोगना पड़ेगा।

इसी प्रकार की मूर्खता और कितने भवों तक चलती रहेगी इस बात का यह विवेकी जीव विचार ही नहीं करता। इस जीव को विवेक यानि ज्ञान है परंतु जिसे विवेक यानि स्वयं के हित अहित का विचार नहीं है, उसे विवेकी कहें या अविवेकी?

चलो, अब अपना विषय आगे बढ़ाते हैं। क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत सिद्ध करने के लिये हमने सर्वज्ञता जो सबसे बलवान 'हेतु' है उसे देखा। प्रवचनसार में प्रदेशों के दृष्टांत द्वारा पर्यायों की अचलता सिद्ध की है उसे भी जाना। सम्पूर्ण जिनागम में क्रमबद्धपर्याय की पुष्टि करनेवाले अनेक कथन पाये जाते हैं। जिनागम चार अनुयोगों में विभाजित है। अब हम चारों अनुयोगों के कथन के आधार से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि किसतरह होती है उसे देखते हैं।

है कि धन होने के बावजूद विशिष्ट वस्तु की प्राप्ति होने में अनेक अकल्पित विघ्न आ खड़े हो जाते हैं। हम सोचते कुछ और हैं और होता कुछ और है। उसके कारण चिंता कर करके अधमरे से होने की नौबत आ जाती है। आम लोग भी कहते हैं, 'भाग्य से अधिक और समय से पहले कुछ नहीं मिलता।'

इतना सारा होने के पश्चात् विशिष्ट संयोग प्राप्त भी हुये तो अब उसकी परेशानियां ख्याल में आती हैं, उसमें सुख भासित नहीं होता या अन्य अन्य चीजों की प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होती ही रहती है और यह जीव दुःखी ही रहता है।

अज्ञानी जीव को स्वयं में ही विद्यमान स्वाधीन, सहज सुख की जानकारी ही नहीं है। किसी ने उपदेश देकर समझाया तो भी उस बात का उसे विश्वास नहीं आता। अब तक इस जीव ने अनंत भव धारण किये, प्रत्येक भव में इसने संयोग प्राप्ति के लिये जीवन बरबाद किया और मरण होते ही इन संयोगों को छोड़कर अन्यत्र जन्म धारण करने के लिये चला गया।

बेटियों, हमने इस भव में भी निरंतर राग, द्वेष, इच्छा करके इन संयोगों को, परिग्रह को इकट्ठा किया है, वह कुछ भी हमारे साथ परभव में नहीं आनेवाला। परंतु कषाय के कारण बंधा हुआ कर्म तो साथ में आयेगा ही और भविष्य में उसका फल भी भोगना पड़ेगा।

इसी प्रकार की मूर्खता और कितने भवों तक चलती रहेगी इस बात का यह विवेकी जीव विचार ही नहीं करता। इस जीव को विवेक यानि ज्ञान है परंतु जिसे विवेक यानि स्वयं के हित अहित का विचार नहीं है, उसे विवेकी कहें या अविवेकी?

चलो, अब अपना विषय आगे बढ़ाते हैं। क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत सिद्ध करने के लिये हमने सर्वज्ञता जो सबसे बलवान 'हेतु' है उसे देखा। प्रवचनसार में प्रदेशों के दृष्टांत द्वारा पर्यायों की अचलता सिद्ध की है उसे भी जाना। सम्पूर्ण जिनागम में क्रमबद्धपर्याय की पुष्टि करनेवाले अनेक कथन पाये जाते हैं। जिनागम चार अनुयोगों में विभाजित है। अब हम चारों अनुयोगों के कथन के आधार से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि किसतरह होती है उसे देखते हैं।

(१) प्रथमानुयोग के आधार से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि -

सम्पूर्ण प्रथमानुयोग सर्वज्ञ भगवान, अवधिज्ञानी मुनि या मनःपर्ययज्ञानी मुनियों ने की हुयी भविष्यकालीन और भूतकालीन सुनिश्चित घोषणाओं से युक्त है। जैसे -

(१) भगवान नेमिनाथ ने द्वारका के जलकर नष्ट होने की घोषणा बारह वर्ष पूर्व ही की थी। उसके साथ यह भी बताया था कि किस निमित्त से, कैसे और कब जलेगी, कौन बचेगा आदि। निमित्ताधीन दृष्टिवाले लोग निमित्तों को टालने में जुट गये। परंतु वही हुआ जो क्रमबद्ध था और जिसे जानकर सर्वज्ञ भगवान ने बताया था।

(२) भगवान आदिनाथ ने मारीचि के भविष्य के बारे में १ कोडाकोडी सागर पहले ही सब कुछ घोषित किया था। वह चौबीसवां तीर्थकर होगा, उसके माता पिता कौन होंगे ये सारी बातें जैसी बतायी थी वैसी ही घटित हुयी। इस बीच प्रत्येक भवसंबंधी, प्रत्येक समय के परिणाम संबंधी, बंधनेवाली कर्मप्रकृति संबंधी सारी भविष्यकालीन घटनायें उन्होंने केवलज्ञान द्वारा पहले ही युगपत् जान ली थी।

(३) अष्टांग निमित्त ज्ञान द्वारा भविष्य संबंधी बातें जानी जा सकती हैं। आचार्य भद्रबाहु ने निमित्त ज्ञान के आधार से उत्तर भारत में १२ वर्ष अकाल पड़ने की आगाही की थी, वह सच भी हुआ था।

(४) सम्राट चंद्रगुप्त के स्वप्नों के आधार से आचार्य भद्रबाहु ने भविष्यकालीन अनेक घटनाओं संबंधी घोषणायें की थी, जिनकी प्रचीति आज हमें आ रही है।

(५) अनेक अवधिज्ञानी मुनियों ने जीवों के आयु संबंधी, पूर्वभव संबंधी कथन किये थे जिसे हम प्रथमानुयोग में पढ़ते हैं।

परंतु किसी एक ने भी ऐसा कथन नहीं किया कि यह घटना होनेवाली है उसके लिये यदि तुम विशिष्ट उपाय करोगे तो वह टल जायेगी। यदि होनेवाली विशिष्ट घटना टल सकती है तो वह क्रमबद्ध कैसे हो सकती है? आजकल ज्योतिष शास्त्र के आधार से भविष्य की बातें बताकर लोगों से अनेक उपाय करायें

जाते हैं, ग्रहादिकों की शांति के लिये और अन्य अनेक उपायों के नाम से गृहीत मिथ्यात्व का पोषण किया जाता है। उसका एकमात्र कारण यही है कि जीवों को क्रमबद्धपर्याय का ज्ञान नहीं है और सर्वज्ञता के सही स्वरूप की पहचान नहीं है।

(२) करणानुयोग के आधार से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि -

करणानुयोग अहेतुवाद आगम है। ऐसा क्यों? इस प्रश्न को वहाँ कोई स्थान नहीं है। सर्वज्ञ ने अपने दिव्य केवलज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष स्पष्ट जानकर यह सारा कथन किया है। इसमें अनेक नियम, गणित के सूत्र, त्रिलोक की रचना आदि का वर्णन आता है।

कोई पूछेगा कि दो अधिक दो चार ही क्यों होते हैं? सूर्य पूर्व दिशा में ही क्यों उदित होता है? तो उसका जबाब यही है कि वैसा है इसलिए बताया जाता है। हां, न्यायशास्त्र, द्रव्यानुयोग को हम तर्क, अनुमान, युक्ति और आगम से सिद्ध कर सकते हैं। परंतु करणानुयोग में आगम अर्थात् सर्वज्ञ की वाणी ही एकमेव आधार है। अब करणानुयोग के कुछ सिद्धांत देखते हैं।

(१) हर छह महिने और आठ समय में छह सौ आठ जीव नित्य निगोद में से निकलते हैं और इतने ही समय में इतने ही जीव मोक्ष चले जाते हैं।

(२) त्रस पर्याय की उत्कृष्ट स्थिति साधिक दो हजार सागर वर्ष है। कोई जीव अधिक से अधिक इतने वर्ष तक द्वीन्द्रियादि पर्यायों में जन्म मरण करके वापिस निगोद में चला जाता है। इसमें मनुष्यभवों की संख्या मात्र ४८ है। यह अधिक से अधिक शक्यता की बात है। चारों गति के जीवों की संख्या निश्चित है। किसी पर्याय में जीव अधिक हो और किसी में कोई जीव ही न हो, ऐसा बन नहीं सकता।

(३) जीवसमास, गुणस्थान, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग और गति आदि चौदह मार्गणा इन बीस प्ररूपणाओं का सविस्तार वर्णन, उनमें जीवों की संख्या, उनके भावों का परिमाण, उनका आपस में प्रमाण, जीवों के कौनसे परिणामों द्वारा कौनसी

कर्मप्रकृति बंधी जाती है, कौन कौनसे मार्गणा के जीवों को कौन कौनसे बंध और उदय हो सकते हैं - ये सारी बातें निश्चित हैं। वे क्रमबद्धपर्याय को सिद्ध करती हैं। सर्वज्ञ तो इन नियमों को जानते हैं और कथन करते हैं परंतु इन्हें बनाते नहीं हैं।

(४) प्रत्येक मिथ्यादृष्टि जीव को पांच परावर्तनरूप संसार में भ्रमण करना पड़ता है। यदि इस पंचपरावर्तन का स्वरूप समझ में आ जाये तो क्रमबद्धपर्याय और सर्वज्ञता इनकी सिद्धि तो होती ही है, संसार का रस भी निकल जाता है, भवभ्रमण का भय लगने लगता है और सर्वज्ञ स्वभावी निजशुद्धात्मा का ज्ञान और ध्यान होता है।

(५) भूत-वर्तमान-भविष्य तीर्थकरों की संख्या एवं नाम निश्चित हैं। उनके पूर्व भवों के नाम भी जिनागम में घोषित हैं। क्रमबद्धपर्याय की इन बातों पर विश्वास नहीं करनेवाले जीव तीर्थकर या चक्रवर्ती बनने के सपने देखते हैं। परंतु इन पदों की इच्छा करनेवालों को वे पुण्य प्रकृति नहीं बंधती। विशिष्ट बंध करने योग्य-उपादेय मानने से उनकी बंध तत्त्व संबंधी तथा अन्य सर्व तत्त्व संबंधी विपरीत मान्यता के कारण उनका मिथ्यात्व कायम रहता है। मिथ्यात्व अवस्था में ऐसा सातिशय पुण्य नहीं बंधता।

(६) शास्त्र में सांतर मार्गणा, निरंतर मार्गणा बतायी हैं। निरंतर मार्गणा में विशिष्ट गुणस्थानों में हमेशा कोई ना कोई जीव होते ही हैं। जैसे मिथ्यात्व नामक पहला गुणस्थान, अविरत सम्यक्त्व नामक चौथा गुणस्थान, देशविरत नामक पांचवा गुणस्थान, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत नामक छठवां-सातवां गुणस्थान, और सयोग केवली नामक तेरहवां गुणस्थान इन गुणस्थानों में सदा ही कोई ना कोई जीव होते ही हैं।

तेरहवें गुणस्थान के जीव सर्वज्ञ हैं। इस कारण सर्वज्ञ की निरंतर उपस्थिति, किसी न किसी क्षेत्र में तीर्थकरों और अन्य अरहंतों की नित्य उपस्थिति सिद्ध होती है।

सांतर मार्गणा में नाना जीवों की अपेक्षा से दूसरे, तीसरे आदि गुणस्थानों में कम से कम एक समय और अधिक से

अधिक विशिष्ट काल तक कोई भी जीव न हो ऐसी संभावना हो सकती है ।

मार्गणा और गुणस्थानों का 'काल' भी निश्चित होता है । 'करणानुयोग परिचय' पुस्तक में हमने गुणस्थानों का जघन्य, उत्कृष्ट काल, गमनागमन आदि बातें विस्तार से देखी थी । गुणस्थान का 'अंतर' भी निश्चित होता है । कोई जीव मानो पहले गुणस्थान से ऊपर के ४ थे, ५ वें, ७वें आदि गुणस्थानों में गया और वापिस १ ले गुणस्थान में आ गया तो उसमें कम से कम और अधिक से अधिक कितना काल लग सकता है उसे उस पहले गुणस्थान का 'अंतर' कहते हैं ।

जो जीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में जाता है और दुबारा सम्यक्त्व प्राप्त करता है, ऐसे जीव का सम्यक्त्व का अंतर कम से कम एक अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परावर्तन काल है - जो अनंत काल है । यह एक जीव की अपेक्षा बात हुयी ।

मोक्ष प्रकट करनेवाले सभी जीवों की अपेक्षा अधिक से अधिक छह महिने का अंतर पड़ सकता है और शेष ८ समयों में ६०८ जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

प्रत्येक गुणस्थान के जीवों की संख्या निश्चित है । एक समय में अधिक से अधिक कितने जीव मोक्ष अवस्था प्रकट कर सकते हैं, एक साथ कितने केवली भगवान केवली समुद्घात करते हैं इनकी संख्या निश्चित है ।

इसी प्रकार अन्य भी अनेक बातें हैं । कर्मों की बंध, उदय, सत्ता आदि अवस्थाओं का सूक्ष्म विवेचन है । उपशम श्रेणी चढ़नेवाले जीव के कर्मों में होनेवाले सारे परिवर्तनों को और जीव के भावों में होनेवाले परिवर्तनों को उपशम विधान कहते हैं, उसका विवेचन है । क्षपक श्रेणी चढ़नेवाले जीवों के परिणाम, कर्मों का क्षय-क्षपणा किस प्रकार होती है, कौनसे गुणस्थानों में कौनसी प्रकृतियों का क्षय होता है, आदि संबंधी क्षपणाविधान ये सारी बातें लब्धिसार और क्षपणासार आदि ग्रंथों में हैं ।

यह सारा सूक्ष्म विवेचन पढ़कर सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय का दृढ विश्वास हो जाता है, केवलज्ञान की महिमा आती है

और मैं भी सर्वज्ञ स्वभावी जीवद्रव्य हूँ यह बात ख्याल में आते ही दृष्टि स्वभाव सन्मुख होती है ।

(३) चरणानुयोग के आधार से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि -

रत्नकरंड श्रावकाचार, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, अष्टपाहुड, भगवती आराधना, पुरुषार्थसिद्धयुपाय आदि चरणानुयोग के ग्रंथों द्वारा सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है । देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप, पंचपरमेष्ठी का स्वरूप जानकर सर्वज्ञता का सच्चा स्वरूप ख्याल में आता है । इन ग्रंथों में श्रावक तथा मुनि के आचरण संबंधी कथन है और साथ साथ यह भी नियम बताया है कि सम्यग्दर्शनपूर्वक ही ये व्रत होते हैं इससे मोक्षमार्ग संबंधी पर्यायों का क्रम ख्याल में आता है । बिना सम्यग्दर्शन के कोई मात्र बाह्य आचरण करेगा तो वह बालतप, बालव्रत संज्ञा पाता है । शास्त्र में इसे 'अंक बिना बिंदी' की उपमा दी है ।

अंतरंग वीतरागता के अनुरूप बाह्य आचरण का सुमेल रहता ही है, वह सहजरूप से होता है, ऐसा सहज निमित्त नैमित्तिक संबंध ख्याल में आता है ।

चरणानुयोग में खाद्य-अखाद्य संबंधी, आचरण संबंधी, अहिंसात्मक प्रवृत्ति संबंधी उपदेश दिया जाता है, उसे सर्वज्ञता का ठोस आधार है । जीवसमास में १४ प्रकार के जीवों के भेद, उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद, ये जीव कहाँ पाये जाते हैं, सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति कहाँ और कैसी होती है, निगोद जीव एक शरीर में अनंत रहते हैं, वे कहाँ कहाँ पाये जाते हैं आदि अनेक बातें सर्वज्ञ के अलावा अन्य कोई बता नहीं सकता । सर्वज्ञ के आगम द्वारा ही हम इन जीवों का निर्णय करके उनकी हिंसा टालने में प्रयत्नशील रह सकते हैं, सावधानी रख सकते हैं, हिंसारूप पाप से अपना बचाव कर सकते हैं ।

इसतरह सर्वज्ञता को सिद्ध करनेवाले चरणानुयोग के कथन क्रमबद्धपर्याय को सिद्ध करनेवाला प्रमाण है ।

(४) द्रव्यानुयोग के आधार से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि-

समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय संग्रह, तत्त्वार्थसूत्र और उसकी अनेक टीकायें - सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक, तत्त्वार्थ

श्लोकवार्तिक आदि, अष्टशती, अष्टसहस्री, आप्तमीमांसा, परमात्मप्रकाश, योगसार प्राभृत, मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि अनेक ग्रंथों के आधार से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है, वह इस प्रकार -

(१) द्रव्य, गुण, पर्यायों का यथार्थ स्वरूप जानने से सर्वज्ञ की सिद्धि होती है। जातिअपेक्षा छह द्रव्य, प्रत्येक की संख्या, उनके प्रदेश (क्षेत्र), प्रत्येक द्रव्य के अनंत गुण, उन सबकी तीनों काल की सुनिश्चित पर्यायें और उनके भी अविभाग प्रतिच्छेद युगपत् प्रत्यक्ष स्पष्ट जानकर उसका कथन करनेवाले सर्वज्ञ ही हो सकते हैं, अन्य कोई नहीं।

एक एक समय की पर्याय की सुनिश्चितता सर्वज्ञता को एवं क्रमबद्धपर्याय को सिद्ध करती है। मान लो, कोई व्यक्ति किसी एक विशिष्ट पर्याय को उसके निश्चित स्थान से (समय से) हटाना चाहता है, तो वह उस पर्याय को कहाँ रखेगा? और उसकी जो जगह खाली हो जायेगी वहाँ कौनसी पर्याय लायेगा? पर्यायों की शृंखला टूटने से द्रव्य खंडित होगा - नष्ट होगा और द्रव्य नष्ट होने के कारण एक एक द्रव्य का नाश होते होते विश्व के नाश का प्रसंग आयेगा। सर्वज्ञता धोखे में आयेगी। अनादि से आज तक जितने अनंत तीर्थकर हुये हैं उन सब का निषेध होगा। परंतु ऐसा कभी हो नहीं सकता।

(२) प्रत्येक पर्याय का स्वयं का जन्मक्षण होता है, स्वकाल होता है। द्रव्य के अनादिअनंत प्रवाहक्रम में प्रत्येक पर्याय निश्चित स्थान पर खचित है, विराजमान है।

(३) पांच समवाय — प्रत्येक पर्याय यानि कार्य की उत्पत्ति में स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, भवितव्य और निमित्त ऐसे पांच समवाय होते हैं और वे निश्चित होते हैं। इनकी चर्चा आचार्य सिद्धसेन ने 'सम्मईसुत्त' में और आचार्य रविषेण ने 'पद्मपुराण' में की है। इससे क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है।

(४) कारण-कार्य संबंध तथा (५) निमित्त उपादान — प्रत्येक कार्य के अनेक कारण होते हैं और वे निश्चित रहते हैं। उनमें से उपादान कारणों में त्रिकाली उपादान, अनंतरपूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप क्षणिक उपादान और तत्समय की पर्याय की

योग्यतारूप क्षणिक उपादान हैं, जो सब निश्चित होते हैं। निमित्त अन्य द्रव्य की पर्याय है जो अपने स्वकाल में प्रकट होती है। इससे पर्यायों की तथा उनके क्रम की सुनिश्चितता ख्याल में आती है।

(६) स्वचतुष्टय — प्रत्येक द्रव्य अपने स्वयं के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में निबद्ध है। द्रव्य का स्वकाल अर्थात् अनादिअनंत पर्यायों का क्रम - प्रवाह निश्चित होता है। द्रव्य का द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव खंडित हो ही नहीं सकता। वैसा मानेंगे तो द्रव्य के नाश का तथा विश्व के नाश का प्रसंग आयेगा।

इससे पर्यायों के अनादिअनंत निश्चित क्रम की सिद्धि होती है।

(७) पर्याय सत् है — पर्याय भी क्षणिक सत् है। जो 'है' उसका नाश नहीं हो सकता। कोई भी व्यक्ति पर्याय को उसके स्वकाल से - स्वसमय से हटा नहीं सकता।

(८) वस्तुस्वातंत्र्य — प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्रता और स्वाधीनता से अपने क्रमबद्ध पर्यायों का कर्ता है।

(९) अकर्तावाद — एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का, दूसरे द्रव्य की पर्याय का कर्ता नहीं है, उसी प्रकार अपने में भी क्रम छोड़कर अन्य चाहे जिस पर्याय का भी कर्ता नहीं है।

(१०) ४७ शक्ति में से भाव, अभाव, भावअभाव, अभाव भाव, भावभाव और अभावअभाव शक्तियां यही दर्शाती हैं कि प्रत्येक समय में सुनिश्चित पर्यायों का उत्पाद और सुनिश्चित पूर्व पर्यायों का व्यय होता है। इनकी चर्चा हमने पहले विस्तार से की हुयी है।

(११) कालनय और अकालनय — किसी अपेक्षा की मुख्यता से वस्तु को जानना या कथन करना इसे नय कहते हैं। प्रवचनसार ग्रंथ में ४७ नयों का वर्णन है। हमने जो पांच समवाय देखे उसमें काल एक कारण है और स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्य, और निमित्त काल छोड़कर अन्य कारण हैं, उन्हें 'अकाल' कहते हैं। प्रत्येक पर्याय में एकसाथ पांचों ही कारण विद्यमान रहते हैं उनमें से काल को मुख्य करके अन्य चार कारणों को गौण करने पर 'काललब्धि से कार्य होता है' यह 'कालनय' का कथन है,

और काल को गौण करके अन्य चारों कारणों को एकसाथ या एक एक को मुख्य करने पर जो कथन किया जाता है वह 'अकालनय' का कथन है ।

कथन कालनय का हो या अकालनय का, अंतर मात्र कथन में ही है, कार्य में नहीं है । कार्य अर्थात् पर्याय अपने स्वकाल में ही होती है, अन्य काल में नहीं तथा निश्चितरूप से जो पर्याय होनी है वही होती है, अन्य नहीं ।

(१२) सम्यक् पुरुषार्थ — क्रमबद्धपर्याय का नाम सुनकर कोई प्रश्न करता है कि 'फिर हमारा पुरुषार्थ क्या रहा?' कोई कहता है, 'चलो, अच्छा हुआ । अब बिना पुरुषार्थ के ही, मेरा कार्य निश्चित समय पर होगा ।' ऐसे जीवों को समझाना पड़ता है कि कार्य होने के लिये अनेक कारण एकत्रित होते हैं, उनमें से पुरुषार्थ एक कारण है । पुरुषार्थ के बिना कार्य नहीं होता, पुरुषार्थ करनेवाले को अन्य कारण सहज मिल जाते हैं ।

(१३) सम्यक् नियतिवाद — पांच समवायों में पुरुषार्थ के साथ नियति भी एक कारण है जिसे काललब्धि भी कहते हैं । अन्य समवायों को मान्य करते हुये नियति की मुख्यता से कथन करना सम्यक् नियतिवाद है । परंतु मिथ्या नियतिवादवाला मात्र काल को ही मानता है और पुरुषार्थ को उड़ा देता है ।

(१४) ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव — ज्ञानस्वभाव के पुरुषार्थद्वारा क्रमबद्धपर्याय का यथार्थ निर्णय करके जब पर्याय स्वसन्मुख होती है, तब एक समय में उस पर्याय के पांचों ही समवाय उपस्थित रहते हैं । पुरुषार्थ भी होता है और पर्यायों का क्रम भी नहीं टूटता ।

(१५) क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती — द्रव्य गुणपर्यायवान होता है । गुणों को अक्रमवर्ती और पर्यायों को क्रमवर्ती कहते हैं क्योंकि गुण एकसाथ विद्यमान रहते हैं और पर्यायें क्रम से होती हैं । उन्हीं को सहभूवि या सहवर्ती और क्रमभूवि भी कहते हैं । गुण युगपत् - अक्रमबद्ध - सहवर्ती ही होते हैं यह सम्यक् एकांत है । उसीप्रकार पर्यायें एक के बाद एक निश्चित क्रम से क्रमबद्ध ही होती हैं यह भी सम्यक् एकांत है । द्रव्य गुणपर्यायात्मक होने से सम्यक् अनेकांत स्वरूप है ।

(१६) सर्वज्ञता — इसके संबंध में हम विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। अनेक न्यायग्रंथों में सर्वाधिक चर्चा सर्वज्ञता की सिद्धि के विषय में ही है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है, 'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य' अर्थात् केवलज्ञान सर्व द्रव्यों के सर्व पर्यायों को जानता है। मात्र पर्यायों को ही नहीं अपितु उन पर्यायों के सभी कारणों को, उन पर्यायों के क्रम को भी जानता है, भविष्यकालीन समस्त पर्यायों को भी जानता है। इससे सिद्ध होता है कि सभी पर्यायें क्रमबद्ध ही परिणमित होती हैं। क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि करनेवाला सर्वज्ञता सबसे प्रबल हेतु माना गया है और सर्वज्ञता की चर्चा जिनागम में सर्वत्र पायी जाती है। जिनागम का मूल कर्ता ही सर्वज्ञ भगवान है।

प्रवचनसार ग्रंथ का 'ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन' नामक अधिकार सर्वज्ञता की सिद्धि करनेवाला है, अमितगति आचार्य का 'योगसार प्राभृत' भी वैसा ही है। प्रवचनसार ग्रंथ में प्रदेशों के दृष्टांत द्वारा पर्यायों की क्रमबद्धता को - अचलता को सिद्ध किया है, इसे हमने पहले विस्तार से देखा ही है।

इस प्रकार सम्पूर्ण जिनागम में क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि की हुयी है। बेटियों, ग्रंथों द्वारा हम केवल इस विषय के बारे में जान सकते हैं, परंतु निर्णय करने के लिये स्वसन्मुख होकर, अपने ज्ञानस्वभाव में लीन होकर ही यह सम्यक् निर्णय होता है। मात्र शास्त्र में से पढ़ना और शास्त्र के उद्धरण देना तो तोतारटन हुआ।

आगम ग्रंथों के मूलकर्ता श्री सर्वज्ञ भगवान है। उनकी वाणी द्वारा हमें वस्तुस्वरूप का सम्यक् स्वरूप समझता है। अपनी बुद्धि द्वारा यथार्थ निर्णय करके स्व को जानने से, उसमें एकाग्र होने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, अतीन्द्रिय आनंद की अनुभूति होती है, निराकुलता की प्राप्ति होती है। इसके लिये नक्की क्या करना है इसकी चर्चा हम आगामी पत्र में करेंगे।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

आत्मानुभूति

पत्रांक १५

१५ अगस्त २००१

प्रिय रीना एवं मोना,

अनेक उत्तम शुभाशीर्वाद ।

क्रमबद्धपर्याय की सविस्तार चर्चा से तुम्हारी अनेक शंकाओं का निर्मूलन हुआ और चारों अनुयोगों के उद्धरण पढ़कर तुम बहुत ही प्रभावित हुई हो ऐसा तुमने पत्र द्वारा सूचित किया है । वारंवार उसीके विचार चलते हैं और आत्मानुभूति प्रकट करने की तीव्र जिज्ञासा जागृत हुई है आदि बातें तुमने फोन पर बतायी थी । 'स्वसन्मुखता करना' यानि नक्की क्या करना? यह तुम्हारा प्रश्न है । 'आत्मानुभूति की कला हमें भी सिखाओ ना' ऐसी तुमने आग्रहभरी बिनती की है । चलो, अब हम उसी की चर्चा करते हैं ।

चर्चा करने या सुनने से आत्मानुभूति नहीं होगी यह बात सर्व प्रथम समझ लो । हम मार्ग पर मार्गदर्शक फलक देखते हैं । उसपर गांवों के नाम और दिशा दर्शायी जाती है, मार्ग का इशारा किया जाता है, परंतु मार्गक्रमण तो हमें ही करना पड़ता है । उसी प्रकार चर्चा द्वारा यह सब मार्गदर्शन है, उसे जानकर उसरूप परिणमन करना यह तो तुम्हें स्वयं ही करना होगा ।

पुरुषार्थ की मुख्यता से ही मोक्षमार्ग का उपदेश दिया जाता है कि, 'हे जीव! अत्यंत दुर्लभ में दुर्लभ मनुष्यभव, इंद्रियों की पूर्णता, शारीरिक स्वास्थ्य और महान पुण्य के उदय में प्राप्त सर्वज्ञकथित आगम का उपदेश तुझे प्राप्त है । अत्यंत निकृष्ट इस पंचम काल में यह महादुर्लभ योग तुझे प्राप्त हुआ है । इसलिए प्रथम में प्रथम अपना हित साध ले अर्थात् स्वयं को पहचान कर स्वयं को जान, सम्यक्त्व प्राप्त कर ले । 'मैं अभव्य होऊं तो?' 'मेरी काललब्धि ही नहीं आयी होगी तो?' 'मेरा भवितव्य कुछ अन्य ही होगा तो?' आदि शंकायें उपस्थित करके गलितगात्र मत होना । कहते हैं ना 'रोते हुये जाकर मरे की खबर लाना' वैसी कहीं तेरी स्थिति न हो जाय!'

पुरुषार्थ करनेवाले जीव को अन्य सभी कारण सहज मिल जाते हैं, निमित्त भी मिलते हैं, ऐसा ही सहज निमित्त नैमित्तिक संबंध होता है ।

सम्यक्त्व प्राप्ति के लिये विशिष्ट पात्रता का होना जरूरी है। इसकी सविस्तार चर्चा हमने 'करणानुयोग परिचय' पुस्तक में पत्रांक १० में की थी। उसे दुबारा पढ़ना।

मद्य, मांस, मधु और पांच उदुम्बर फलों का त्याग; कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का त्याग; अन्याय, अनीति, अभक्ष्यभक्षण का त्याग करना तो पात्रता है। सच्चे देव, गुरु (मुनि), शास्त्र की परीक्षापूर्वक स्वीकृति, उनके गुणों प्रति आदरभाव का होना आवश्यक है। जब उनका स्वरूप समझ में आता है तो आदरभाव भी सहज ही होता है।

सर्वज्ञता एवं क्रमबद्धपर्याय का निर्णय, निमित्त उपादान, निमित्त नैमित्तिक, निश्चय व्यवहार, चार अभाव, द्रव्य गुण पर्याय अर्थात् द्रव्य का सामान्य विशेष स्वरूप, सात तत्त्व अर्थात् नौ पदार्थ आदि सभी बातों का आगमानुसार ज्ञान तथा अपनी बुद्धि द्वारा उसके योग्यपने का निर्णय ये सारी बातें जरूरी हैं।

इन सब बातों का हमने आज तक विविध अपेक्षाओं से अभ्यास किया है। 'जैन तत्त्वपरिचय' पुस्तक में 'सात तत्त्व और आत्मानुभूति' वाले प्रकरण में हमने आत्मानुभूति की चर्चा की थी। आज दुबारा अन्य प्रकार से उसकी चर्चा करते हैं।

आत्मानुभूति कहो, सर्वज्ञता का निर्णय कहो, क्रमबद्धता का निर्णय कहो सब एक ही बात है। यह शास्त्रज्ञान या शब्दज्ञान से प्रकट नहीं होता परंतु आत्मज्ञान से - आत्मा की दृष्टि करने से - जैसा सर्वज्ञ भगवान ने शुद्ध ध्रुव आत्मा का स्वरूप बताया है वैसा उसे जानने से यह निर्णय यथार्थ होता है।

पर्यायों की तरफ देख देखकर क्रमबद्धपर्याय का निर्णय नहीं होता परंतु त्रिकाल एकरूप एक सदृश स्वभाव का - ज्ञायकभाव का - परमपारिणामिक भाव का - शुद्धात्मा का लक्ष्य करके उसमें एकाग्र होने पर यह निर्णय होता है अर्थात् सम्यक्त्व प्रकट होता है।

तुम कहोगी, 'द्रव्य कभी भी पर्याय विरहित नहीं हो सकता। तो फिर पर्याय को छोड़कर अकेला द्रव्यस्वभाव कैसा ज्ञान में आ सकता है?'

हमारे श्रुतज्ञान में मुख्य गौण करके जानने की शक्ति है। हम लौकिक जीवन में पदपद पर उसका प्रयोग भी करते हैं। परंतु अध्यात्म के विषय में जब आत्मानुभूति की विधि - मार्ग

बताया जाता है तब हम कैसे कर सकते हैं कहकर जीव पुरुषार्थहीन होता है। अर्थात् सम्यक् पुरुषार्थ न करके अन्य यानि संसार परिभ्रमण का ही पुरुषार्थ करता है। जिसतरह मोक्षमार्ग और मोक्ष सम्यक् पुरुषार्थ से होता है उसी प्रकार संसार भी उलटे पुरुषार्थ से चलता रहता है।

मुख्य गौण करके जानने संबंधी दृष्टांत हम देखते हैं। किसी स्त्री के पास सोने के कंगन, हार, अंगूठी, कर्णफूल आदि हैं। उनकी डिझाईन-कारागिरी देख देखकर वह बहुत प्रसन्न होती है। यदि कोई उसे पूछे कि तुम्हारे पास कितना सोना है? तो वह सोने की कंगन, हार आदि अवस्थाओं को गौण करके मात्र सोने की दृष्टि से विचार करके बताती है कि उसके पास अमुक इतना सोना है। उन्हीं गहनों की ओर कंगन, हार आदि अवस्थाओं की दृष्टि से देखना पर्यायदृष्टि है - विशेष को देखना है और उन्हीं गहनों की ओर मात्र सोने की दृष्टि से देखना द्रव्यदृष्टि है - सामान्य को देखना है। वस्तु एक ही है उसकी ओर देखने की दृष्टि अलग अलग है।

यह मुख्य गौण करने की कला हमारे श्रुतज्ञान में है। इसी को नयज्ञान भी कहते हैं। सम्यक्ज्ञानी के ही नय सच्चे होते हैं। मुख्य को निश्चय कहते हैं और गौण को व्यवहार कहते हैं। अध्यात्म में हमेशा द्रव्यदृष्टि - सामान्यदृष्टि मुख्य है, इसलिए उसेही निश्चयनय कहते हैं।

सोने को मुख्य करते हैं तब अवस्थायें नष्ट नहीं होती और अवस्थाओं को मुख्य करते हैं तब सोना नष्ट नहीं होता।

उसीप्रकार हम अपने स्वद्रव्य का विचार करते हैं। उसमें अनंत गुणस्वरूप एक, असंख्यात प्रदेशों के पिंड स्वरूप अभेद, नित्य, सामान्य स्वरूप है और साथ साथ पर्यायों में विविधता है, गुणों में अनेकता है, प्रदेशों में भेद है, पर्यायों की अपेक्षा अनित्यता है जो विशेष स्वरूप है। विशेष अर्थात् पर्याय व्यक्त है, सामान्य अव्यक्त है फिर भी अविद्यमान नहीं है; प्रत्यक्ष विद्यमान है और स्वसंवेद्यमान है - स्वसंवेदन द्वारा जाना जा सकता है।

द्रव्य के एक भाग में सामान्य हो और दूसरे भाग में विशेष हो ऐसा नहीं है। जो क्षेत्र सामान्य का है वही क्षेत्र विशेष का है। सोने के हार में जो क्षेत्र सोने का है, वही क्षेत्र हार का है। सोना

और हार दो सर्वथा भिन्न पदार्थ नहीं हैं, वस्तु एक ही है, क्षेत्र एक ही है ।

आज तक हम मात्र विशेषों को ही देखते आये हैं । पर्यायों की तरफ देखकर हमने स्वयं को मात्र पर्याय जितना ही माना था । उसके कारण निरंतर राग, द्वेष, आकुलता ही होती रही । विशिष्ट पर्याय प्राप्त करने की, प्राप्त पर्याय कायम रखने की, अनिष्ट लगनेवाली पर्याय हटाने की चिंता हमेशा होती रहने से यह जीव निरंतर दुःखी ही होता रहा ।

जब जीव अपने सामान्य स्वरूप को पहचान कर उसकी दृष्टि करता है अर्थात् उसे स्वप्ने से स्वीकार करके उसे जानता रहता है - उसमें जम जाता है - रम जाता है - एकाग्र होता है तब उसे सहज ही निराकुलता की प्राप्ति होती है । क्योंकि सामान्य तो सदा एकसमान - एकसदृश रहता है । उसे बदलने की चिंता नहीं रहती । सामान्य तो सदा प्राप्त ही है - विद्यमान है - प्रकट है इसलिए उसे प्राप्त करने की आकुलता भी समाप्त हो जाती है । सामान्य तो त्रिकाल रहता है और परमइष्ट है इसलिए उसे हटाने का प्रश्न ही नहीं आता - कोई हटा भी नहीं सकता इसलिए वह चिंता भी नहीं रहती ।

पर्याय में अनेक कारण होते हैं, स्वभाव को कारणों की आवश्यकता नहीं होती । काललब्धि, भवितव्य, पुरुषार्थ, निमित्त तो पर्याय में घटित होते हैं, विशेष में होते हैं, सामान्य में नहीं । इसलिए वह चिंता भी मिट जाती है ।

इस सामान्य की दृष्टि करने से पर्याय में विशेषता - शुद्धता - मोक्षमार्ग की शुरुआत-वीतरागता प्रकट होती है । आत्मानुभूतिरूप कार्य प्रकट होता है । सामान्य को 'शुद्ध' कहते हैं और विशेष को 'अशुद्ध' कहते हैं । सामान्य और विशेष अविनाभावी हैं । विशेषविरहित सामान्य नहीं होता और सामान्यविरहित विशेष नहीं होता । जहाँ विशेष है, वहीं पर सामान्य है । विशेष और सामान्य का क्षेत्र भिन्न नहीं है ।

दर्पण का ही दृष्टान्त देखो । दर्पण में जो प्रतिबिंब है वह दर्पण का विशेष है, दर्पण सामान्य है । दर्पण का जितना क्षेत्र है, उसमें सर्वत्र प्रतिबिंब हैं । स्वच्छत्व अर्थात् रिफ्लेक्टिव्हिट दर्पण का गुण है, वह दर्पण के सम्पूर्ण क्षेत्र में रहता है । रिफ्लेक्शन रिफ्लेक्टिव्हिट को सिद्ध करता है अर्थात् प्रतिबिंब दर्पण की

स्वच्छता को जाहिर करता है अर्थात् दर्पण का निर्णय प्रतिबिंब के कारण होता है ।

हमें दर्पण को देखना हो तो प्रतिबिंबों को गौण करके हम दर्पण को देखते हैं । दर्पण की चहू ओर की लकड़ी की फ्रेम में कुछ प्रतिबिंब नहीं दिखता, इस कारण उस लकड़ी को हम दर्पण भी नहीं कहते । जितने क्षेत्र में प्रतिबिंब पाया जाता है अर्थात् स्वच्छता पायी जाती है वही तो दर्पण है ।

मुख्य गौण करने की कला का प्रयोग तो हम रोज दर्पण के सामने करते ही आये हैं । मुझे बताओ, रोज तुम दर्पण में देखती हो, दर्पण के सामने खड़ी रहती हो वह दर्पण देखने के लिए खड़ी रहती हो या उसमें तुम्हारा प्रतिबिंब देखने के लिए? उस समय तुम दर्पण को गौण करके प्रतिबिंब को देखती हो । दर्पण के सम्पूर्ण क्षेत्र में कोई न कोई प्रतिबिंब तो पाया ही जाता है - उन सब को तुम निहारती हो कि मात्र तुम्हारे प्रतिबिंब को ही निहारती हो? अन्य सब चीजों के प्रतिबिंब सामने दिखायी देने पर भी उनकी तरफ हमारा लक्ष नहीं जाता । हमारा सारा ध्यान अपने प्रतिबिंब पर केंद्रित होता है । यह ध्यान क्या किसी से सीखना पड़ता है? वह प्रतिबिंब मेरा है ऐसी मान्यता होने से उसका ध्यान - उसे लक्षपूर्वक निहारना सहज ही होता है ।

परंतु आत्मा का ध्यान करने के लिए 'किसी के पास जाकर मुझे ध्यान करना सीखना पड़ेगा' इसतरह की कल्पना करते हैं । दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखते समय उसे दर्पण की अवस्था है इसलिए नहीं अपितु वह मेरा ही चेहरा है इस भावना के साथ बड़ी आत्मीयता के साथ हम उसे देखते हैं । प्रतिबिंब को देखते हुए निर्णय तो हम स्वयं का करते हैं ।

शास्त्र में कथन आता है कि सिद्धों का ध्यान करो, सिद्ध हमारे आदर्श हैं । दर्पण को भी आदर्श कहते हैं । दर्पण में शरीर का प्रतिबिंब दिखता है उसतरह सिद्धों में हमारे स्वभाव का प्रतिबिंब दिखता है । सिद्धों का स्वरूप समझने पर यह बात ख्याल में आती है कि उनका जैसा स्वभाव है वैसा पर्याय में पूर्ण प्रकट हुआ है । स्वभाव तो सभी जीवों का समान ही होता है । हमारा स्वभाव भी ऐसा ही है ।

इसलिए सिद्धों के स्वरूप का चिंतन करने पर हमें अपने स्वभाव का ज्ञान होता है । वह सिद्धों की अवस्था है इसलिए

नहीं अपितु मेरे स्वभाव का प्रतिबिंब है - मेरा स्वभाव ही है इस भावना के साथ हम उसे जानते रहते हैं। यही तो ध्यान है।

‘एकाग्रचिंता निरोधो ध्यानम्’ यह ध्यान का स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र में बताया है। चित्त को एक ही विषय पर स्थिर करके - एकाग्र होकर जानते रहना ही ध्यान है। यह ध्यान अशुभ का भी हो सकता है जैसे आर्त और रौद्र ध्यान। इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, वेदना या रोग और निदान संबंधी चिंतवन करते हुए दुःखी होना आर्तध्यान है। निदान यानि भविष्यसंबंधी संकल्प विकल्प करना, इच्छा करना।

हिंसा, असत्य, चोरी, परिग्रह संबंधी चिंतवन करके आनंदित होना रौद्रध्यान है।

आगमकथित तत्त्वों का, कर्मों की अवस्थाओं का तथा उनके नाश के उपायों का, जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का तथा त्रिलोकादि की रचना का चिंतवन करना धर्मध्यान है। शुद्ध आत्मा का चिंतवन करके उसे जानते रहना, निर्विकल्प अनुभूति करना यथार्थ में यानि निश्चय धर्मध्यान है।

शुक्लध्यान ८ वें गुणस्थान से लेकर ऊपर के गुणस्थानों में होता है। उसमें जीवों के अत्यंत विशुद्ध परिणाम होते हैं, वीतरागता अधिक होती है। वीतरागता के साथ वह अपने शुद्धात्मा का ध्यान करता है।

हम सबकी समस्या ध्यान कैसे करना यह नहीं है अपितु ध्यान का ध्येय क्या है, किसका ध्यान करना चाहिए आदि संबंधी का अज्ञान ही सब से बड़ी समस्या है।

हमारा प्रयोजन मोक्षमार्ग का प्रारंभ करके मोक्ष प्राप्त करना है। उसके लिए निज अर्थात् स्वयं के शुद्ध स्वरूप को जानना है। तुम कहोगी, ‘हमारे में अभी शुद्धता है ही कहाँ कि जिस शुद्धता को हम जानते रहें? हमारे में तो मोह, राग, द्वेषरूपी अशुद्धता ही है। हां, यदि तुम अरहंत, सिद्धों का ध्यान करने की बात कर रही हो तो ठीक है, क्योंकि उनकी शुद्ध पर्याय प्रकट है।’

पत्र के प्रारंभ में ही मैंने कहा था कि ‘सामान्य’ को शुद्ध कहते हैं। अब दुबारा बता रही हूँ, ठीक तरह से ध्यान देना।

यहाँ शुद्ध और अशुद्ध कहने की दो पद्धति हैं। एक पद्धति तो यह है कि पर्यायों की शुद्धता या अशुद्धता। संवर, निर्जरा,

मोक्ष शुद्ध पर्यायों हैं, तो आस्रव, बंध अशुद्ध पर्यायों हैं । दूसरी पद्धति यह है कि 'सामान्य' को शुद्ध कहते हैं और 'विशेष' को यानि भेद को-पर्याय को अशुद्ध कहते हैं । इस दूसरी पद्धति में पर्याय शुद्ध हो या अशुद्ध हो, दोनों को ही 'अशुद्ध' कहते हैं ।

एक ज्ञानगुण पर यदि इसे घटित करेंगे तो ज्ञानगुण 'सामान्य' और मति, श्रुत, अवधि आदि ज्ञान की पर्यायों 'विशेष' हैं । परंतु एक एक गुण पर अपना लक्ष केंद्रित करने से काम नहीं चलेगा । क्योंकि अनंत गुणों का अखंड पिंड ऐसा द्रव्य 'सामान्य' है और उसमें भेद करके एक या अनेक गुणों का भिन्न भिन्न कथन करना 'विशेष' है । अखंड अभेद द्रव्य में किसी भी अपेक्षा से भेद करना इसी को शास्त्र में पर्याय अर्थात् 'विशेष' कहा है । उस अपेक्षा से जानना पर्यायदृष्टि है ।

द्रव्य में किसी भी अपेक्षा से भेद न करके अर्थात् प्रदेशों, गुणों या काल अपेक्षा से प्रवाहक्रम का भेद न पाड़ते हुए द्रव्य के 'सामान्य' स्वरूप का ग्रहण करना यानि जानना द्रव्यदृष्टि है, इसे ही शुद्धनय कहते हैं । मात्र जानना नहीं अपितु उसमें स्वपना स्थापित करके 'यही मैं हूँ' इसतरह से जानना है, इसी को दृष्टि का विषय कहते हैं ।

प्राथमिक भूमिका में आत्मा का स्वरूप समझाने के लिए शास्त्र में आत्मा का भेद करके कथन किया जाता है । गुण, पर्याय आदि का स्वरूप समझाया जाता है । परंतु आत्मा तो वस्तुपने से एक है, अभेद है, अखंड है, नित्य त्रिकाल है । वस्तु की यह एकता ही उसकी शुद्धता है ।

प्रत्येक द्रव्य सामान्यविशेषात्मक है । सामान्य तो सदा वही, एकरूप, ध्रुव रहता है और विशेष पलटता रहता है । जीव अवस्थारूप से भिन्न भिन्न भासित होने पर भी उसी समय में वह सामान्य की अपेक्षा एक ही है । समयसार कलश में कहा है, 'नवतत्त्वगत्वेऽपि यद् एकत्वं न मुंचति' अर्थात् पर्याय में नौ तत्त्वरूप होकर भी जीव अपने एकत्व यानि सामान्य स्वरूप को कभी नहीं छोड़ता ।

सामान्य विशेष एकदूसरे के बिना नहीं रहते । इसलिए सर्वप्रथम जीवके 'विशेष' जानकर जीव का निर्णय करना पड़ेगा और तदनंतर इन विशेषों को गौण करके उन्हीं में विद्यमान 'सामान्य' को मुख्य करके जानना पड़ेगा ।

‘जैन तत्त्व परिचय’ पुस्तक में हमने इसे चार्ट द्वारा समझा था । वस्तु सामान्य विशेषात्मक है । प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय से युक्त होती है अर्थात् स्वयं के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से युक्त होती है । इनमें प्रत्येक में द्रव्य अंश (सामान्य) और पर्याय अंश (विशेष) भेद करने पर प्रत्येक द्रव्य में द्रव्य की अपेक्षा सामान्य और विशेष, क्षेत्र की अपेक्षा अभेद और भेद, काल की अपेक्षा नित्य और अनित्य और भाव की अपेक्षा एक और अनेक इसतरह द्रव्य के विविध पहलू हैं ।

इसमें से सामान्य, अभेद, नित्य, एक यह ‘दृष्टि का विषय’ है । इसतरह के चार भेद भी न करते हुए जो एक है उसपर दृष्टि केंद्रित करने से, जाननेवाली पर्याय उसमें एकमेक होने पर अभेद अर्थात् निर्विकल्प आत्मानुभूति होती है । उससमय विकल्प यानि भेद भी नहीं रहता और विकल्प यानि राग भी नहीं रहता ।

इसलिए कहा है कि निजशुद्ध भगवान आत्मा को जानो । उसे ‘जानो’ कहा है । उस संबंधी मात्र विकल्प करना, मैं शुद्ध बुद्ध ज्ञाता दृष्टा हूँ का रटन करना, सिद्धों के जाप देना इतना ही कार्यकारी नहीं है । तुम कहोगी, ‘शास्त्र में ही तो सिद्धों का, अरहंतों का ध्यान करने के लिए कहा है ।’

हां, वह सच है । परंतु यह पर का ध्यान है, शुभ ध्यान है । दुनिया की अन्य सभी बातों के विचार छोड़कर अरहंत सिद्धों का स्वरूप चिंतवन करते हुए उनके नाम का स्मरण, जप आदि का उपदेश दिया जाता है । परंतु यह स्व का ध्यान नहीं है । इसे करते हुए जो जीव अरहंत सिद्धों का लक्ष छोड़कर स्वयं के शुद्धात्मा को जानने लगता है उसी को आत्मानुभूति होती है । ऐसा होने पर ही सिद्धों का ध्यान कार्यकारी होगा । उपयोग की स्थिरता करने के लिए शास्त्र में ध्यान के अनेक प्रकार बताये हैं । परंतु तत्त्वों का सम्यक् स्वरूप जानकर, यथार्थ निर्णय करके, शुद्धात्मा को जानते रहने से ही आत्मानुभूति प्रकट होती है ।

बेटियों, हे भव्य जीवों, संसार सागर के किनारे तक आकर अब वापिस मुड़ मत जाना । आत्मकल्याण का यह इतना सहज, सुलभ, सुंदर मार्ग तुम बड़ी रुचि के साथ सुनती आयी हो, पढ़ रही हो । दुर्लभ में दुर्लभ सारी बातें प्राप्त हुयी हैं, अब सम्यक्त्वप्राप्ति कुछ कठिन बात नहीं है । पूरी शक्ति के साथ,

पुरुषार्थ करके सम्यक्त्व की प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र करना । पुरुषार्थ करनेवाले के अवश्य कार्यसिद्धि होती ही है ।

सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व होनेवाली पांच लब्धियों का स्वरूप हमने 'करणानुयोग परिचय' में देखा ही था । उसमें से

(१) क्षयोपशमलब्धि - संज्ञी पंचेंद्रियपना और ज्ञान का तत्त्वज्ञान में लगना तो तुम्हें प्राप्त है ।

(२) विशुद्धिलब्धि - अर्थात् कषायों की मंदता भी है । उसके बिना अन्य विषय कषाय की बातें छोड़कर तत्त्वज्ञान में रुचि नहीं हो सकती ।

(३) देशनालब्धि - देशना तो तुम्हें प्राप्त हो ही रही है । उसे धारणा में लेना - स्मरण में रखनेरूप देशनालब्धि भी तुम्हें प्राप्त है ।

(४) प्रायोग्यलब्धि - जिनेन्द्रकथित उपदेश जो परंपरा से चलता आया है और तुमने जाना है उसके बारे में तत्त्वनिर्णय करके चिंतन, मनन करना अब तुम्हारे हाथ में है ।

(५) करणलब्धि - सम्यक् पुरुषार्थ करके स्वसन्मुखता द्वारा परिणामों की विशुद्धि बढ़ती जाती है, दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम होता है और जीव स्वयं तत्त्वश्रद्धानी होता है - सम्यग्दर्शन और आत्मानुभूति प्रकट होती है ।

इन पांच लब्धि का स्वरूप लब्धिसार ग्रंथ में अत्यंत विस्तार से दिया है, कर्म के स्थित्यंतर बताये हैं । इस विषय पर स्वतंत्र पुस्तक लिखने संबंधी अनेकों का आग्रह है । देखते हैं क्या होता है? प्रत्येक कार्य स्वसमय में ही होता है और उस उस द्रव्य में ही होता है, हमारे करने से तो नहीं होता, है ना? हमारा कार्य तो अपने पुरुषार्थ से अपने स्वयं के द्रव्य में होता है ।

कारण कार्य व्यवस्था का यह रहस्योद्घाटन समझने से हमारी आकुलता कम होती है । यथार्थ तत्त्वनिर्णय करना यही पुरुषार्थ है ।

तुम भी शीघ्रातिशीघ्र सम्यक् पुरुषार्थ करके मोक्षमार्गरूपी कार्य प्रकट करोगी ऐसी मुझे आशा है, विश्वास है ।

कल्याणमस्तु ।

जय जिनेन्द्र ।

तुम्हारी माँ

